भूमिका

दृष्टान्त भी भाषा में एक अलंकार माना जाता है। दृष्टान्तों की उपयोगिता के सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। साधारण रीति से इतना कहा जा सकता है कि जिस बात को समझाने के लिये बहुत सा वाग्डम्बर भी काम नहीं देता वही बात दृष्टान्तों से सहज में ही समझाई जा सकती है। धर्म के जो गूढ़ तत्त्व विद्वान लोग भी कठिनता से समझ पाते हैं वही तत्त्व दृष्टान्तों के द्वारा एक साधारण मनुष्य भी बात की बात में समझ सकता है। यही कारण है कि उपनिषदों में भी दृष्टान्तों का साम्राज्य पाया जाता है। कहाँ तक कहा जाय धर्म तथा नीति के ही तत्त्वों को दृष्टान्त रूप में समझाने के लिये अष्टादश पुराणों की रचना हुई है। आजकल ऐसा समय आ गया है कि मनुष्यों की रुचि धर्म ग्रन्थों की ओर कम जाती है। यह बात कथा वाचकों और पंडितों से छिपी नहीं है कि जो कथा वाचक दृष्टान्तों का समय समय पर प्रयोग नहीं करता उसकी कथा के श्रोताओं की संख्या बहुत ही न्यून होती है। जो लोग सुनने भी जाते हैं बैठे बैठे गप्पें हाँका करते हैं, परन्तु ज्यों ही कि कोई क़िस्सा, कहानी अथवा दृष्टान्त की चर्चा छिड़ जाती है त्यों ही पाठकों के कान उधर खिंच आते हैं।

आज तीन चार महीने के लगभग हुआ कि भार्गव पुस्त कालय के संचालक श्रीमान् बा० जगन्नाथ प्रसाद जी भार्गव मिलने तथा वार्तालाप करने का शुभ अवसर मुझे प्राप्त हुआ भार्गव जी ने आज कल की दृष्टान्त की पुस्तकों की स... करते हुए कहा—"आज तक दृष्टान्त की जितनी पुस्तकें छपी उनमें से किसी २ में तो किसी विशेष मत का व्यर्थ किया गया है और साथ ही साथ अन्य मतावलम्बिओं क भवतिथाँ ली गई हैं। किसी किसी पुस्तक में तो चरित्रों को यहाँ तक स्थान दिया गया है कि यदि उन को दृष्टान्त की पुस्तक न कह कर कुलटा कुतूहल कहें तो अनु चित न होगा।" अन्त में उन्हों ने अपना विचार इस प्रगट किया "मैं दृष्टान्त की एक ऐसी पुस्तक प्रकाशित चाहता हूँ जिसमें निम्न लिखित विशेषताएँ हों:—

[१] भाषा इतनी सरल तथा सुबोध हो कि साधारण पढ़े मनुष्य भी सुगमता से समझ सकें।

[२] किसी मत का पक्षपात अथवा खण्डन न हो।

[३] भ्रष्ट तथा कुत्सित विचारों एवं त्रिया चरित्रों अथवा प्रकार की और बातों का जिनको पिता पुत्र से माता अपनी पुत्री से कहने में संकोच करे न हो।

[४] यदि एक विषय पर एक से अधिक दृष्टान्त हों तो वे एक ही स्थान पर लिखे हों।

[५] दृष्टान्तों के नीचे उन से मिलने वाली शिक्षा भी लिखी हो।

[६] जहाँ तक सम्भव हो दृष्टान्तों के अन्त में उनसे सम्बन्ध रखनेवाली प्राचीन तथा अर्वाचीन कवियों की कविता भी नोट कर दी जाय।

[७] धार्मिक, सामाजिक, विद्या बुद्धि, गुण दोष, देश दशा इत्यादि सभी आवश्यक विषयों पर उत्तम उत्तम दृष्टान्त संग्रहीत किये जायें।

[८] पुस्तक के अन्त में एक प्रासंगिक पद्यावली भी जोड़ दी जाये जिस में ऐसी प्रचलित कविताओं का संग्रह हो जिनकी बात बात में आवश्यकता पड़ती है।" इत्यादि

यह कहते हुये मुझे संकोच होता है कि उपरोक्त महानुभाव ने यह महान् कार्य मुझ ऐसे अल्पज्ञ तथा साहित्य-कला से अनभिज्ञ व्यक्ति को ही समर्पित किया। प्रस्तुत पुस्तक उनकी आज्ञा पालन का फल मात्र है। जहाँ तक हो सका मैंने उनकी सभी आज्ञाओं के पालन करने का प्रयत्न किया है। यह पुस्तक कथा बाचने वाले पंडितों के काम की तो है ही, उपदेशकों तथा

आबाल वृद्ध बनिता सभी के लिए भी कुछ कम उ
नहीं है।

पुस्तक को दो भागों में निकालने का बिचार है।
विषय इस भाग में नहीं आसके हैं वे दूसरे भाग में लिखे ज
इस प्रकार दोनों भाग मिलाकर यह एक ऐसी पुस्तक हो .
जिस में सभी विषयों पर दृष्टान्त मिल सकेंगे यदि पाठकों ने
इस प्रयत्न को प्रोत्साहन दिया तो दूसरा भाग भी शीघ्र ही
कमलों में प्रस्तुत किया जायेगा।

पुस्तक के लिखने में जिन दृष्टान्त तथा कविता की
से सहायता ली गई है मैं उनके लेखकों तथा प्रकाशकों के
हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करता हूँ तथा उनका विशेष उ
मानता हूँ।

काशी ।
श्रावणी अमावस्या १९८४ वि०

मातृ भाषा का तुच्छ सेवक
अमर पालसिंह, विशारद

दृष्टान्त प्रकाश।

का

अनुक्रमणिका

आज तीन चार महीने के लगभग हुआ कि भार्गव पुस्तकालय के संचालक श्रीमान् बा० जगन्नाथ प्रसाद जी भार्गव से मिलने तथा वार्तालाप करने का शुभ अवसर मुझे प्राप्त हुआ। भार्गव जी ने आज कल की दृष्टान्त की पुस्तकों की समालोचना करते हुए कहा—"आज तक दृष्टान्त की जितनी पुस्तकें छपी हैं उनमें से किसी २ में तो किसी विशेष मत का व्यर्थ पक्षपात किया गया है और साथ ही साथ अन्य मतावलम्बिओं की भवतियाँ ली गई हैं। किसी किसी पुस्तक में तो त्रिया चरित्रों को यहाँ तक स्थान दिया गया है कि यदि उन पुस्तकों को दृष्टान्त की पुस्तक न कह कर कुलटा कुतूहल कहें तो अनुचित न होगा।" अन्त में उन्हों ने अपना विचार इस प्रकार प्रगट किया "मैं दृष्टान्त की एक ऐसी पुस्तक प्रकाशित करना चाहता हूँ जिसमें निम्न लिखित विशेषताएँ हों:—

[१] भाषा इतनी सरल तथा सुबोध हो कि साधारण पढ़े लिखे मनुष्य भी सुगमता से समझ सकें।

[२] किसी मत का पक्षपात अथवा खण्डन न हो।

[३] भ्रष्ट तथा कुत्सित विचारों एवं त्रिया चरित्रों अथवा इसी प्रकार की और बातों का जिनको पिता पुत्र से तथा माता अपनी पुत्री से कहने में संकोच करे समावेश न हो।

[४] यदि एक विषय पर एक से अधिक दृष्टान्त हों तो वे एक ही स्थान पर लिखे हों।

[५] दृष्टान्तों के नीचे उन से मिलने वाली शिक्षा भी लिखी हो।

[६] जहाँ तक सम्भव हो दृष्टान्तों के अन्त में उनसे सम्बन्ध रखनेवाली प्राचीन तथा अर्वाचीन कवियों की कविता भी नोट कर दी जाय।

[७] धार्मिक, सामाजिक, विद्या बुद्धि, गुण दोष, देश दशा इत्यादि सभी आवश्यक विषयों पर उत्तम उत्तम दृष्टान्त संग्रहीत किये जायें।

[८] पुस्तक के अन्त में एक प्रासंगिक पद्यावली भी जोड़ दी जाये जिस में ऐसी प्रचलित कविताओं का संग्रह हो जिनकी बात बात में आवश्यकता पड़ती है।" इत्यादि

यह कहते हुये मुझे संकोच होता है कि उपरोक्त महानुभाव ने यह महान् कार्य मुझ ऐसे अल्पज्ञ तथा साहित्य-कला से अनभिज्ञ व्यक्ति को ही समर्पित किया। प्रस्तुत पुस्तक उनकी आज्ञा पालन का फल मात्र है। जहाँ तक हो सका मैंने उनकी सभी आज्ञाओं के पालन करने का प्रयत्न किया है। यह पुस्तक कथा बाचने वाले पंडितों के काम की तो है ही, उपदेशकों तथा

आवाल वृद्ध बनिता सभी के लिए भी कुछ कम उपयोगी नहीं है।

पुस्तक को दो भागों में निकालने का बिचार है। जो विषय इस भाग में नहीं आसके हैं वे दूसरे भाग में लिखे जायेंगे। इस प्रकार दोनों भाग मिलाकर यह एक ऐसी पुस्तक हो सकेगी जिस में सभी विषयों पर दृष्टान्त मिल सकेंगे यदि पाठकों ने मेरे इस प्रयत्न को प्रोत्साहन दिया तो दूसरा भाग भी शीघ्र ही कर कमलों में प्रस्तुत किया जायेगा।

पुस्तक के लिखने में जिन दृष्टान्त तथा कविता की पुस्तकों से सहायता ली गई है मैं उनके लेखकों तथा प्रकाशकों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रगट करता हूँ तथा उनका विशेष उपकार मानता हूँ।

काशी.
श्रावणी अमावस्या १९८४ वि०

मातृ भाषा का तुच्छ सेवक
अमर पालसिंह, विशारद।

दृष्टान्त प्रकाश।

का

अनुक्रमणिका

अंक	पृष्ठ

अंक	पृष्ठ

पुरौनी।

॥ श्रीः ॥

दृष्टान्त-प्रकाश

प्रथम भाग।

॥ जिसमें ॥

धार्मिक, सामाजिक तथा अन्यान्य विषयों पर २०२ दृष्टान्त प्रासांगिक पद्यावली के सहित सरल और सुबोध भाषा में लिखे गये हैं।

संकलनकर्ता-
अमरपाल सिंह, विशारद
प्रतापगढ़ (अवध) निवासी.

(जिसको)
भार्गव पुस्तकालय काशी ने
कथा वाचकों एवं व्याख्यानदाताओं के लाभार्थ प्रकाशित किया।

भार्गव भूषण प्रेस, काशी में मुद्रित।

॥ दृष्टान्त-प्रकाश ॥

मंगलाचरण ।

(गीतिका छन्द)

लोक-शिक्षा के लिये अवतार जिसने था लिया।
निर्विकार निरीह होकर नर-सदृश कौतुक किया॥
राम नाम ललाम जिसका सर्व मङ्गल-धाम है।
प्रथम उस सर्वेश को श्रद्धा समेत प्रणाम है।

❀ श्री ❀

दृष्टान्त-प्रकाश

१-ईश्वर पर दृढ़ विश्वास।

एक अनाथ और विधवा बुढ़िया थी जिसके एक सात वर्ष का पुत्र था। उस पुत्र को छोड़ कर उस बुढ़िया को कोई अपना कहने वाला नहीं था। माता की प्रेम कहानी किसी से छिपी नहीं है। वह स्वयं तो दिन भर भीख माँगती, भूखे पेट रह जाती परन्तु शाम को जब लौटती तो अपने पुत्र के लिये दूध बताशे लेती आती। बालक पाठशाला में जाता और शाम को दूध बताशे की लालच में रास्ता भर दौड़ा आता। एक दिन संयोग से बुढ़िया को इतनी कम भिक्षा मिली कि वह दूध बताशे न ला सकी। सायंकाल जब वह बालक पाठशाले से लौट कर आया तो कहा-"माँ दूध बताशे दे"। बुढ़िया की आखों में आसुओं की बूँदें झलकने लगीं। बालक ने माता के गले से लिपट कर कहा-"क्या माता जी, आज बताशे नहीं लाई हो?" माता ने धीरे से कहा-"बेटा! ईश्वर दे तो लाऊँ, नहीं तो कहाँ पाऊँ?" पुत्र ने समझा रोज़ ईश्वर ही देता था आज कदाचित उसने न दिया हो। माता से पूछा-"यदि मैं माँगू तो वे देंगे?" माँ ने कहा-"अवश्य"। लड़के ने कहा-"अच्छा तो मुझे उनका पता बता दे मैं माँग लूँगा।" माँ ने बैकुण्ठ बता दिया। लड़का

चुप चाप सो रहा। दूसरे दिन सोचने लगा--"मैं उनके पास जाऊँ कैसे? थक जाऊँगा और बिना जाने कहीं भटक न जाऊँ?" अच्छा एक उपाय है, उनको चिट्ठी लिख दूँ चिट्ठी रसा स्वयं ढूँढ़ लेगा।" यह विचार कर चिट्ठी लिखना आरम्भ किया:—

"हे सब को दूध बताशा देने वाले ईश्वर, मैं आपको प्रणाम करता हूँ। निवेदन यह है कि जैसे आज़ तक आप मेरे लिये दूध बताशा माँ को देते रहे वैसे ही अब आप कृपा कर स्वयं मेरे पास भेज दिया कीजिए। माता जी बुड्ढी हो चली हैं उन्हें जाने में कष्ट होता है। आशा है कि आप मुझे निराश न करेंगे। इति।

आपका-वही, जिसे आप दूध बताशे खिलाते हैं।

चिट्ठी के सिरनामे पर यह लिखा- श्रीवैकुण्ठवासी ईश्वर के पास। चिट्ठी समाप्त कर उसे डाकघर में डालने के लिये लड़का वहाँ जा पहुँचा। बाबू से पूछा--"बाबू जी, चिट्ठी कहाँ डालें?" बाबू ने लेटर बक्स की ओर संकेत कर दिया। लड़का बेचारा वहाँ गया परन्तु लेटर बक्स इतना ऊँचा था कि कूदने पर भी वह लड़का न पहुँच सका। लड़के ने कहा--"बाबू जी हम तो नहीं पहुँचते।" बाबू ने कहा--"चिट्ठी हमको दो हम छोड़ देंगे" चिट्ठी हाथ में लेते ही उनकी दृष्टि सिरनामे पर पड़ी। लड़के से कहने लगे--"मैं तुम्हारी चिट्ठी पढ़ लूँ?" लड़के ने कहा--"पढ़ लीजिए बाबूजी!" चिट्ठी खोल कर पढ़ी तो लड़के की दीन दशा और विश्वास पर आश्चर्य हुआ। लड़के को गोद में लेकर कहा--"बच्चा! तुम नित्य सवेरे मेरे पास आना मैं तुम्हें रोज़ दूध बताशा दूँगा। तुम्हारी चिट्ठी का जवाब मेरे पास आया है। बच्चा नित्य दूध बताशा पाने लगा।

पाठको ! ईश्वर में पूर्ण विश्वास करने का ऐसा ही फल होता है।

रन, बन, व्याधि, विपत्ति में, रहिमन मरे न रोय।
जो रच्छक जननी जठर, सो हरि गयो कि सोय॥
योमे गर्भ गतस्यापि पूर्वं संचितवान् पयः।
शेष वृत्ति विधानाय स किं सुप्तोऽथवा मृतः॥

जिस ईश्वर ने गर्भ में प्राप्त होने पर उत्पत्ति से पहिले ही माता के स्तनों में दूध को उत्पन्न कर दिया था वही विश्व की पालना करने वाला न तो सो गया हैं न मरा है फिर भोजन की चिन्ता करना मूर्खता नहीं तो क्या है?

२—ईश्वर पर भरोसा।

एक आदमी अपने दो लड़कों को साथ लिये जा रहा था। एक लड़का उसकी गोद में था, दूसरा उसकी उँगली पकड़ कर चल रहा था। दोनों बालकों ने एक गुड्डी (कनकौआ) आकाश पर उड़ती हुई देखी। दोनों लड़के ताली बजा कर चिल्ला उठे "वह देखो चिड़िया उड़ रही है।" फल यह हुआ कि जो लड़का उँगली पकड़ कर चलता था वह गिर पड़ा और उसे चोट आ गई। दूसरा लड़का जो गोद में था चैन से बैठा दोनों हाथ से ताली बजाता रहा। क्योंकि उसे अपने पिता पर पूरा भरोसा था।

इसी प्रकार जो लोग ईश्वर पर पूरा भरोसा रखते हैं उनकी कभी किसी प्रकार से हानि नहीं हो सकती, परन्तु जो लोग अपनी शक्ति पर भरोसा रखते हैं प्रायः धोखा खा जाते हैं।

३—जिसकी सहायता ईश्वर करता है उसको कोई भी हानि नहीं पहुँचा सकता।

एक ब्राह्मण किसी ग्राम में रहता था। एक दिन वह राजा के दरबार में जा निकला। ब्राह्मण को तिलक लगाये देखकर राजाने समझा यह कोई विद्वान पुरुष है। राजाने ब्राह्मण से पूछा "मेरी मुट्ठी में क्या है?" ब्राह्मण ने कहा—"देश भरका हाल मुझे क्या मालूम!" राजा ने इसका यह अर्थ समझा कि ब्राह्मण कहता है कि समस्तदेश तो आपकी मुट्ठी में है, मैं सबका हाल क्या बता सकता हूं। राजा उस दिन से ब्राह्मण को बहुत मानने लगा। यह बात दरबारियों की आँख में काँटे की नाई खटकने लगी। दरबारी लोग ब्राह्मण का अनभल ताकने लगे। ब्राह्मण को राजा की दृष्टि से गिरने के विचार से उन्होंने ब्राह्मण से कहा—'आज जब राजा आयें तुम उनके शिर से मुकुट उतार लेना"। ब्राह्मण बेचारा सीधा आदमी था, कुछ छक्का पंजा न जानता था। जब राजा साहब दरबार में आये तो उसने राजाका मुकुट उतार लिया। दैवयोग से मुकुट में से एक साँपका काला बच्चा निकल आया। राजा ब्राह्मण के काम से बहुत प्रसन्न हुआ और पहिले से अधिक मान करने लगा। फिर दरबारियोंने दूसरी चाल चली, ब्राह्मण से कहा—"आज राजा साहब जब दरबार में आयें तो उनको एकान्त में बुलाकर उनके शिर पर हाथ फेरना"। ब्राह्मणने वैसाही किया। ज्यों ही ब्राह्मण राजाको एकान्तमें ले गया त्योंही महल का एक भाग गिर पड़ा उस में बहुत से आदमी दब गये। राजाने ब्राह्मणको प्राण रक्षक समझ कर उसको जागीर दी। एक मूर्ख ब्राह्मणको जागीर पाते देखकर दरबारियों से न रहा गया,

अतएव उन्होंने ब्राह्मणको नीचा दिखाने की दूसरी तदबीर निकाली। राजा साहब से दरबारियोंने झूठ ही जा कर कहा—"महाराज! यह ब्राह्मण शिकार खेलने में बड़ा ही कुशल है, आप इसे साथ लेकर एक दिन शिकार खेलने चलिये"। दूसरे दिन शिकार खेलने की तैयारी हुई, राजाने ब्राह्मणको भी चलने की आज्ञा दी। ब्राह्मण बेचारा रामका नाम लेकर एक भाला साथले चल पड़ा। बन में एक सिंह दिखाई दिया। सब लोग इधर उधर भागने लगे। ब्राह्मण को और कुछ न सूझा, दौड़कर एक पेड़ पर चढ़ गया। सिंह उसी पेड़के नीचे आकर गुर्राने लगा। ब्राह्मण मारे डर के काँपने लगा। काँपने से भाला ब्राह्मण के हाथ से गिर पड़ा। सिंह ऊपर मुंह किये हुये था उसके मुंहमें भाला जा लगा। सिंह पछाड़ खाकर गिर पड़ा और मर गया। राजा साहबने समझा कि अवश्य ही ब्राह्मण शिकार खेलने में कुशल है नहीं तो सिंहको कैसे मारता। पहिले से भी अधिक सम्मान के योग्य ब्राह्मण समझा जाने लगा।

भाग्यं फलति सर्वत्र न विद्या न च पौरुषम्।
जाको राखै साइयाँ, मारि न सकि है कोय,
बाल न बाँका करि सके, जो जग बैरी होय॥

४-ईश्वर जो कुछ करता है

अच्छा ही करता है।

किसी राजा के मंत्री को यह पूर्ण विश्वास था कि ईश्वर जो कुछ करता है अच्छाही करता है। एक दिन राजा और मंत्री दोनों शिकार खेलने गये। दैवयोग से एक सिंह

पर प्रहार करते समय अपने ही अस्त्र से राजा की उंगली कट गयी। और सब तो (जो सिपाही इत्यादि थे) मलहम पट्टी की फिक्र में थे, मंत्री जी ने कहा-"ईश्वर जो कुछ करता है अच्छा ही करता है"। राजा को ऐसे अवसर पर यह बात बहुत बुरी लगी और कहा-"मेरी तो उँगली कट गयी और तू कहता है ईश्वर जो कुछ करता है अच्छा ही करता है। मेरा ही अन्न खाकर मेरा ही अनिष्ट चाहता है। जा, आज से मुझे मुख न दिखा"। यह कह कर राजा ने मंत्री को निकाल दिया। चलते समय मंत्री ने फिर वही कहा "ईश्वर जो कुछ करता है अच्छाही करता है"। मंत्री की यह बात सुनकर सेना के सब सिपाही हँस कर कहने लगे-"कैसा मूर्ख है अब तो जीविका का भी ठिकाना नहीं रह गया परन्तु यह वही बके जाता है"। मंत्री प्रणाम करके चला गया।

कुछ दिन पीछे राजा फिर आखेट को गये और हरिण का पीछा करते करते घोर जंगल में जा निकले। सब साथी पीछे ही रह गये। शिकार भी हाथ न लगा। उसी दिन जंगल के ठगों में काली पूजन हो रहा था। ठग लोग काली जी के आगे मनुष्य की बलि देते थे। जब बलि के लिये कोई पथिक न मिला तो एक ठग राजा कोही पकड़ ले गया। राजा को स्नान कराकर बलि के लिये खड़ा किया तो किसी की दृष्टि राजा की कटी उँगली पर पड़ी। सब ने देखा और अन्त में राजा को अंग भंग पाकर और बलि के योग्य न जानकर छोड़ दिया। राजा भूले भटके किसी प्रकार अपने राज्य में आही गये। अब तो मन में कहने लगे कि इसी कटी उँगली ने मेरे प्राण बचाये नहीं तो आज मरने में लेश मात्र भी सन्देह न था। राजा को मंत्री की बात का विश्वास

हुआ और उसे बुला कर फिर मंत्री के पद पर नियुक्त किया। एक दिन राजा ने मंत्री से पूछा कि मेरी उँगली जो कटी थी उसका अर्थ तो समय में आ गया कि ईश्वर ने क्या अच्छा किया। उसने तो मेरे प्राण बचाये। जो मैंने तुमको निकाल दिया था तो तुमने क्यों कहा कि ईश्वर जो कुछ करता है अच्छा ही करता है?"। मंत्री ने हाथ जोड़ कर कहा-"धर्मावतार! यदि आप मुझे न निकाल देते तो उस दिन आखेट में मुझे भी जाना पड़ता और आप तो अंग भंग होने से बच गये परन्तु मैं तो अवश्यही बलि के योग्य समझा जाना और मेरे प्राण किसी प्रकार न बचते"।

५-ईश्वर जो कुछ करता है

अच्छा ही करता है।

एक ब्राह्मण अत्यन्त दीन था यहाँ तक कि अपनी स्त्री तथा पुत्रों का भी पोषण बड़ी कठिनता से कर सकता था। मनुष्य का यह स्वभाव होता है कि जब उसे कोई कष्ट होता है तो वह ईश्वर ही को दोष देता है, पंडित जी भी भाग्य और ईश्वर को ही कोसा करते थे। जीविका के लिये काशी आये। कुछ दिन के पीछे घर लौटने लगे तो स्त्री के लिये एक कच्चे रंग की चुनरी और लड़कों के लिये कुछ बताशे लेकर चले। रास्ते में दैव योग से पानी बरसने लगा। चुनरी का रंग छूट छूट कर कपड़ों पर आने लगा और उधर बताशा भी गलने लगा। अब तो पंडित जी कहने लगे-"ईश्वर से यह भी न देखा गया। इतने दिन पीछे यही तो कर पाया था वह भी नष्ट हुआ"। कुछ दूर

जाने पर एक नाला पड़ा । उस नाले में कुछ डाकू बन्दूक लिये इस टोह में थे कि कोई पथिक आ निकले और हम लोग सब छीन छान कर चम्पत हों । इतने में ब्राह्मण देवता उधर ही से जा निकले । डाकुओं के सरदार ने बन्दूक चलाना आरम्भ किया परन्तु बन्दूक थी टोपी दार, पानी पड़ने से टोपियाँ गीली हो गई थीं, बार बार दागने पर भी बन्दूक न दगी । ब्राह्मण सकुशल वहाँ से निकल गया और अपने दिल में कहा-धन्य रे परमात्मा तेरी माया आज यदि वृष्टि न होती तो मेरे प्राण जाने में क्या सन्देह था। यह चुनरी और बताशे सब धरे रह जाते, हम कुटुम्ब वालों का मुख भी न देख सकते । सत्य है ईश्वर भला या बुरा जो कुछ करता है हमारे हित ही के लिये करता है परन्तु मनुष्य में इतनी बुद्धि नहीं कि उसकी माया का पार पा सके और उसके मर्मों को समझ सके ।

दीरघ साँस न लेइ दुख, सुख साईं मति भूल ।
दई दई क्यों करत है, दई दई सु कबूल ॥

———o———

६—क्या करें फुरसत नहीं मिलती ।

एक लाला जी के यहाँ एक महात्मा कभी कभी आया करते थे । लालाजी दिन रात धन इकट्ठा करने की धुन में रहते कभी ईश्वर का नाम तक न लेते । महात्माजी उनसे कहा करते थे कि कभी कभी पूजा पाठ भगवत भजन भी किया करो परन्तु लालाजी झट उत्तर देते- "क्या करें महाराज, मुझे फुरसत नहीं मिलती" । एक दिन जब लालाजी जंगलकी ओर शौच करने गये तो महात्मा जी ने गांव में सब से कह दिया कि इस जंगल में एक राक्षस रहता है

जो कभी कभी गाँव में आकर मनुष्यों को खाया करता है और विशेषता यह है कि वह किसी गांव वाले मनुष्य का भेष बना कर आता है जिससे उसे कोई पहचान न सके। वह देखो आज लाला जी का भेष बनाकर आ रहा है सब कोई सावधान हो जाओ। जंगल से लालाजी शौच क्रिया से निवृत्त होकर आ रहे थे लोगों ने समझा कि वही राक्षस है, भेष बदले हुये है। सभोंने अपने अपने हथियार संम्हाले। किसी ने लाठी लिया, किसी ने दण्डा, किसी ने कंकण, किसी ने पत्थर। जब लालाजी कुछ निकट आ गये तो कंकण और पत्थर से उनका स्वागत होने लगा। लालाजी चिल्लाते थे "अरे भाई मैं इसी गांव का रहने वाला हूँ कोई पराया नहीं हूं"। परन्तु कौन सुनता है। यहां तक कि लालाजी के लड़के ने भी समझा कि निस्सन्देह यह वही राक्षस भेष बनाये हुये हम सभों को खाने आया है। लालाजी खूब पिटे। किसी प्रकार भाग कर जंगल में छिप कर अपनी जान बचाई। महात्मा जी ने सोचा कि अब चल कर देखें लालाजीको फुर्सत है या नहीं। जब महात्मा जी जंगल में पहुंचे तो क्या देखते हैं कि लालाजी एक पेड़ के नीचे बैठे "हाय राम" "हाय राम" कर रहे हैं। महात्माजी ने पूछा-"क्यों लालाजी, आज राम राम करने की फुर्सत कैसे मिली?"। लालाजी ने सब वृतान्त कह सुनाया और हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि-"महाराज यदि अब किसी प्रकार फिर घर जाने पाऊँ तो नित्य ही पूजा पाठ और भगवत भजन करूं क्यों कि जिनके लिये कमाते २ मुझे फुर्सत न मिलती थी उन्हीं पुत्रों ने आज मेरे साथ ऐसा व्यवहार किया"। महात्माजी समझ गये कि अब लालाजी की बुद्धि ठिकाने आगई अतएव गाँव

में कह दिया कि वह शख्स लालाजी को भी जंगल में उठा ले गया था बड़ी उपाय से मैंने उनके प्राण बचाये। ऐसा कह कर लालाजीको अपने साथ घर पहुँचा दिया।

इसका दार्ष्टान्त यह है कि ईश्वर ने जीव को धर्म कर्म करने के लिये मनुष्य शरीर देकर संसार में भेजा था परन्तु यह जीव माया में ऐसा लिप्त हुआ कि धर्म करने को इसे समय ही न मिला तब अनेक प्रकार के कष्ट, बीमारी, वृष्टि, अनावृष्टि से उसे डराया। तब कहीं रो, गा कर एकाध बार राम राम इसके मुंह से निकला।

दुखमें सुमिरन सब करे, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन करे, दुख काहे को होय॥

७--धर्म के सिवा संसार में हमारा कोई साथी नहीं।

किसी ब्राह्मण का लड़का एक महात्माजी के पास नित्य ही सत्संग करने जाया करता था उसके माता पिता ने विचारा कि यदि यह बालक इसी प्रकार महात्माओं के निकट अधिक दिन तक रहेगा तो इका चित्त संसारसे फिर जायगा और यह सन्यासी हो जायगा अतएव इसको संसार में अनुरक्त करना उचित है। ऐसा विचार कर अपने लड़के का उसने विवाह कर दिया। जब उस लड़के की स्त्री आई तो वह उससे अत्यन्त प्रेम करने लगी और लड़के से कहा करती कि मुझसे पल भर का भी विरह सहन नहीं होता आप मेरे पास से कहीं जाया न कीजिये। ब्राह्मणका

लड़का भी उसके प्रेम-पाश में ऐसा फँसा कि महात्माजीके निकट बहुत ही कम जाने लगा। एक दिन महात्मा ने उसे लड़के से पूँछा—"क्या कारण है कि आज कल तुम पहिले की नाईं यहाँ नित्य नहीं आते?" लड़के ने उत्तर दिया—"महाराज, मेरे घर वाले मुझसे इतना प्रेम रखते हैं कि पल भर भी आँखों से ओट नहीं होने देते, मैं उनको छोड़कर कैसे आ सकता हूँ?"। महात्माजी ने लड़के से फिर पूंछा—"क्या तुमको सच्चा विश्वास है कि तुम्हारे माता-पिता और स्त्री तुमसे बहुत प्रेम रखते हैं?" लड़के ने उत्तर दिया—"महात्माजी, मेरे शिर में तनिक भी पीड़ा होती है तो मेरे घरवाले अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं और मुझसे कहते हैं कि बेटा तू अच्छा हो जाता चाहे तेरे बदले मेरे प्राण चले जाते" महात्माने कहा—"अच्छा मैं कल चल कर देखूँगा कि किसका तुममें कितना प्रेम है। कल प्रातःकाल तुम एक काम करना कि सबेरे ही से कहना कि मेरा चित्त व्याकुल सा हो रहा है कुछ देर पश्चात् स्वांस चढ़ाकर चित पड़ जाना तो मैं आऊँगा और सब की प्रेम—परिक्षा करूँगा"। लड़के ने दूसरे दिन ऐसा ही किया घरमें चार पाई पर पड़ गया और कहा-"आज मेरा चित्त न जाने क्यों बैठा जा रहा है"। सब घरवाले बहुत ही घबराये कि लड़के को क्या हो गया है। थोड़ी देर में लड़के ने बोलना बन्द करके साँस चढ़ाली। उसके माता-पिता सब रोने लगे। इतने में महात्माजी एक पुड़िया लिये हुये वहाँ पहुंचे। लड़के के माता पिता ने महात्मा के चरणों पर गिरकर कहा—"महाराज मेरे यही एक लड़का है चाहे हम सब मर जायँ, परन्तु यह किसी प्रकार अच्छा हो जाता तो बहुत अच्छा होता।" महात्माजी ने लड़के की नाड़ी

देखकर कहा—"अभी इसके प्राण शेष हैं शीघ्र उपाय करना उचित है, यह लो संखिया की पुड़िया गाय के दूध के साथ तुम खालो इसका फल यह होगा कि तुम मर जाओगे और तुम्हारा लड़का अच्छा हो जावेगा।" अब तो लड़के का बाप बहुत चकराया और कहने लगा—"महात्माजी मैं तो पुड़िया खा लेता परन्तु शोच यह है कि मेरे दो लड़कियां हैं उनका विवाह कौन करेगा"। तब महात्माजी ने लड़के की माँ से कहा—"लो, तुम्हीं पुड़िया खालो, अब तो तुम बुड्ढी भी हो चली हो, संसार में कुछ ही दिनों की मेहमान हो, तुम्हारे मरने से कुछ हानि नहीं है।" माँने कहा—"महाराज, पहिले आप यह बतलाइये कि मेरे दूसरा लड़का न होगा?" महात्माने कहा—"जो लड़का इतना बड़ा हो चुका है उसको छोड़ कर पेटका आसरा लेने चली हो?" माँ ने कहा—"नहीं महाराज बताइये मेरे दूसरा लड़का होगा कि नहीं"। तब महात्माजी ने समझ लिया कि बुढ़िया बहाना कर रही है। अन्त में लड़के की स्त्री से कहा—"तुम तो इसकी सहचरी हो, तुमने इसके साथ भांवरें फेरी हैं, पति ही स्त्रियों का सर्वस्व है, बिना पतिके पत्नीका जीवन ही वृथा है, लो तुम इस पुड़ियाको खाकर अपने पतिकी रक्षा करो।" स्त्री ने कहा—"मेरे नैहर में किसी वस्तु की कमी नहीं है, मैं वहाँ जाकर अपना जीवन व्यतीत कर लूँगी, मैं क्यों इनके लिये अपने प्राण देने लगी।" गाँव वालों ने समझा कि अब हम लोगों की बारी आई, जब उसके घर वाले पुड़िया खाने को तैयार नहीं हैं तो हम लोगों को क्या पड़ी है। ऐसा सोच कर टलाटली करके सब नौ दो ग्यारह हो गये। महात्मा ने कहा—"अच्छा मैं पुड़िया तो स्वयं खा लूँगा परन्तु जब तक मैं अभी कुछ देर तक जीवित रहूँगा

तुम लड़के से सब वृत्तान्त बता देना कि हम लोगों ने तुम्हारे लिये प्राण नहीं दिये।" माता पिता ने कहा-"महाराज आप तो परोपकारी हैं आप मेरी रक्षा कीजिये हम सब लड़के से वृत्तान्त कह देंगे।" महात्मा ने ज्यों ही मिश्री की पुड़िया खाई लड़का उठ बैठा। महात्मा ने लड़के के माता पिता से कहा-"अब मैं मरना ही चाहता हूँ लड़के से सब वृत्तान्त बताओ।" पहिले तो उसके माता पिता सकड़ाये परन्तु जब महात्मा ने विवश किया तो अन्त में उनको सब कहना ही पड़ा। लड़के ने देख लिया कि सत्य है संसार में धर्म के सिवा कोई हमारा साथी नहीं। उस दिन से लड़का सन्यासी हो गया।

धन दारा अरु सुतनसों, लग्यो रहत नित चित्त।
नहिं 'रहीम' देखो कोऊ, गाढ़े दिन के मित्त॥

—— * ——

८--सब सुख के साथी हैं।

बाल्मीकि जी पहिले लुटेरों का काम करते थे। विदेशियों को लूट कर अपने कुटुम्ब का पालन करना ही उनका कार्य था। एक दिन कोई साधु उधर आ निकला। बाल्मीकि ने उसे भी लूटना चाहा। उसने कहा-"एक बात हमारी सुन लो फिर तुमको अधिकार है चाहे मुझे लूटना चाहे छोड़ देना।" बाल्मीकि ने कहा-"कह क्या कहता है?" उसने कहा-"तुम निरपराध विदेशियों को क्यों लूटते हो?" बाल्मीकि ने कहा-"अपने कुटुम्ब का पालन करने के लिए।" उसने कहा-"तुम उन खाने वालों से पूछ आओ जिस समय भगवान् के यहाँ तुमको लूटने का दण्ड मिलेगा उस

समय वे लोग उस दण्ड को बँटा लेंगे?" बाल्मीकि ने कहा-"हाँ ठीक कहा-मैं उधर पूछने जाऊँ, तुम इधर चलते बनो।" साधु ने कहा-"यदि तुमको सन्देह है तो मेरे हाथ पैर बाँध दो।" बाल्मीकि ने उसके हाथ पैर बाँध कर अपने घर जाकर परिवार वालों से पूछा तो सभों ने कानों पर हाथ धर कर कहा-"ना भैया! हम दण्ड के भागी न होंगे, हम कब कहते हैं कि तुम लूट करो।" बाल्मीकि ने लौट कर साधु से सच्चा हाल कह सुनाया। साधु ने कहा-"क्यों रे मूर्ख, खाने को तो सब मौजूद हैं मार खाने को तू ही अकेला रहा।" साधु की इस बात ने बाल्मीकि के हृदय पर बिजली का सा प्रभाव डाला। उसी दिन से वह लूटना छोड़ कर भगवान का भजन करने लगे और फल यह हुआ कि महा मुनियों में गिने जाने लगे।

संसार में सभी अपने स्वार्थ वश प्रीति दिखाते हैं अन्त में धर्म के सिवा कोई साथ नहीं देता।

—*—

६-संसार स्वप्नवत है

एक आदमी बेकार था। उसकी जोरू उसे नित्य ही धमकाया करती-"कुछ काम धाम नहीं करते। कहीं जाकर नौकरी चाकरी खोजो। इस प्रकार बैठे रहने से काम नहीं चलेगा।" एक दिन उस बेकार का लड़का बहुत बीमार था वह उसी दिन नौकरी खोजने चला गया। इतने ही में उस का लड़का मरगया। गाँव वाले सब उस आदमी को ढूढ़ने लगे परन्तु उसका कहीं पता न

लगा। सायंकाल को जब वह लौटकर घर आया तो उसकी स्त्री ने कहा-"तुम कैसे कठोर आदमी हो, मरता लड़का छोड़ कर घर से चले गये, तुमको लड़के के मरने का कुछ भी शोक नहीं ?" उस आदमी ने उत्तर दिया-"मैंने एक दिन स्वप्न देखा कि मेरे सात लड़के हैं, मैं उनके साथ आनन्द से रहता हूँ। परन्तु जब मैं जाग पड़ा तो ज्ञात हुआ कि यह तो निरा स्वप्न था। जब सात लड़कों से अलग होने से मुझे शोक न हुआ तो फिर एक लड़के के लिये क्या रोऊँ।"

अस्ति भाति प्रियं रूपं नाम चेत्यंश पञ्चकम्।
आद्यं त्रयं ब्रह्मरूपं जगद्रूपं ततो द्वयम्॥

(पञ्चदशी)

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो, रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव।
एकस्तथा सर्व भूतान्त रात्मा रूपं रूपं प्रति रूपो बहिश्च॥

सो०—मैं समुझ्यो निरधार, यह जग काँचो काँच सों।
एकै रूप अधार, प्रतिबिम्बित लखियत जहाँ॥

—*—

१०-अज्ञानियों का मत भेद।

चार अन्धे हाथी देखने चले। एक अन्धे ने हाथी का पैर छू पाया, उसने कहा-"भाई हाथी खम्भा सा होता है"। दूसरे अन्धे ने हाथी का सूँड़ छुआ और बोला-"भाई, हाथी तो लट्ठ सा होता है"। तीसरे अन्धे ने हाथी का पेट छुआ और बोला-"हाथी घड़ा सा होता है"। चौथे ने कान छुआ और कहा-"हाथी सूप

सा होता है"। इसी प्रकार वह चारों अन्धे हाथी के स्वरूप के विषय में लड़ने लगे। एक कहता ऐसा है दूसरा कहता ऐसा है। इतने में एक दूसरा आदमी उधर से आ निकला। उसने अंधों से पूछा-"तुम सब क्यों आपस में लड़ रहे हो?" अन्धों ने सब हाल बता कर कहा-"आप मेरे पञ्च हैं इस का न्याय करें"। पंच ने कहा-'तुम में से किसी ने हाथी नहीं देखा। हाथी खम्भा सा नहीं होता बल्कि हाथी के पैर खम्भे की तरह होते हैं, हाथी घड़े सा नहीं होता किन्तु उसका पेट घड़े सा होता है, हाथी सूप सा नहीं होता किन्तु उसके कान सूप की नाईं होते हैं, हाथी लठ्ठ सा नहीं होता किन्तु उसकी सूँड़ लठ्ठसी होती है"।

इसी प्रकार भिन्न २ मत वाले आपस में लड़ने हैं कोई कहता है ईश्वर ऐसा है कोई कहता है ऐसा है। परन्तु फल इस का यह होता है कि कोई भी ईश्वर के सच्चे स्वरूप का ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकता॥

—*—

११-ज्ञानी और भक्त में भेद।

एक ज्ञानी और एक भक्त किसी घने जंगल में चले जाते थे, दैवयोग से एक सिंह उसी रास्ते से आ निकला। ज्ञानी ने सिंह को देख कर अपने मित्र भक्त से कहा-"डरो मत, भागते क्यों हो, ईश्वर हम दोनों की अवश्य रक्षा करैगा"। भक्त ने उत्तर दिया-'नहीं भाई, जिस कार्य को हम स्वयं कर सकते हैं उस के लिये ईश्वर को क्यों कष्ट दें"।

जिस का कोई न हो हृदय से उसे लगावे।
प्राणि मात्र के लिये प्रेम की ज्योति जगावे॥
सब में विभु को व्याप्त जान सब को अपनावे।
हो बस ऐसा वही भक्त की पदवी पावे॥

—*—

१२—भक्ति और प्रेम।

एक बार नारदजी के मनमें अहंकार हुआ कि मेरे बराबर भगवान का कोई प्रेमी और भक्त नहीं है। भगवान तो अन्तर्यामी हैं नरदजी की यह बात जान गये और मन में सोचा:—

उर अंकुरेउ गर्व तरुभारी। अवशि सो मैं डारिहौं उखारी॥

भगवान ने नारद से कहा-"चलो थोड़ी दूर घूम आवें"। जब दोनों जने चले तो राह में एक आदमी कमर में तलवार बाँधे सूखी घास खा रहा था नारद जी उसको देखते ही ताड़ गये कि यह वैष्णव है क्यों कि वैष्णव लोग जीवहिंसा को पाप समझते हैं। और घास में भी जीव मान कर सूखी घास खाकर दिन काटते हैं। परन्तु कमर में तलवार क्यों लटकाये है इसका मर्म नारद जी की समझ में न आया। नारद ने यह बात भगवान से पूछी। भगवान ने कहा—"ब्राह्मण से पूछ लो"। नारद जी ने ब्राह्मण से जाकर पूँछा—"भाई, वैष्णव लोग तो जीवहिंसा को पाप समझते हैं फिर तुम तलवार क्यों लटकाये हो, यह तुम्हारे किस काम आयेगी?" ब्राह्मण ने कहा-"यह तलवार तीन दुष्टों को मारने के लिये है।" नारद ने कहा-"वह तीन दुष्ट कौन कौन से हैं?" ब्राह्मण ने

कहा-"पहला दुष्ट तो अर्जुन है जिसने मेरे इष्ट देव कृष्ण भगवान को सारथी बना कर उनसे रथ हँकाया।" नारद ने पूछा-"और दूसरा?" ब्राह्मण ने उत्तर दिया-"दूसरा द्रौपदी चुड़ैल है जिसने भगवान को अपना जूठा अन्न खिलाया।" नारद ने कहा-"और तीसरा?" ब्राह्मण ने जवाब दिया-"तीसरा दुष्ट नारद है।" नारद ने पूछा-"उसने क्या अपराध किया?" ब्राह्मण बोला-"वह दुष्ट रात दिन भगवान को पुकारा करता है और वीणा बजा कर गाया करता है। उसको भगवान का कुछ भी ध्यान नहीं है। भगवान की मीठी नींद में विघ्न डालता है।" नारद जी ने उसकी भक्ति तथा उसके प्रेम की प्रशंसा की और उसी दिन से अपना अहंकार छोड़ दिया।

——*——

१२—ईश्वर अवतार क्यों लेता है?

एकबार किसी राजाने अपने मंत्री से पूछा—"मंत्री जी, ईश्वर अवतार क्यों लेता है? यदि यह कहो कि भक्तों के दुख दूर करने के लिये तो क्या उसके पास नौकर चाकर नहीं हैं? अपने नौकर चाकरों के द्वारा भी ईश्वर यह काम करा सकता है फिर वह स्वयं कष्ट क्यों सहता है?" मंत्री ने कहा—"महाराज इस समय मैं इसका उत्तर नहीं दे सकता, कभी दूसरे अवसर पर दूंगा"। मंत्री ने गुप्त रूप से राज कुमार की मोम की एक प्रतिमा बनाई जो देखने में बिल्कुल राज कुमार ही सी थी। उसको राज केमकुरा सभी कपड़े भी पहिना दिये। एक नौकर को मंत्री ने समझा दिया था कि जब राजा साहब नाव पर चढ़ें तो तुम यही

प्रतिमा नाव पर लाना और पानी में फेंक देना। दूसरे दिन जब राजा साहब जल बिहार करने चले तो मंत्री भी साथ ही थे। जैसे ही नाव किनारे से चली कि नौकर आता हुआ दिखाई दिया। नौकर गोद में राजकुमार की प्रतिमा लिये था। मंत्री ने राजा से कहा—"महाराज। राजकुमार को भी आ जाने दीजिये"। नौकर राजकुमार की प्रतिमा लेकर जैसे ही नाव पर चढ़ा कि राजा ने राजकुमार को अपनी गोद में लेना चाहा, नौकर ने ऐसी असावधानी से दिया कि प्रतिमा नदी में गिर गई। राजा ने समझा कि राजकुमार नदी में गिर गया। राजा तुरन्त नदी में कूद कर प्रतिमा बाहर लाये। राजकुमार की जगह मोम की प्रतिमा थी। मंत्री ने कहा—'महाराज! आपके साथ कितने ही नौकर, मल्लाह सभी मौजूद थे जो कि राजकुमार को एक क्षण में नदी से निकाल सकते थे, आपने स्वयं परिश्रम क्यों किया?'। राजा ने कहा—"राजकुमार को मैं इतना प्यार करता हूं कि उसको गिरते देख कर मैं प्रेम से विह्वल हो गया। नौकरों को पुकारने का ज्ञान ही न रहा—मैं स्वयं कूद पड़ा"। मंत्री ने कहा—"धर्मावतार! आप के उस दिन के प्रश्नका भी यही उत्तर है। अपने भक्तोंको दुखमें देखकर ईश्वर प्रेम से विह्वल होकर किसी दूसरे से न कह कर स्वयं प्रकट हो जाता है।"

यद्यपि है सर्वत्रही, व्यापक गगन समान।
पर निज भक्तों के लिये, छोटा है भगवान्॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतां।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

अर्थात् (श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं) साधुओं की रक्षा

करने के लिए, दुष्टों को दण्ड देने के लिए और धर्म की स्थापना करने के लिए मैं युग युग में अवतार लेता हूँ।

जब जब होय धर्म की हानी।
बाढ़हि असुर अधम अभिमानी॥
तब तब प्रभु धरि मनुज शरीरा।
हरहिं सदा सज्जन भव पारा॥

—— * ——

१४· ईश्वर को सर्व दृष्टा समझ कर मनुष्यको पाप से बचना चाहिये।

एक गुरु के पास तीन आदमी गये और प्रार्थना की कि महाराज, हम लोगों को धर्म का उपदेश दीजिए। गुरुने तीनों आदमियों को मिट्टी की बनीं हुई एक २ चिड़ियां देकर कहा—"जाओ इन खिलौनों को वहां तोड़ आओ जहाँ कोई भी न देख सके तो मैं तुम लोगों को धर्म का उपदेश करूँगा"। तीनों अपने २ खिलौने लेकर चले। पहिला आदमी बहुत जल्द लौट आया। गुरु ने उससे पूछा—"तुमने अपनी चिड़िया कहां तोड़ी?" उसने उत्तर दिया—"महाराज मैं आपकी कुटी के पिछवाड़े गया, वहाँ इधर उधर कोई भो न दिखाई दिया अतएव मैंने वहीं चिड़िया तोड़ डाली"। इतने में दूसरा मनुष्य भी आ पँहुचा। उससे गुरु ने पूछा—"तुमने अपनी चिड़िया कहाँ तोड़ी?" उसने उत्तर दिया—"मैं यहाँ से एक जंगल में गया एक पेड़ के नीचें बैठ कर इधर उधर देखा, मनुष्य की कौन कहे वहां कोई जीव जन्तु भी न

दिखाई दिया, अतएव मैंने वहीं अपनी चिड़िया तोड़ डाली'। कुछ देर के पश्चात् तीसरा मनुष्य भी लौट कर आया परन्तु वह अपनी चिड़िया हाथ में लिए हुये था। गुरुने उससे पूछा—"तुमने अपनी चिड़िया क्यों नहीं तोड़ी?" उसने उत्तर दिया-"महाराज! गहन से गहन बनों में, विजन विपिन में, गहरी से गहरी घाटियों में मैं फिरता रहा परन्तु कहीं भी मुझे ऐसा स्थान न मिला जहाँ ईश्वर न देखता हो। इस लिए मैंने अपनी चिड़िया नहीं तोड़ी?" गुरुने कहा—"सत्य है ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ पर ईश्वर न हो! मनुष्य पाप करते समय यह सोचता है कि मुझे यह करते हुये कोई भी नहीं देख रहा है परन्तु यह उसकी भूल है जो सबके पाप पुण्य का फलदाता है वह ईश्वर तो सब कुछ देखता ही है दूसरों के न देखने से क्या लाभ?" गुरु ने तीसरे आदमी को रख कर और दोनों को यह कह कर कि अभी तुम धर्म के अधिकारी नहीं हो बिदा कर दिया॥

जानि सर्वगत ईश कौ, करै न कबहूँ पाप।
सबहिं चराचर जगतको, देखत है वह आप॥

—*—

१५-ईश्वर को आँखों से दिखा दो।

एक मूर्ख ने एक महात्मा से पूछा—"ईश्वर है या नहीं?" महात्मा ने कहा-"ईश्वर है" मूर्ख ने कहा-"यदि ईश्वर है तो मुझे आंखों से दिखा दो।" महात्मा ने वेदों के प्रमाण देकर बहुतेरा समझाया परन्तु मूर्ख ने न माना। महात्मा ने मिट्टी का एक ढेला उठा

कर मूर्ख के शिर में मारा। मूर्ख रोता हुआ राजा के पास गया। राजा ने महात्मा जी को बुलवाया और उनसे पूछा-"आप ने इसको क्यों मारा, इसके बहुत दर्द हो रहा है।" महात्मा ने कहा-"मैंने तो इसके प्रश्न का उत्तर दिया है।" राजा ने कहा-"यह कैसा उत्तर है।" महात्मा ने कहा-"यह कहता था यदि ईश्वर है तो मुझे आँखों से दिखा दो, मैं कहता हूँ यदि इसके शिर में दर्द है तो मुझको आँखों से दिखा दे।" मूर्ख ने कहा-"दर्द तो है परन्तु दर्द आँखों से देखने वाली चीज़ नहीं है' महात्मा ने कहा-"ईश्वर भी तो है परन्तु आँखों से देखने की वस्तु नहीं है।" यह सुन कर मूर्ख चुप चाप अपने घर चला गया।

जैसे माखन दूध में, अनुगत गगन समान।
व्यापक सब में हो रहा, नर धर तिसका ध्यान॥

—*—

१६-गृहस्थी में भगवद्भजन का फल।

एक बार नारद मुनि के हृदय में यह अहंकार हुआ कि संसार में मेरे बराबर भगवान का कोई भक्त नहीं है। भगवान ने उनका यह भ्रम दूर करने के लिये उनसे कहा—"नारद, मृत्यु लोक में एक किसान मेरा परम भक्त है आप उससे मिल आइये।" नारद जी उसके पास गये, देखते क्या हैं कि वह किसान प्रातः काल हरि का स्मरण करके कन्धे पर हल रख कर खेत जोतने को जाता है। दिन भर खेत जोतता है। सायंकाल फिर खेत से लौट कर हरि का नाम लेकर हल रख देता है और खाकर सो रहता

हैं। उसका नित्य का यही काम था। नारद जी ने मन में सोचा कि यह दिन भर तो हल जोतने में लगा रहता है यह भगवान का भक्त कैसे हो सकता है। नारद जी भगवान के पास लौट कर गये तो जब भगवान ने नारद से पूछा कि आपने उस भक्त को कैसा पाया तब नारद ने कोई संतोषजनक उत्तर न दिया। भगवान ने नारद को एक कटोरा तेल से भरा हुआ देकर कहा-"आप इस कटोरे को लेकर शहर की गलियों में घूम आइये परन्तु ध्यान रखिये कि एक बुन्द भी तेल गिरने न पावे।" नारद जी ने ऐसा ही किया। जब लौट कर गये तब भगवान ने नारद से पूछा—"आपने मुझे कितनी बार स्मरण किया?" नारद ने कहा—"महाराज! मेरा मन तो तैल के ऊपर लगा था कि कहीं गिर न जाये मैं आपको कैसे स्मरण करता।" भगवान ने कहा-"अब सोचो कि एक तैल के कटोरे से तुम्हारी यह दशा हुई कि तुम मुझको भूल हो गये परन्तु देखो उस किसान को जो सारे गृहस्थी का भार सँभाले हुए भी दिन में मुझे दो बार याद करता है।"

ज्यों तिरिया पीहर बसे, सुरति रहे पिय माहिं।
ऐसे जन संसार में, हरि को भूलें नाहिं॥

—*—

१७-जो स्वयं मुक्त है वही दूसरे को मुक्त कर सकता है।

एक पंडित ने किसी यजमान को भागवत की कथा सुनाई। जब कथा समाप्त हो गई, हवन हो चुका तो यजमान ने कहा—

"पंडित जी पोथी में तो लिखा है कि जब श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित को सप्ताह सुनाया था तो कथा की समाप्ति पर राजा को लेने के लिये विमान आया था, मेरे लिये विमान क्यों नहीं आया।" पंडित जी ने कहा—"सत्य युग में धर्म के चार चरण थे अब तो केवल एक ही चरण रह गया है अतएव चौगुना पुण्य करने से पूर्ण फल मिलता है।" यजमान ने २००) भगवान पर चढ़ाया था। झट ६००) लाकर जमा कर दिये और कहा—"महाराज तीन बार और कथा सुनाइये।" जब तीन बार और कथा सुन चुके तो फिर भी विमान न आया। पण्डित जी बहुत घबराये अन्त को यजमान को लिवा कर एक महात्मा के निकट जाकर हाथ जोड़ कर बोले—"महाराज! मैंने यजमान को एक बार के बदले चार बार कथा सुनाई परन्तु फिर भी बिमान न आया, क्या कारण है।" महात्मा जी ने कुछ उत्तर न दिया और उन दोनों के हाथ पैर बाँध कर एक स्थान पर डाल दिया। दोनों एक दूसरे को ताकते रह गये। महात्मा ने कहा—"एक दूसरे को ताकते क्या हो, छोड़ क्यों नहीं लेते। उन्हों ने कहा-हम तो दोनों बन्धन में हैं कैसे एक दूसरे को मुक्त कर सकते हैं; आप ही कृपा कर छोड़ दीजिये।" महात्मा ने उनको मुक्त कर के कहा—"जैसे तुम दोनों एक दूसरे को नहीं मुक्त कर सकते थे उसी प्रकार जो संसार से स्वयं मुक्त नहीं है वह दूसरे को क्या मुक्त कर सकता है। शुकदेव जी मुक्त थे तभी तो राजा परीक्षित को मुक्त कर सके। तुम ती स्वयं संसार की माया में फँसे हो दूसरों को कैसे पार लगा सकते हो।

१८—देह होते हुये विदेह क्यों ?

एक दिन राजा जनक के मंत्री ने उनसे पूछा—"महाराज ! आप देह होते हुये विदेह क्यों कहलाते हैं ?" राजा ने कहा—"इसका उत्तर कभी दे दूँगा। एक दिन राजा जनक ने नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि 'आज ४ बजे दिन को मंत्री जी को किसी अपराध के कारण फाँसी दी जायगी। ढिंढोरा पीटने वाले ने मंत्री के द्वार पर भी दो चार आवाज़ लगा दी, दो बजे दिन को राजा जनक ने भांति २ के व्यञ्जन बनवाये परन्तु नमक किसी में भी न डाला गया। मंत्री को बुला कर वही व्यञ्जन भोजन कराये और उनसे पूछा—"मंत्री जी ! भोजन में नमक कैसा रहा ? मंत्री ने उत्तर दिया—"महाराज ! यह जानकर कि दो घण्टे बाद मुझे फाँसी मिलेगी मैं विदेह हो रहा हूँ, मुझे ज्ञान नहीं है कि उन व्यञ्जनों में नमक था या नहीं,,। जनक जी ने कहा—'आपको तो पूर्ण विश्वास था कि अभी दो घण्टे तक आप को फाँसी न दी जायेगी। जैसे दो घण्टा समय रहते हुये भी आप विदेह हो गये वैसे ही एक मिनट की भी जिन्दगी का भरोसा न करता हुआ मैं सदैव विदेह रहता हूँ !

कठिन काल की विमल ध्वजा अब जरा दृष्टि में आती है।
करती हुई युद्ध रोगों से देह हारती जाती है॥

—:*:—

१९--कलियुग का स्वरूप।

जब महाभारत के युद्ध के अन्त में श्रीकृष्ण जी ने युधिष्ठिर को राज सिंहासन पर बैठने को कहा तो युधिष्ठिर ने राज्य को

सर्व अनर्थों का मूल कह कर गद्दी पर बैठने से इन्कार किया। श्रीकृष्णने कहा-"जब तक कलियुग का प्रवेश न हो तब तक राज्य करो फिर जब कलियुग आ जायगा तब तो संसार रहने के ही योग्य न रह जायग-"युधिष्ठिर तथा अन्य भाइयों ने पूछा-"महाराज! कलियुग का स्वरूप क्या होगा?" श्री कृष्ण ने पाँचो भाइयों को पाँच ओर भेज कर कहा—"जो कुछ रास्ते में देखना हमसे आकर बताना"। पाँचो भाई चले गये तो कुछ देर के पश्चात् युधिष्ठिर ने आकर कहा-"मैंने रास्ने में दो सूँड़ वाला हाथी देखा है। फिर अर्जुन ने आकर कहा—"मैंने बन में एक पक्षी देखा है जिसके परों पर वेदों के मंत्र लिखे थे। वह पक्षी मुर्दे को खा रहा था। फिर भीम ने आकर बताया—"मैंने बन में एक गाय देखी है जो अपनी बछिये का दूध पी रही थी। फिर नकुल ने कहा—मैंने तीन कुयें देखे हैं जो कि पास २ थे। बीच का कुआँ खाली था और शेष दोनों कुओं का पानी एक दूसरे में जा रहा था। अन्त में सहदेव ने कहा—'मैंने पहाड़ से एक पत्थर गिरते देखा है जो रास्ते के वृक्षों को तोड़ता हुआ एक घास के सहारे आकर रुक गया"। जब श्री कृष्ण ने सब की बात सुन ली तो कहा—"यह सब कलियुग का पूर्व स्वरूप है। इन बातों का तात्पर्य हम तुमको बतलाते हैं। (१) दो सूँड़ वाले हाथी का यह तात्पर्य है कि कलि के शासक (हाकिम) दोनों ओर (मुद्दई व मुद्दाअलेह) से घूँस लेकर हज़म करेंगे। (२) उस पक्षी का जिसके परों पर वेद मंत्र लिखे थे यह मतलब है कि कलि के ब्राह्मण वेद शास्त्र को पढ़ कर भी मुर्दों का दान लेंगे। (३) गाय का अर्थ यह था कि कलि में लोग अपनी लड़कियों

को बेच कर अपना पेट पालेंगे। (४) तीनों कुओं का अर्थ यह है कि कलियुग के धनवान लोग अपने गरीब भाई की मदद न करेंगे और अन्य २ जाति वालों से व्यवहार करेंगे। [५] और पहाड़ से पत्थर गिरने का तात्पर्य यह है कि कलि में संसार रूपी पर्वत से धर्म रूपी पत्थर खिसक पड़ेगा जिससे बीच के आचार विचार रूपी वृक्ष नष्ट हो जायेंगे अन्त में वह पत्थर भगवद्भजन रूपी तृण के सहारे से टिक जायेगा।"

कलि केवल हरि गुणगण गाना ❋ एक अधार राम भगवाना।

दया चट्ट हो गई धरम धँसि गयो धरन में।
पुण्य गयो पाताल पाप भो बरन बरन में।
राजा करै न न्याय प्रजा की होत खुवारी।
घर घर में बे पीर दुखित भे सब नर नारी।

अब उलटि दान गज पति मँगै, सील सँतोष किते गयो।
बैताल कहै विक्रम सुनो यह कलियुग परगट भयो॥

✓

———❋———

२०—सिद्धि।

एक ब्राह्मण ने चौदह वर्ष घोर तपस्या करके जल पर चलने की सिद्धि प्राप्त की। उस सिद्धि को प्राप्त करके वह अहंकार करता हुआ अपने गुरु के पास जाकर कहने लगा—"गुरुजी, गुरुजी! मुझे जलपर चलने की सिद्धि प्राप्त होगई! गुरु ने कहा "क्या यही तेरी १४ वर्ष की तपस्या का फल है। तू विचार कर देख तुझे तो केवल एक पैसा मिला है तूने चौदह वर्ष की तपस्या

करने पर केवल एक पैसा पाया क्योंकि जो बात तू १४ वर्ष तपस्या करके कर सकता है वही बात मल्लाह को एक पैसा उतराई देने से पास हो सकती है।" तपस्या ईश्वर के पास करने का साधन होना चाहिये नहीं तो यदि ऐसेही ऐश्वर्य की सिद्धि प्राप्त करनी हो तो तपस्या की क्या आवश्यकता, व्यापार करना ही भला है॥

—*—

२१-इन्द्रिय निग्रह।

एक मियाँ किसी गाँव में रहते थे। उनकी वीवी भी थी। मियाँ झारा फूकी का काम करते थे। एक दिन बरसात में जब मियाँ की तिदरी टपक रही थी उनकी स्त्री ने कहा-"तिदरी कई दिन से टपक रही है, इसे बन्द कर दीजिये। मियाँ ने उत्तर दिया—"अभी कुछ ज्यादा तो टपक नहीं रही है, बन्द कर देंगे,,। इतने में मियाँ का झारा फूँ की करने को बुलावा आया। मियाँ जी झट एक छुरी लेकर चल दिये। उनकी बीबी ने सोचा कि चलकर देखें तो सही, यह कैसे झाड़ते हैं अतएव पीछे २ उनकी बीबी भी चली जब मियाँ जी पहुंचे तो पृथ्वी पर उसी छुरी से रेखा खींच कर झाड़ने लगे—" जल बाँधौं, थल बाँधौं, बाधौं जल की काई जले मीरा सैयद बाँधौं हनुमान की दुहाई; छू" फिर पढ़ने लगे,—"आकाश बाँधूँ, पाताल बाँधूँ दे तड़ाक छू"। अभी फूँक पूरी भी न हुई थी कि बीवी ने पीछे से एक थप्पड़ तड़ाक से देकर कहा—"भडुये, घरमें तो तिदरी न बाँधी बँधी यहाँ आकाश और पाताल बाँध रहा है॥

इसका दर्ष्टान्त यों है कि इस जीवात्मा से शरीर रूपी तिदरी के इन्द्रिय रूप छिद्र तो बन्द किये ही न गये तो फिर इससे देश, धर्म और जाति-हित की क्या आशा की जाये ?

—*—

२२--अब के न तब के।

एक बार किसी राजा ने अपने मंत्री से कहा—"हमारे पास २ आदमी अब के, दो मनुष्य तबके और दो मनुष्य अबके न तब के लाओ"। मंत्री भी बड़ा ही चतुर था प्रश्न का आशय समझ कर दो सन्यासियों और दो राजाओं से प्रार्थना की कि आपलोग थोड़ी देर के लिये राजा के पास चलने का कष्ट उठाने की कृपा करें। उनचारों को और दो मनुष्य हम और आप सरीखे मनुष्यों में से लेकर राजा के पास जाकर मंत्री ने कहा—"महाराज आप जिन मनुष्यों को चाहते थे उपस्थित हैं"। प्रथम सन्यासियों को खड़ा कर कहा—"यह दो मनुष्य अबके हैं अर्थात् इस जीवन में सत्कर्म कर रहे हैं आगे इसका फल पावेंगे।" पुनः दोनों राजाओं को खड़ा करके कहा-"यह दो मनुष्य तब केहैं अर्थात् उस जीवन में कुछ सत्कर्म किये थे जिसका फल इस काल में पा रहे हैं"। पुनः हम और आप सरीखे दो मनुष्यों को खड़ा करके कहा—"यह दो मनुष्य अबके न तबके हैं अर्थात् न तो इन्हों ने पूर्व जन्म में कोई सत्कर्म किये थे कि इस जन्म में उसका फल पाते और न इस ही जन्म में कोई धर्म कार्य कर रहे हैं जिससे भविष्य ही में कुछ आशा पाई जावे!

—*—

२३—विषयों की असलियत।

किसी राजा का पुत्र अपने मंत्री की कन्या को देख कर उसके लावण्य पर मुग्ध हो गया यहाँ तक कि उसी दिन से खाना पीना छूट गया। बहुत कुछ पूछने पर राज पुत्र ने सच्चा वृतान्त कह दिया। राजा बड़े असमंजस में पड़ा। मंत्री ने राज कुमार का सारा वृतान्त अपनी स्त्री तथा कन्या से कहा। मंत्री की कन्या ने कहा "आप राजकुमार से कह दें कि उठ कर अन्न जल करें मैं उनसे परसों मिलूंगी। मंत्री ने राजकुमार से जाकर इसी प्रकार कह दिया। राजकुमार ने प्रसन्नता पूर्वक उठ कर भोजन किया। इधर तीसरे दिन मंत्री की पुत्री ने अपने पिता से कहा—"आप कृपा कर ५० कूँडे और ५० रेशमी रूमाल मँगा दीजिए।" मंत्री ने तुरन्त सब मँगा दिया। मंत्री की पुत्री ने वैद्य के यहाँ से कड़ा जुल्लाव मँगा कर खा लिया। लगे दस्त पर दस्त आने। वह लड़की उन्हीं कूड़ों में पाखाने जाया करती और जिसमें पाखाने हो आती उसके मुँह पर एक रेशमी रूमाल बाँध देती। इसी प्रकार सब कूड़ों में पाखाने जाकर उनके मुँह पर रूमाल बाँध दिया। जब सब कुंड़े बँध गये तो लड़की ने अपने पिता से कहा—"आप जाकर राजपुत्र को लिवा लाइये"। मंत्री राजपुत्र को लिवाने गया। इधर लड़की दस्त आते २ इतनी कमजोर हो गई थी कि शरीर पीला पड़ गया और चारपाई पर पड़ी थी कपड़े मैले में लुथड़े थे। जब राजकुमार सज धज कर मंत्री के घर में गया तो पाखाने की बदबू आने लगी। राज-कुमार ने नाक पर रूमाल रख कर कहा—"मंत्री जी, किस वस्तु

की बदबू आ रही है"। मंत्री ने कहा—"चले आइये, होगी कोई चीज़"। राज कुमार जब मंत्री की लड़की के पास पहुँचा तो मारे बदबू के खड़ा भी न रहा जाता था। राजकुमार ने लड़की की दशा देख कर कहा—"परसों तो मैंने इसको उस रूप में देखा था, आज क्या होगया"। मंत्री की लड़की ने कहा—"यदि आप को मुझसे प्रेम था तो मैं सेवा में उपस्थित हूँ और यदि आप को सुन्दरता से प्रेम था तो वह कुंडों में भरी पड़ी है" राजकुमार ने कन्या की यह गूढ़ बात न समझी और यह जाना कि सुन्दरता कोई विशेष वस्तु है जो कुंड़ों में भरी है। जाकर कुंड़ों के मुँह पर बँधी हुई रूमाल खोल कर देखा तो आँखें खुल गयीं और उसी समय वैराग्य उत्पन्न होगया उस दिन से विषयों से चित्त हटाकर भगवत् भजन में संलग्न होगया और कुछ ही दिनों में मोक्ष लाभ किया।

चिकनी मिट्टी पर फिसलने वाले नव युवक सोचें और विषयों की असलियत पर ध्यान दें।

जो विषया संतन तजी, मूढ़ ताहि लपटात।
ज्यों नर डारत बमन करि, स्वान स्वादु सों खात॥

२४—वन्द्यज्ञानी।

किसी ग्राम के निकट एक जगल में एक अवधूत महात्मा रहते थे। लँगोटी तक नहीं रखते थे और अपने हाथ से भोजन भी नहीं करते थे। यदि कोई उनके मुँह में डाल देता तो खा

लेते और जहाँ तहाँ पेशाब पाखाना भी कर देते थे। एक दिन राजा की रानी उनके दर्शन को गई। रानी एक थाल में पेड़े लेकर गयी और महात्मा के पास बैठ गई। थोड़ी देर में वह अवधूत रानी की गोद में आकर बैठ गये। रानी अपने हाथ से उनके मुँह में पेड़ा देने लगी और वह खाने लगे। अभी दो तीन ही पेड़े खाये थे कि अवधूत ने रानी की गोद में पाखाने फिर दिया। रानी एक पेड़े के साथ मैला लगाकर अवधूत को खिलाने लगी तो अवधूत ने मुँह फेर लिया। रानी ने अवधूत को गोद से पटक दिया और ऊपर से दो तीन लात भी जमा दिये और कहा—"क्यों रे कपटी! तुझको इतना तो होश नहीं है कि यह रानी की गोद है या पाखाने का स्थान, और इतना ज्ञान है कि तुझको मैं मैला मिलाकर खिला रही हूं, तूने सच समझ कर मुँह फेर लिया है"। रानी ने नौकरों को आज्ञा दी कि इस पाखण्डी को हमारे देश से बाहर निकाल दो।

उघरे अन्त न होय निबाहू।
कालनेमि जिमि रावण, राहू॥

हे साधुओ! चेतो तो सही:—

कुछ वेष की भी लाज रक्खो, अज्ञता का अन्त हो।
भरकर न केवल उदर ही तुम लोग सच्चे सन्त हो॥
बाधा मिटा दो शीघ्र मन से इन्द्रियों के रोग की।
फैले चमत्कृति फिर यहाँ पर सिद्धि मूलक योग की॥

२५—जोरू का गुलाम (झूठा विरक्त)।

एक दिन एक बाबू साहब एक महात्मा से गृहस्थी विरक्तों की बातें कर रहे थे। महात्मा ने कहा—"आपको क्या मालूम कि गृहस्थी विरक्त कैसे होते हैं। वह जो कुछ धन कमाते हैं जोरू को दे देते हैं और जोरू के ही जिम्मे सब खर्च होता है। इस प्रकार अपना काम चलाते हैं और कहते हैं कि—"हम तो रूपया हाथ से भी नहीं छूते, हमें धन दौलत से क्या काम।"

एक ऐसे ही गृहस्थी विरक्त थे। एक दिन एक ब्राह्मण उनके पास माँगने को आया। विरक्त ने कहा—"तू मुझे क्यों दिक करता है मैं तो रुपये पैसे को छूता भी नहीं।" परन्तु फिर भी ब्राह्मण ने विरक्त का पीछा न छोड़ा। विरक्त ने सोचा कि यह ब्राह्मण अत्यन्त दीन जान पड़ता है इसको एक रूपया दे देना चाहिये। यह सोचकर विरक्त ने ब्राह्मण से कहा—"तुम कल आना तो जो कुछ तुम्हारे भाग्य में होगा मिल जायगा।" ब्राह्मण चला गया। गृहस्थी विरक्त ने घर में जाकर स्त्री से कहा—"वह ब्राह्मण बेचारा बड़े दुःख में है उसको एक रुपया दे देना चाहिये।" जोरू को इस पर बड़ा क्रो... ऐं"! ऋषिने राज-
और वह झुँझला कर कहने लगी—"रुपये ... तुम इसी आश्रम पर बैठे रहो,
खटक रहे हैं आप बड़े दानी बनने ... हैं"। ऋषि जब राज भवनमें गये
...भी न दूंगी यदि देना हो ...
...क जी करते ही क्या ... थी उससे कहा—

रहते ब्राह्मण आया ...री श्याम की, बात सुनावो तोहिं।
भी महात्मा ने विनाश्यो सिंहने, आसन पर्यो मोहिं॥

विरक्त कभी धर्मात्मा नहीं होते बल्कि स्त्रियों के गुलाम होते हैं।"

वे भूरि संख्यक साधु जिनके पन्थ भेद अनन्त हैं।
अवधूत, यति, नागा, उदासी, सन्त और महन्त हैं।
हा! वे गृहस्थी से अधिक हैं आज रागी दीखते।
अल्पज्ञ ही सच्चे विरागी और त्यागी दीखते॥

———o———

२६-मीठा मीठा गप्प, कड़ुवा कड़ुवा थू

(ठगवेदान्ती)

एक वेदान्ती ब्राह्मण ने बड़े परिश्रम से एक वाटिका लगवाई। उसमें बहुत से अच्छे अच्छे आमके पेड़ भी लगवाये। एक दिन एक गाय वाटिका में जाकर उसके एक आमके पौधेको खा गई। ब्राह्मण को उस गाय पर ऐसा क्रोध आया कि उसने गायको इतना पीटा कि वह मर गई। गाँव वालोंने ब्राह्मण से कहा—"तुमने गो हत्या की है, इसका पायश्चित करो"। ब्राह्मण ने कहा—"मैंने तो गाय को मारा नहीं, मेरे हाथ ने मारा है। और हाथ का देवता ...व. सब अपराध इन्द्रका है वही पायश्चित करे"। इन्द्र ...भरकर नें ...ठे बैठे ब्राह्मण की सारी बातें सुन रहे थे। ...बाधा मिटा दो शां...के उस ब्राह्मण के पास आ खड़े ...फैले चमत्कृति फिर यहाँ ...है?" ब्राह्मणने कहा—"यह "यह बाग बड़ा सुन्दर है, ———o——— ...का माली बहुत ही ...हा—"माली भी

मुझको ही समझिये, मैंने ही नौकरों से सब लगवाया है" साधुने कहा—"और यह सुन्दर तथा साफ़ सड़क किसकी है?" ब्राह्मणने कहा—"यह भी हमारी ही है मैंने स्वयं बनवाई है"। तब इन्द्र ने अपना असली रूप प्रगट करके कहा—"ब्राह्मण देवता! सबतो आपके किये हुआ और सबके स्वामी आप हैं तो गो हत्या का पाप मेरे सिर क्यों मढ़ रहे हो, मीठा २ गप्प, कड़ुवा २ थू"।

—*—

२७-निर्मोही राजा।

किसी नगर में एक निर्मोही नामक राजा रहता था। उस राजा का पुत्र एक दिन शिकार खेलने को गया, वहाँ पर उसको बड़ी प्यास लगी तो वह बन में एक ऋषि के आश्रम पर गया। ऋषि ने उसको जल पिलाकर पूँछा—"तुम किसके लड़के हो?" उसने उत्तर दिया—"भगवन्! मैं निर्मोही राजा का लड़का हूँ"। ऋषि ने इस बातको सुन कर कहा—"यह दोनों बातें एक में कैसे हो सकती हैं, जो निर्मोही होगा वह राजा नहीं होगा और जो राजा होगा वह निर्मोही नहीं हो सकता"। राजकुमार ने कहा—"यदि आपको सन्देह हो तो परीक्षा कर लीजिए"! ऋषिने राजकुमार से कहा—"हमारे आने तक तुम इसी आश्रम पर बैठे रहो, मैं जाकर परीक्षा करके आता हूँ"। ऋषि जब राज भवनमें गये तो द्वार पर लौंड़ी खड़ी थी उससे कहा—

तू सुन चेरी श्याम की, बात सुनावो तोहिं।
कुंअर विनाश्यो सिंहने, आसन परयो मोहिं॥

लौंडी ने हाथ जोड़ कर कहा—

"ना मैं चेरी श्यामकी, नहिं कोई मेरा श्याम।
भयो मेल प्रारब्ध सों, सुनो ऋषी अभिराम" ॥ २ ॥

ऋषि ने राजकुमार की स्त्री से कहा—

तू सुन चातुर सुन्दरी, अबला यौवन वान।
देवीवाहन दल मल्यो, तुम्हरो श्री भगवान" ॥ ३ ॥

स्त्री ने कहा—

"तपिया पूरब जन्म की, क्या जानत हैं लोग।
मिले कर्म वश आन हम, अब विधि कौन वियोग" ॥४॥

फिर ऋषिने रानी से कहा—

"रानी तुम पै बिपति अति, सुत खायो मृगराज।
हमने भोजन ना कियो, उसी मृतक के काज" ॥५॥

रानी ने कहा—

"एक वृक्ष डालें घनी, पंछी बैठें आय।
यह पाती पीरा भई, उड़ उड़ चहुँ दिशि जाय" ॥६॥

फिर ऋषि ने राजा से कहा—

"राजा मुख तैं राम कहु, पल पल जात घड़ी।
सुत खांयो मृग राज ने, मेरे पास खड़ी" ॥ ७॥

राजा ने कहा—

तपिया तप क्यों छाँड़िया, इहाँ पलक नहिं सोग।
बासा जगत् सरायका, सभी मुसाफिर लोग ॥ ८ ॥

ऋषि ने जब सब के उत्तरों को सुना तो उन्हें विश्वास हो गया कि राजाही नहीं बल्कि इसका परिवार भी निर्मोही है। ऋषि ने आश्रम पर आकर राजकुमार को सादर बिदा किया।

जग ते रहु छत्तीस है, रामचरण छः तीन।
तुलसी देखु विचारि यह, है यह मतो प्रवीन॥

—*—

२८—सच्चा त्याग।

एक बार व्यास जी ने शुकदेव जी को जनक जी के पास उपदेश लेने को भेजा। शुकदेवजी ने राजा के द्वार पर जाकर अपने आने की सूचना दी। जनक जी ने यह सोच कर कि देखें इनको क्रोध आता है या नहीं कहला दिया कि—"अभी द्वार पर ठहरें"। तीन घंटे तक शुकदेव जी द्वार पर खड़े थे परन्तु उनको तनिक भी क्रोध न आया तब राजा जनक उनको अन्दर लिवा गये। शुकदेवजी ने भीतर जाकर देखा कि स्वर्ण का सिंहासन बैठने के लिए धरा है साथ ही साथ ऐश्वर्य की सभी सामग्री उपस्थित है। सेवा के लिये दासियों की कमी नहीं। शुकदेवजी ने सोचा कि जो राजा इस प्रकार भोग विलास में मग्न हो वह मुझ त्यागी को क्या उपदेश दे सकैगा। इतने ही में एक नौकर चिल्लाता हुआ आकर राजा से कहने लगा—"महाराज! नगर में आग लग गई, राज भवन के द्वार तक आ पहुँची है यदि शीघ्रही कुछ रोक थाम न की गई तो समस्त राजभवन जल जायगा"। जनक जी तो उसी प्रकार बैठे रहे परन्तु शुकदेवजी ने कहा—"महाराज द्वार पर मेरा दण्ड कमण्डलु रक्खा है मैं लेता आऊँ नहीं तो वह भी जल जायगा। इस पर जनक जी ने कहा—

"अनन्तवत्तु मे वित्तं, यन्मे नास्ति हि किञ्चन।

मिथिलायां प्रदग्धायां न मे दह्यति किञ्चन ॥

अर्थात्-मेरा आत्मरूपी धन अनन्त है (उसका नाश हो ही नहीं सकता) इस जलती हुई मिथिला पुरी में मेरा कुछ भी नहीं जल सकता " ।

शुकदेवजी ने समझ लिया कि ठीक है घर छोड़ने से कोई त्यागी नहीं बन सकता, गृहस्थाश्रम में रह कर जो राजा जनक की नाईं पदार्थों में अनासक्त है वही सच्चा त्यागी है ।

—— * ——

२९—सच्चा संन्यास ।

एक मनुष्य स्त्री सहित संन्यासी हो गया और दोनों साथ ही साथ तीर्थ यात्रा कर रहे थे । एक दिन जब वह रास्ता चल रहे थे, पुरुष अपनी स्त्री से आगे बढ़ गया । रास्ते में एक हीरा पड़ा था । पुरुष ने सोचा कि ऐसा न हो कि मेरी स्त्री हीरे को देखकर ललचा जाय तो संन्यास में बाधा पड़े । ऐसा विचार कर ज़मीन खुरच कर मिट्टी से उस हीरे को ढाँपने लगा । इतने ही में उसकी स्त्री भी आ गयी । स्त्री ने पुरुष से पूछा—"आप क्या कर रहे हैं ?" पुरुष ने कुछ उत्तर न दिया । संन्यासिन (स्त्री) उसके मन की बात समझ गयी और कहने लगी—"यदि अब भी आप हीरे और मिट्टी में कुछ भेद समझते हैं तो घर छोड़ कर बाहर क्यों निकले थे । संन्यासी का मुख्य धर्म तो त्याग है ॥"

छोड़ घर बार किस लिए बैठे ।
दूर जीसे न जो हुई ममता ॥

तो रमाये भभूत क्या होगा।
जो रहा मन न राम में रमता ॥

—————*—————

३०--सच्ची लगन।

कोई परकीया नायिका अपने जार पति से मिलने के लिये जा रही थी। ठीक रास्ते में एक मौलवी साहब नमाज़ पढ़ रहे थे। वह स्त्री जार पति के प्रेम में इतनी तन्मय हो रही थी कि उसने मौलवी साहब को न देखा और उनके जानमाज (वह कपड़ा जिसको बिछा कर मुसलमान उस पर नमाज़ पढ़ते हैं) पर पैर रख कर चली गई। मौलवी साहब बिगड़ कर बोले—"क्यों री औरत, अंधी है क्या? देखती नहीं मेरी जानमाज़ पर लात रख कर चली गयी।" उस स्त्री ने उत्तर दिया:—

नर राँची मैं ना लख्यो, तुम कत लख्यो सुजान।
पढ़ कुरान बौरा भयो, नहिं जाने रहिमान ॥

अर्थात् मैं तो मनुष्य के प्रेम में इतनी मग्न थी कि मैंने आप की जानमाज़ नहीं देखी और आप ईश्वर पर भी प्रेम लगा कर मुझे किस तरह देखते रहे?

सज्जनों वृथा आडम्बर से कुछ लाभ नहीं। सिर्फ माला फेरने से काम नहीं चलता। इधर तो माला हाथ में चक्कर लगा रहा है उधर माला फेरने वाले दूकान पर खड़े हुये भाव कर रहे हैं किसी कवि का कथन कितना सच्चा है:—

माला फेरत युग गया, पाय न मन का फेर।
कर का मनका छाँड़िके, मन का मन का फेर ॥ १ ॥

जप, माला, छापा, तिलक, सरै न एकौ काम ।
मन काँचै नाचै वृथा, साँचै राचै राम ॥ २ ॥

——*——

३१-शान्ति की महिमा ।

यूनान देशका बादशाह सिकन्दर बड़ा नामी हो गया है जब उसने भारत पर चढ़ाई की तो एक दिन उससे किसीने कहा-"महाराज, इस भारत देश में बहुत बड़े बड़े त्यागी महात्मा रहते हैं, यहाँ से थोड़ी ही दूर पर एक ऐसे ही महात्मा हैं।" सिकन्दर ने नौकरों से कहा-"जाओ उन महात्मा को मेरे पास बुला लाओ।" बादशाह की आज्ञा मानकर नौकरों ने महात्मा के निकट जाकर कहा-"भगवान्, आप को दिग्विजयी सिकन्दर ने बुलाया है यदि आप न चलेंगे तो वह आप को मरवा डालेंगे। महात्माने कहाः-

"बादशाह दुनियाके हैं मुहरे मेरे शतरंज के ।
दिल्लगी की चाल हैं सब शर्त सुलहो जंग के ॥

फिर बोले-"अच्छा दिग्विजयी का क्या अर्थ है?" नौकरों ने कहा-"महाराज, सब जग को जीतने वाला।" महात्मा ने कहा-"तुम्हारा बादशाह कितने लाख मन नित्य भोजन करता है?" नौकरों ने कहा—"महाराज, हमारे बादशाह लाख दो लाख मन नहीं खाते, साधारण मनुष्यों की नाईं केवल आध सेर खाते हैं" इस पर महात्मा ने कहा—"तवतो तुम्हारे बादशाह से इस जंगल के प्रत्येक वृक्ष अच्छे हैं जो किसी को कष्ट न पहुँचा कर दूसरों का उपकार करते हैं"। नौकरोंने जाकर सिकन्दर से कहा-सिकन्दर महात्मा के

पास आ पैरों पर गिर पर हाथ जोड़कर बोला -"समस्त संसार का विजय करने वाला सिकन्दर जिसके पैरों पर चक्रवर्तियों के मुकुट गिरते हैं आज आप की शान्ति के सामने हाथ जोड़े खड़ा है"। धन्य है, शान्ति ऐसी ही आदरणीय वस्तु है।

रैन का भूषण इन्दु है, दिवस को भूषण भान।
दास का भूषण भक्ति है भक्ति को भूषण ज्ञान॥
ज्ञानको भूषण ध्यान है ध्यान को भूषण त्याग।
त्याग को भूषण शान्ति पद, तुलसी अमल अदाग॥

—*—

३२--शान्ति का उपाय।

एक अवधूत ने देखा कि एक चील अपनी चोंच में मांस का टुकड़ा लिये उड़ी जाती है और सैकड़ों कौये और चीलें उसका टुकड़ा छीनने के लिये उसके पीछे काँव काँव करती चली जा रही हैं। चील ने दुखित होकर माँस का टुकड़ा गिरा दिया और दूसरी चील ने टुकड़ा पकड़ लिया। तब तो सभी कौये उस चील के पीछे हो लिये। पहिली चील एक पेड़ पर बैठ कर शान्त हो गई। इस चील को देखकर अवधूत ने कहा—"अरी चील तू मेरी गुरु है। तू ने मुझको यह उपदेश दिया कि जब तक मनुष्य अपनी तृष्णाओं की गठरी, जिस के बोझ से वह दबा हुआ इधर उधर फिरता है, न फेंक दे तब तक उसे सुख और शान्ति नहीं मिल सकती"।

भार झोंकि के भार में, रहिमन उतरे पार।
वे बूड़े मँझधार में, जिनके सर पर भार॥

—*—

२२—जात पांत पूछे नाहिं कोय।

हरि को भजे सो हरि का होय।

एक समय अकबर बादशाह के यहाँ पाँच साधु आये। जब उनकी जाति पूछी गई तो उन्होंने उत्तर दिया।

जात पाँत पूछे नहिं कोय।
हरि को भजे सो हरि का होय।

अकबर ने बीरबल से कहा—"इनकी जाति का पता लगाओ" बीरबल ने उन लोगों से कहा—"आप लोग ईश्वर के विषय में कोई कविता सुनाइये"। पहिले साधु ने कहा—

राम नाम लड्डू गोपाल नाम घी।
हरि का नाम मिश्री घोल घाल पी"।

बीरबल ने कहा—"यह ब्राह्मण है"। दूसरे ने कहा—

"राम नाम शमशेर पकड़ ले, कृष्ण कटारा बाँध लिया।
दया धर्म की ढाल बनाले, यमका द्वारा जीत लिया"।

बीरबल ने कहा-"यह क्षत्रिय है"। तीसरे ने यह पढ़ा-

"साहब मेरा बानिया, सहज करे व्यापार।
बिन डण्डी बिन पालड़े, तोले सब संसार"॥

बीरबल ने कहा-"यह वैश्य है"। चौथे ने कहा-

राम झरोखे बैठ के, सब का मुजरा लेय।
जैसी जाकी चाकरी, ताको तैसा देय॥

बीरबल बोले-"यह शूद्र है"। पाँचवे ने कहा-

"जाति पाँत पूछै ना कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई"।

बीरबल ने उन्हें वर्ण शंकर ठहराया। जब साधुओं से पूछा गया तो उन्हों ने अपनी वही ज़ाति बताई जो बीरबल ने बताई थी। बादशाह ने बीरबल से पूछा-"तुमको इनकी जाति का पता कैसे लगा?" बीरबल ने कहा-"किसी का जातीय स्वभाव नहीं छूटता है। यद्यपि सभी साधु हैं और कविता भी सब की ईश्वर विषयक है तो भी इससे उनके कर्म झलकते हैं। ब्राह्मण खाने में लालची होते हैं अतएव वह अपनी कविता में लड्डू घी मिश्री लाये। जो क्षत्रिय हैं वह ढाल तलवार लाये, जो वैश्य हैं वह डण्डी तराजू लाये। और जो शूद्र हैं वह अपनी कविता में चाकरी शब्द लाये। और यह महात्मा जिन की जाति का ठीक नहीं है, वर्ण भेद की आवश्यकता ही नहीं समझते॥

क्या द्विजाति क्या शूद्र ईशको वेश्या भी भज सकती है।
स्वपचों को भी भक्ति भाव में शुचिता कब तज सकती है॥
अनुभव से कहता हूँ मैंने उसे कर लिया है वश में।
जिसका जी चाहे सो पीले अमृत भरा है इस रस में॥

जाति न पूछो साधु की, पूछि लीजिए ज्ञान।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान॥

३४-नकल में असल।

एक युवक किसी कार्य वश राजभवन में गया वहाँ उसने राजा को रानी से यह कहते सुना कि मैं अपनी राजकुमारी का विवाह किसी साधु के साथ करूंगा। उस जवान ने राजकुमारी को

देखा था और उसकी अलौकिक सुन्दरता पर वह मुग्ध हो चुका था। उसने अपने दिल में सोचा—"ऐसा अवसर हाथ से न जाने देना चाहिये, मैं क्यों न साधु भेष धारण कर साधु मण्डली में सम्मिलित हो जाऊँ? कदाचित राजकुमारी का विवाह मुझसे ही हो जाय।" ऐसा विचार कर साधओं का भेष धारण किया और साधु मण्डली में जा मिला। राजा ने अपने कथनानुसार एक ब्राह्मण को बुलाकर कहा—"तुम साधु-मण्डली में जाकर देखो तो मेरी पुत्रा के साथ विवाह करने पर कौन साधु तत्पर होता है।" ब्राह्मण ने जाकर सभी साधुओं से पूछा परन्तु किसी ने भी विवाह करना स्वीकार न किया। अन्ततो गत्वा जब उस साधु भेषधारी युवक से पूछा तो वह कुछ न बोला। ब्राह्मण ने राजा से जाकर कहा—महाराज! और तो सब साधुओं ने इन्कार कर दिया परन्तु एक युवक साधु के आगे जब मैंने यह प्रस्ताव उपस्थित किया तो वह कुछ न बोला। मौनम् सम्मति लक्षणम् के अनुसार जान पड़ता है कि यदि आप स्वयं उससे यह प्रस्ताव करें तो वह अवश्य ही स्वीकार कर लेगा। राजा ने दूसरे दिन ब्राह्मण को साथ लेकर साधु मण्डली में जाकर उस युवक साधु को सादर प्रणाम किया और हाथ जोड़कर कहा—"महात्माजी! मैं आप की शरण में हूँ आप मेरी कन्या को स्वीकार कर मुझे कृतार्थ करें। युवक साधुने अपने हृदय में विचार किया कि मेरे झूठे साधु बनने का यह-फल हुआ कि राजा भी मेरे चरणों पर शीश रखता है यदि मैं सच्चा साधु होता तो न जाने इसका क्या फल मुझे मिलता। उसने राजा से इन्कार कर दिया और आजन्म अविवाहित रहने का संकल्प करके साधु हो गया।

जब भलों की झूठी नकल करने का इतना फल होता है तो भला बन कर मनुष्य क्या नहीं पा सकता।

—*—

३५--रम खुदैया (द्विविधा)।

एक हिन्दू और एक मुसल्मान दोनों साथ साथ कहीं जा रहे थे। दोनों आपस में कहने लगे--"तुम्हारे खुदा बड़े या हमारे राम।" हिन्दू ने कहा-"हमारे राम बड़े।" मुसल्मान ने कहा—"मेरे खुदाबड़े।" दोनों ने कहा—"चलो परीक्षा करें।" दोनों में यह बात ठहरी कि अपने अपने ईश्वर का नाम लेकर इस पेड़ परसे कूदो, जिसके चोट न लगे उसी के देवता बड़े माने जाँय। पहिले हिन्दू पेड़ पर चढ़ कर पूर्ण विश्वास के साथ "जय रामचन्द्रकी" कह कर कूदा। उसको तो ईश्वर में पूर्ण विश्वास था इसलिये ईश्वर ने उसकी रक्षा की, उसके चोट न लगी। जब मुसल्मान की बारी आई तो उसने सोचा—"ऐसा न हो कि मैं खुदा का नाम लेकर कूदूं और मेरे हाथ पैर चूर हो जाँय। यह तो राम के नाम पर बच गया।" फिर सोचते २ कहा--"कोई हर्ज नहीं, मैं दोनों का नाम लेकर कूदूँगा जो बड़ा होगा मुझे बचावेगा।" ऐसा बिचार कर पेड़पर चढ़ कर "जय रम खुदैया जी की" कह कर कूद पड़ा। क्योंकि उसका विश्वास न तो राम में था न खुदाही में, इसलिये हाथ पांव टूट गये। सच है द्विविधा में कोई काम नहीं होता।

द्विविधा में दोनों गये, माया मिली न राम॥

३६--अपने कामसे भीगये।

एक ग्राम के बाहर एक महात्मा रहते थे। नगर के बहुत से लोग उनके पास सत्संग करने जाते थे, एक महाजन का लड़का भी उनके पास नित्य ही जाता था। एक दिन लड़का कुछ देर कर के महात्मा के पास गया। महात्मा ने पूछा—"आज तुम देर कर के क्यों आये?"। लड़के ने कहा—"आज मेरी सगाई थी, ससुराल से लोग तिलक चढ़ाने आये थे इसी से देर हो गई।" महात्मा ने कहा-"अ ज से तुम हमारे काम से गये।" फिर कुछ काल के पीछे लड़का चार पाँच दिन नागा करके महात्मा के पास गया। महात्मा ने पूछा-"तुम चार पाँच दिन कहां थे?"। लड़के ने कहा-"मेरा विवाह हुआ है। इसी लिये कुछ दिन तक आना नहीं हुआ।" महात्मा ने कहा-"आज से तू माता- पिता के भी काम से गया।" कुछ दिनों के बाद एक दिन लड़का फिर देर करके गया। महात्मा ने देर का कारण पूछा। लड़के ने कहा-"आज हमारे घर में लड़का पैदा हुआ है, इसी से आने में कुछ देर हो गयी।" महात्मा ने कहा—"आज से तू अपने काम से भी गया।" लड़के ने महात्मा जी से कहा-"महाराज पहले जब कि आपने मेरी सगाई का हाल सुना तो कहा- तू मेरे कामसे गया, फिर बिबाह का हाल सुनकर कहा कि तुम माता पिता के भी काम से गये, और अन्त में पुत्र की उत्पत्ति सुन कर कहा कि आज से अपने काम से भी गये, इसका तात्पर्य मैंने कुछ भी नहीं समझा कृपा कर इसका अर्थ बताइये"। महात्मा ने कहा-"जब तक तुम्हारी सगाई नहीं हुई

थी तुमको किसी बात की चिन्ता न थी क्यों कि उस समय तक तुमने गृहस्थाश्रम में प्रवेश नहीं किया था, जो कुछ तुम कमाते थे उस में से कुछ मेरी सेवा में भी अर्पण करते थे। सगाई होने पर विवाह की चिन्ता हुई तब से तुम जो कुछ कमाते थे वह विवाह के लिये एकत्रित करते थे और कुछ माता पिता की भी सेवा करते थे। जब विवाह हो गया तो जो कुछ तुम कमाते वह स्त्री को देने लगे इस प्रकार माता पिता के भी काम से गये। जब तक पुत्र नहीं हुआ था जो कुछ कमाते थे स्त्री के साथ तुम भी उसका स्वयं उपयोग करते थे। अब जब से लड़का पैदा हुआ तब से तुम जो कुछ कमाओगे लड़के के लालन पालन, विवाहादि में व्यय होगा इस प्रकार तुम अपने भी काम से गये और तुम पूरे गृहस्थ बन गये और कैद में जकड़ गये ॥

—— * ——

३७–दुख और सुख मानने ही का है।

एक वैश्य किसी कार्य वश विदेश चला गया। उसे कार्य वश वहाँ दश पन्द्रह वर्ष रहना पड़ा। जब वह परदेश जाने लगा था तो उसके वर्ष दिन का एक पुत्र था। अब वह लड़का युवा हो गया और अपने पिता से मिलने को चला। उसी बीच में वैश्य भी अपने घर को रवाना हुआ। संयोग वश वह लड़का एक स्थान पर किसी सरांय में दिन से ही अच्छी कोठरी देखकर उतर रहा। सायंकाल को वह वैश्य भी वहीं पहुँचा। जिस कोठरी में लड़का उतरा था वही वैश्य को भी पसन्द आई और कुछ अधिक भाड़ा देकर लड़के को उस में से निकलवा दिया। सरांय-

में और जगह न होने के कारण लड़का मैदान में पड़ा खेद से रात भर रोता रहा, परन्तु बनिये ने एक भी न सुनी। जब सवेरा हुआ तो बनियेंने लड़के को देखा और उससे पूछा—"तू कहाँ से आया है ?" लड़के ने अपना देश, मुहल्ला, जाति और पिता का नाम बताया। सुनते ही बनिया समझ गया कि यह तो मेरा ही लड़का है। अब उसको गले से लगा लिया और जो रात्रि को उसे दुख दिया था उसका अत्यन्त पश्चाताप करने लगा। देखो, वही लड़का रात्रि में भी था परन्तु उसको लड़का करके नहीं माना इस लिए कुछ दुख न हुआ। प्रातःकाल उसी को अपना लड़का समझ कर दुखी हुआ।

संसार में दुख और सुख कोई वस्तु नहीं है यह हृदय की एक कल्पना मात्र है। मनुष्य को जो वस्तु प्यारी है उसके लिए न मिलने की अवस्था में दुख होता है और मिलने पर सुख होता है॥

❋ कवित्त ❋

संपति के बढ़ेसों प्रतिष्ठा बाढ़ै सोच कहै रघुनाथ ताके राखिबेके रुखको। मन माँगै स्वादनि लपेट पेट पर्‌यो तासों अंग में अपार संग प्रगट्यो कलुषको।दारा सुत सखा को सनेह सों सँतापकारी, भारी है वचन यह बड़न के मुख को। जगत को जितनो प्रपंच तितनो है दुख सुख इतनो जो सुख मानि लेतो दुखको॥

—*—

३८--अपना अपना मतलब निकालना ।

किसी वृक्ष पर एक चिड़िया बैठी हुई निज स्वभावानुसार कुछ बोल रही थी उसी वृक्ष के नीचे सभी प्रकार के लोग उपस्थित थे एक ने कहा--"भाई, बताओ यह पक्षी क्या कह रही है ।" उसी समूह में से एक मुसलमान ने कहा--"चिड़िया कहती है--"सुभान तेरी कुदरत।" एक हिन्दू ने कहा--"तुमने नहीं समझा वह तो कहती है--"राम लक्ष्मण दशरथ।" फिर एक माली ने कहा--"अच्छा आपने बताया, चिड़िया यह नहीं कहती वह तो बोलती है-"नीबू नारंगी कमरख ।" पुनः कसरती लोग कहने लगे--"यह भी ठीक नहीं, चिड़िया कहती है—"दण्ड मुगदर कसरत" यह सुन-कर एक तँबोली बोला—"आप लोग अपनी ही अपनी अलापते हैं चिड़िया तो साफ २ कहती है—"पान पत्ता अदरख" फिर तो एक बनिये ने कहा—"चिड़िया कहती है--"हल्दी मिरचा ढ़क रख।" सब की बातें सुनकर चरखा कातने वाली बुढ़िया ने कहा—"किसी का ठीक नहीं, चिड़िया तो कहती है—"चरखा, पोनी चमरख ।"

इसी प्रकार आजकल के लोग बेद के ठीक आशय को न समझ कर अपना २ मतलब निकाल कर व्यर्थ वितण्डा वाद करते हैं ।

मारग सोइ जाकहँ जो भावा ।
पंडित सोइ जो गाल बजावा ॥

—०—

३९--सब से बड़ा देवता।

एक राजा ने एक महात्मा से प्रश्न किया—"महाराज, सब से बड़ा देवता कौन?" महात्माजी ने धीरें से शालिग्राम की बटिया उठाकर राजा को दे दी। राजा बड़े प्रयत्न से उसे रखते और नित्य विधिवत् पूजन करते। एक दिन पूजा करके बैठे थे कि एक चूहा आया और शालिग्राम पर चढ़े हुये चावलों को मूर्त्ति ही पर चढ़ कर खाने लगा। राजा ने सोचा इनसे बड़ा तो चूहा है जो इनके सर पर सवार है, तो चूहे की ही पूजा क्यों न करूँ। राजा साहब अब चूहे की ही उपासना करने लगे। एक दिन एक बिल्ली को आते देख चूहा महाराज खिसके तो राजा ने सोचा चूहा नहीं बल्कि बिल्ली सब से बड़ी है। अब बिल्ली प्रधान हुई, उसी की इज्जत होने लगी। किसी दिन पाकशाला में बिल्ली खाने को इधर उधर छींट रही थी कि रानी साहिबा ने एक लकड़ी ऐसी जमाई कि बिल्ली भी जान गई होगी। फिर राजा के विचार ने पलटा खाया अब उन्होंने रानी के पैरों पर गिर कर क्षमा माँगते हुये कहा-"मैं बेकार (व्यर्थ) ही भटकता रहा। सब से बड़ा देवता तो मेरे घर में ही मौजूद था।" उस दिन से रानी साहिबा की ही षोड़सोपचार से पूजा होने लगी। कुछ दिन के पश्चात् किसी बात पर राजा साहब को क्रोध आया। आप जानते हैं कि क्रोध से मनुष्य की बुद्धि नष्ट हो जाती है। राजा को यह ध्यान न रहा कि रानी जी ही आराध्य देवी हैं उन्हों ने दो चार हन्टर रानी जी को जमा दिये। जब बुद्धि ठिकाने हुई तो सोचने लगे-रानी क्यों? मैं ही सब से बड़ा हूँ क्यों कि मैंने सबको जीत लिया। अब तो राजा

जी अपनी ही सेवा करने लगे। कुछ दिन चैन से बीते। एक दिन राजा साहब के शिर में पीड़ा हुई, वे माथा पकड़ कर बैठ गये दुःख से "हाय राम" शब्द उनके मुंह से निकल गया। पीड़ा शान्त होने पर उन्हों ने फिर विचार किया कि राम तो मुझ से भी बड़े हैं क्यों कि दुख में मेरी सहायता करते हैं। उस दिन से राजा राम भक्त हो गये और अन्त में मोक्ष लाभ किया।

कस्तूरी कुण्डल बसे, मृग ढूँढ़ै बन माहिं।
ऐसे घट में पीव है, दुनियाँ जाने नाहिं॥

—*—

४०—मोह की महिमा।

एक बूढ़े को उसके पोते ने किसी बात पर दो तीन लात मारी और गर्दन पकड़ कर बाहर कर दिया। वह बूढ़ा अपने द्वार पर बैठा हुआ रोता था और साथ ही साथ अपने पोते को गाली भी दे रहा था। इतने में एक महात्मा उधर से आ निकले और उन्होंने बुड्ढे से कहा—"बाबा! रोते क्यों हो, तुम्हें क्या दुःख है?" बूढ़े ने उत्तर दिया—"हमारे पुत्र पौत्र सब नालायक हैं, जो कुछ घर में था सब अपना लिया और मुझे खाने को भी नहीं देते, जब कुछ बोलता हूँ तो बभाव की पड़ती है। इसी दुःखसे मैं रो रहा हूँ और पोतों को गाली भी दे रहा हूँ"। महात्मा ने कहा—"अरे बाबा पुत्र पौत्र तो सुख के संगी हैं। जब तक तुमने इनको सुख दिया इन्हों ने तुम से प्रेम दिखाया जब तुम उनको सुख देने योग्य नहीं रह गये तो सब तुम्हारा निरादर करने लगे। यह सब

स्वार्थ से ही प्रीति करते हैं। सबको छोड़ कर मेरे साथ चलकर भगवान् का भजन करो"। तब तो बूढ़ा बहुत बिगड़ा और कहने लगा—"आप को पञ्च (चौधरी) किसने बनाया जो हमको घर और सम्बन्धियों को छोड़ने का उपदेश देने चले हैं। वह हमारा पोता है हम उसके दादा हैं बीच में उपदेश देने वाले आप कौन हैं?पोता हमारा जीता रहे मुझको चाहे नित्य ही मारा करे। बालक मारते हैं तो क्या कोई अपना घर छोड़ देता है। आप नंगों के लिये भजन है हमारे तो ईश्वर का दिया सब कुछ है।" महात्मा ने कहा-"देखो मोह की महिमा। इतनी दुर्दशा होने पर भी मूर्खों को वैराग नहीं होता।"

४१--बुड्ढा बाप। ✓

एक धनी साहूकार के पाँच पुत्र थे। जब साहूकार बहुत बूढ़ा हो गया तो उसके पुत्रों ने सब धन बाँट कर कहा—"आप डेवढ़ी पर बैठे रहा कीजिए, उठकर भोजन कर लिया कीजिए, आप से और किसी कार्य से सरोकार नहीं है, कोई पराया मनुष्य घर में न आने पावे बस यही आप का काम है" । पिता ने लड़कों का कहना मान लिया। एक दिन लड़कों की स्त्रियों (अर्थात् बहुओं) ने अपने पतियों से कहा—"आप लोगों के पिता डेवढ़ी पर बैठे रहते हैं हम लोगों को बाहर निकलने में तकलीफ होती है और यह थूक थूक कर रास्ता भी गन्दा कर देते हैं। चौके में जाते हैं तब भी थूककर चौका भी भ्रष्ट कर देते हैं। अभी इनके मरने का कुछ ठिकाना नहीं क्या जाने कब तक मरेंगे, हम लोगों का

दम तो इनके कारण नाक में आ गया है। आप लोग ऐसा करिये कि अपने पिता को कोठे पर कमरे में रहने को कर दीजिए वहाँ पेशाब, पाखाना का भी स्थान है। और थकने का भी आराम होगा, जहाँ चाहेंगे थूकेंगे। एक घन्टी इनके पास रख दीजिये जब इनको भूख लगे यही घन्टी बजा दिया करेंगे। हम अन्न पानी इनको पहुँचा देंगी" लड़कों ने विचारा कि सलाह तो ठीक है। पिताजी को समझा बुझाकर ऊपर के कमरे में करके एक घंटी उनके पास रख दी। जब उनको ऊपर रहते कुछ दिन बीत गये तो एक दिन उनका छोटा पोता ऊपर उनके पास चला गया और घंटी को लेकर खेलने लगा। थोड़ी देर बाद लड़का घंटी को लेकर नीचे उतर आया। जब बुड्ढे को प्यास लगी तो देखे तो घंटी नदारद। मुँह से शब्द निकलता ही न था, नीचे तक उतरने की शरीर में सामर्थ्य कहाँ? हाथ मलते बैठे रहे और मन में सोचते थे कि-

जिनके हित परलोक बिगारा ते अब जियतै किहिन किनारा॥ सोचते २ कुछ देर में प्यास के मारे बूढ़े पिता का देहान्त हो गया। रात को जब सब लड़के आये तो स्त्रियों से पूछा -"लाला जी को ऊपर खाना पँहुच गया"। स्त्रियों ने उत्तर दिया -"आजतो घंटी का शब्द नहीं हुआ, कदाचित उनको आज भूख न लगी हो" जब पुत्रों ने ऊपर जाकर देखा तो पिता की लाश पड़ी थी। सब लोग" लालाजी, हाय लालाजी" कहकर रोनेलगे। निदान श्मशान में पिता की अन्त्येष्टि क्रिया कर दी गयी।

जो पिता अनेक कष्टों को उठाकर पुत्रों की पालना करता है वही पिता वृद्धावस्था में पुत्रों को काल के समान जान पड़ने

लगता है सब उनके अन्तिम दिन की बाट जोहते हैं फिर भी मूर्ख लोग पुत्रों के मोह को नहीं छोड़ते ।

—*—

४२--आयु का सदुपयोग ।

किसी नदी के किनारे पर एक किसान का खेत था । जब उस खेत का अनाज पकने लगा तो वह किसान मंचान बनाकर खेत की रखवाली करने लगा । एक दिन वह नदी के किनारे दिशा फिरने को गया वहाँ उसको लालों से भरी हुई हँड़िया मिल गई किसान ने समझा यह सब पत्थर हैं । उनको उठाकर मंचान पर रख दिया । जब जब पक्षी खेत में आये तब तब वह एक लाल उठाकर मारे उससे पक्षी उड़ जाय और लाल नदी में जा गिरे । इसी प्रकार एक एक करके सभी लाल उसने फेंक दिये केवल एक लाल जिससे उसका लड़का खेलता था बच गया । सायंकाल को स्त्री लड़के को लेकर घर चली गई । घरमें नमक न था स्त्री वही लाल लेकर नमक लेने बाजार गई । एक बनिये से कहा—"हमको इस पत्थर के बदले में थोड़ा सा नमक दे दो" । दैवयोग से वहीं पर एक जौहरी खड़ा था । उसने लाल लेकर एक पैसे का नमक स्त्री को दिलवा दिया और कहा—"कल तुमको इस पत्थर का दाम मिल जायगा" । दूसरे दिन जौहरी ने एक लाख रुपया किसान के घर भेज दिया । किसान की स्त्री ने कुछ रुपये से मकान बनवाया कुछ जमा कर रक्खा । एक दिन स्त्री ने खेत पर जाकर अपने पति से कहा—"आपको यहां रहते बहुत दिन हो गये आज घर पर चलिये ।" जब किसान गांव में गया

तो अपनी झोपड़ी की जगह पर महल बना पाया। स्त्री महल की ओर बढ़ी। किसान ने कहा—"अरी, वहाँ कहाँ जाती हो, यह तो किसी महाजन की कोठी है नौकर धक्के देकर निकाल देंगे"। स्त्री ने कहा "स्वामी यह महाजन की कोठी नहीं है यह तो आप का ही मकान है। एक लाल जो फेंकने से बच गया था उसी के दाम से यह सब बात की बात में बन गया है और अभी बहुत कुछ जमा भी है।" किसान पश्चाताप करने लगा—"हाय! इसी प्रकार के मेरे पास असंख्य रत्न थे परन्तु मैंने उनको पत्थर समझ कर चिड़ियों के उड़ाने में ही फेंक दिये।" स्त्री ने पति को समझाया—"नाथ! जो खो गया वह तो अब मिल नहीं सकता, जो बच गया है उसी को अच्छे काम में लगाइये।"

इसका दृष्टान्त यों है कि इस शरीर रूपी हाँड़ी में श्वास रूपी लाल भरे पड़े हैं। जीवात्मा (मनुष्य) उन लालों को विषय रूपी पक्षियों के उड़ाने में (विषय भोगने में) व्यर्थ फेंकता जा रहा है। जितने लाल खो गये वह तो फिर मिलने के नहीं, हाँ जो अभी बच गये हैं उन्हें सत्कर्म में व्यय करना उचित है॥

तुलसी विलँब न कीजिये, भजि लीजै रघुबीर।
तन तरकस ते जात हैं, स्वाँस सारसों तीर॥

—※—

४३-गई सो गई अब राखु रही को।

एक राजा अत्यन्त कृपण था यहां तक वह अपने पुत्र को भी व्यय के लिये काफ़ी रुपया न देता था। एक दिन एक नदी

नाटक दिखलाने के लिये आई। राजा ने कहा-"किसी दिन तुम्हारी नाट्य कला देखी जायगी।" कुछ दिन बीतने पर नटी ने फिर राजा से प्रार्थना की तब फिर राजा ने टाल मटोल की। नटी ने मंत्री से कहा—"या तो राजा साहब हमारा तमाशा देखें या साफ जवाब देदें हम और कहीं जाकर कुछ कमायें।" मंत्री ने राजा से मिल कर कहा-"महाराज! आप आज रात को इस नटी का तमाशा देखें, जो कुछ व्यय होगा हम लोग चन्दा करके आपस में दे देंगे। यदि यह नटी यहां से खाली हाथ फिर जायेगी तो आप की कीर्ति में कलंक लगेगा।" राजा सहमत हो गये। सभा की तैयारी हुई। नटी ने सारी रात भाँति भाँति के कौतुक दिखाये परन्तु कृपिण राजा ने कुछ भी पारितोपिक (इनाम) न दिया जब एक घड़ी रात रह गई तो नटी ने इस दोहे में नट को समझाया॥

"रात घड़ी भर रह गयी, थाके पिञ्जर आय।
कह नटिनी सुन मालदेव, मधुरी ताल बजाय॥"

तब नट ने नटी से कहा—

"बहुत गई थोड़ी रही, थोड़ी भी अब जाय।
नट कहता सुन नायिका, ताल में भंग न पाय॥"

नट के इस दोहे को सुनकर एक तपस्वी ने अपना कम्बल नट को दे दिया। राजा के लड़के ने अपने जड़ाऊ कड़े दे दिये। राजा की कन्या ने हार उतार कर नट के गले में डाल दिया। राजा देखकर चकित हो रहा। राजा ने पहिले तपस्वी से कहा—"तुम्हारे पास तो यही एक कम्बल था, दूसरा कोई वस्त्र भी ओढ़ने को नहीं है तुमने अपना कम्बल नट को क्यों दे दिया?" तपस्वी ने

कहा—"आपके ऐश्वर्य को देख कर मेरे मनमें भोग की वासना उठी थी। जब मैंने नट के दोहे को सुना तो विचार किया कि अधिक आयु तो तपस्या में बीत चुकी है अब बहुत थोड़ी शेष है, फिर इसको भोगों की बासना में खराब न करो ऐसा मुझको इस दोहे से उपदेश मिला है। अतएव मैंने अपना कम्बल दे दिया।" फिर राजा ने अपने लड़के से पूछा—"तुमने क्या समझ कर इतनी कीमती कड़ों की जोड़ी नट को दे दी?" लड़के ने उत्तर दिया—"मैं बहुत दुखी रहता हूँ क्यों कि आप मुझे व्यय करने को कुछ नहीं देते। दुखी होकर मैंने यह सलाह की थी कि आपको विष देकर मार डालें। इस नट के दोहे से मुझको इस प्रकार का उपदेश मिला कि राजा की अधिक आयु तो व्यतीत हो चुकी है, अब दो चार वर्ष और रह गई है वह भी जाने वाली है, पितृ हत्या क्यों लेते हो। इस विचार से मैंने कड़ों की जोड़ी दे दी।" तब राजा ने अपनी कन्या से पूछा—"तुमने क्या समझ कर हीरे का हार दे दिया?" कन्या ने उत्तर दिया—"बहुत दिनों से मैं जवान हो चुकी हूँ आप खर्च के डर से मेरा विवाह नहीं करते अतएव मेरा विचार मंत्री के लड़के के साथ निकल जाने का था। इस नट ने मुझे उपदेश दिया कि राजा की उमर तो बीत गई है अब थोड़ी सी और है वह भी बीतने को ही है अब थोड़े दिनों के लिये पिता को कलंकित करना उचित नहीं है। इस दोहे ने मुझे और आपको कलंक से बचाया अतएव हार का इनाम इसके लिये कुछ नहीं है।" राजा ने समझ लिया कि बात तो ठीक है। राजा ने बहुत सा द्रव्य देकर नटों को बिदा किया और अपनी कन्या की शादी मंत्री के लड़के के साथ करके राज

पुत्र को सौंप कर बनवास लिया ।

❀ सवैया ❀

पुत्र कलत्र सुमित्र चरित्र, धरा धन धाम है बन्धन जी को ।
बारहि बार विषै फल खात, अघात न जात सुधारस फीको ॥
आन औसान तजो अभिमान, कही सुन कान भजो सियपीको ।
पाय परम्पद हाथ सों जात, गई सो गई अब राख रही को ॥१॥

—*—

४४—सत्य बोलो, प्रिय बोलो,

अप्रिय सत्य मत बोलो ।

एक राजा ने रात को स्वप्न देखा कि उस के सब दाँत गिर गये केवल एकही बच रहा । प्रातःकाल उसने एक पंडित को बुला कर इस स्वप्न का आशय पूछा । पंडित ने कहा—"इस का आशय यह है कि आप के सभी मित्र आप के सामने ही मर जायेंगे ।" राजाको इस कथन पर क्रोध आया और पंडित जी को जेलखाने में बन्द करा दिया । राजा ने अपने मंत्री से स्वप्न का आशय पूछा । मंत्री बड़ा ही चतुर और विद्वान था, उसने कहा—"महाराज, स्वप्न का आशय यह है कि आप अपने मित्रों की अपेक्षा अधिक दिन तक जीवित रहेंगे ।" राजा बहुत प्रसन्न हुये और मंत्री को बहुत कुछ इनाम दिया । पंडित ने राजा से कहा—"महाराज, मेरे और मंत्री जी के कथन का आशय एक ही है फिर मुझ को दण्ड और इनको इनाम क्यों मिला । राजा ने कहा—

दोष भरी न उचारिये, यदपि यथारथ बात।
कहै अन्ध को आँधरो, मानि बुरो सत रात॥

और वेद की भी आज्ञा है—

सत्यम् वदेत्, प्रियम् वदेत्, न वदेत सत्य मप्रियम्। जो बात साफ हो, सुथरी हो, भली हो, कड़वी न हो, खट्टी न हो मिश्री की डली हो॥

—*—

४५—सत्य (१)

किसी राजा की रानी एक दिन स्नान करके कोठे पर अपने केश सुखा रही थी कि एक कौवे ने उसके ऊपर बीट कर दिया। रानी जी कोप भवन में जा बैठीं। जब राजा ने चेरियों से पूछा तो ज्ञात हुआ कि रानी कोप भवन में हैं। राजा ने जाकर रानी से पूछा—"क्यों ? तुम्हारे कोप का क्या कारण है। अनहित तोर प्रिया केइ कीना। केहि दुइ शिर केहि जम चह लीना।" रानी ने कहा—"आज जब मैं स्नान करके कोठे पर अपने केश सुखा रही थी एक कौवे ने मेरे ऊपर बीट कर दी, जब तक आप उस दुष्ट कौवे को दण्ड न देंगे मैं अन्न जल न ग्रहण करूँगी।" राजा ने समझाया "प्रिये, वह तो पक्षि जाति है उसे क्या ज्ञान था कि तुम रानी हो उसने स्वभाव से ही बीट किया होगा तुम्हारे ऊपर पड़ गया होगा।" रानी ने एक न सुना। राजा ने फिर कहा—"अच्छा तुम उठ कर अन्न जल करो मैं कल सब कौवों को बुला कर उस दुष्ट कौवे को दण्ड दूँगा।"

इस बात को सुन कर रानी को धीरज हुआ, उठ कर अन्न जल किया। दूसरे दिन प्रातःकाल राजा ने अपने नौकरों को आज्ञा दी कि जाओ, मेरे राज्य में जितने कौवे हों सब को पकड़ लाओ। नौकरों ने वैसा ही किया। सब कौवे आकर एकत्रित हुये तो राजा ने कौवों से पूछा क्यों रे कौवो! सब आगये या कोई शेष है'। कौवों ने कहा—"महाराज एक कौआ अभी नहीं आया। हम लोगों ने तो कोई अपराध नहीं किया है उसी मूर्ख कौये की दुष्टता है जिससे आज हम सभों पर आपत्ति आई है।" अब तो राजा को और भी उस कौवे पर क्रोध आया। थोड़ी देर में वह कौआ भी आ गया। राजा ने उससे पूछा—"क्यों रे नीच, और सब कौवे तो कभी के आये हैं तू इतनी देर कहाँ था?" कौवे ने कहा—"महाराज क्षमा कीजिये एक न्याय कर रहा था इसी में विलम्ब हो गया।" राजा ने पूँछा—"कैसा न्याय?"। कौवे ने कहा—"एक स्त्री और पुरुष परस्पर विवाद कर रहे थे। पुरुष कहता था कि तू मेरी स्त्री है और स्त्री पुरुष से कहती थी कि तू मेरी स्त्री है। पुरुष ने आकर मुझ से कहा—"क्यों भाई! कहीं मर्द भी स्त्री की स्त्री हो सकता है?" मैंने कहा—"क्यों नहीं? जो पुरुष स्त्री के वश में हो, बिना सोचे समझे उसकी आज्ञा का पालन कर दूसरों को कष्ट दे वह स्त्री नहीं तो क्या पुरुष है।" राजा इस बात को सुन कर बहुत लज्जित हुये और सब कौओं को छोड़ दिया। जब रानी ने कौवों के छोड़ने का वृत्तान्त सुना तो फिर कोप भवन में जाकर लेट गयीं। राजा को जब यह ज्ञात हुआ कि रानी फिर कोप भवन में हैं तो वहाँ जाकर पूँछा—"कहो क्या बात है।" रानी

ने कहा—" कौवों का इतना आदर और मेरा कुछ भी नहीं ? जब तक उस दुष्ट कौवे को दण्ड न मिलैगा मैं कदापि अन्न जल ग्रहण न करूँगी चाहे मर भले ही जाऊँ।" राजा ने कहा— "अच्छा उठो कल प्रातःकाल सभी कौओं को मरवा डालूँगा।" दूसरे दिन सबेरे सब कौये फिर पकड़े गये परन्तु वह कौआ फिर भी बहुत देर तक न आया। राजा मन ही मन में कह रहे थे कि आज आते ही उस दुष्ट को मरवा डालूँगा।" जब वह कौआ आया तो राजा ने पूँछा—" इतनी देर तक कहाँ था ?" कौये ने कहा—" एक झगड़ा चुका रहा था।" राजा ने कहा—"कैसा झगड़ा।" कौवे ने कहा-"दो पुरुष विवाद कर रहे थे। एक दूसरे से कहता था—तेरा मुँह नहीं पाखाने का स्थान है दूसरा कहता था—कहीं मुँह भी पाखाने का स्थान होता है। दूसरे ने मुझसे पूछा मैंने कहा-"निस्संदेह मुँह पखाने का स्थान हो सकता है वह इस प्रकार कि एक बार जो बात मुँह से कहे उसी बात को न करे तो वह मुँह पाखाने का स्थान ही है।" राजा ने लज्जित होकर सब कौओं को छोड़ दिया।

साँच बरोबर तप नहीं, झूठ बरोबर पाप।
जाके हिरदै साँच है, ताके हिरदय आप॥

———*———

४६--सत्य (२)।

नगर से बाहर किसी जंगल में एक महात्मा रहते थे। वह नित्यही दो पहर के समय नगर में भिक्षा माँगने को जाते थे।

रास्ते में एक वेश्या का मकान था। जब वह महात्मा वेश्या के मकान के समीप जाते तो वह वेश्या उनसे नित्य ही पूछा करती- "आप स्त्री हैं या पुरुष ?।" महात्मा जी कह दिया करते थे कि इसका उत्तर हम फिर कभी देंगे। इसी प्रकार कहते सुनते कई वर्ष बीत गये। एक दिन महात्मा जी बहुत बीमार हुये और बचने की कोई आशा न थी। इस समाचार को सुन कर नगर के बहुत से लोग महात्मा जी के पास गये। उस वेश्या ने भी सुना और वह भी गई। वहाँ बड़ी भीड़ थी। वेश्या ने कहा-"हटो हमको भी दर्शन कर लेने दो।" लोग जब थोड़ा सा हट गये तो वेश्या ने महात्मा जी को पुकार कर कहा—"आप स्त्री हैं या पुरुष ?" महात्मा जी न बोले। वेश्या ने फिर कहा—"महात्मा सत्यवादी होते हैं, आप ने कहा था कि हम तुम्हारे प्रश्न का उत्तर फिर कभी देंगे। यदि आप मेरे प्रश्न का उत्तर दिये ही विना मर जायेंगे तो आप असत्यवादी कहलायेंगे।" महात्मा ने उत्तर दिया-"हम पुरुष हैं पुरुष।" वेश्या ने कहा—"आप तो यह बात पहिले ही जानते थे, मुझसे पहिले ही कह देते।" महात्मा ने कहा—"बाहर के चिन्हों से कोई मनुष्य पुरुष नहीं होता, जो अपनी बात को पूरा करता है वही पुरुष है, हम तुमसे यदि तभी कह देते कि हम पुरुष हैं और बीच में कभी असत्य भाषण करते तो हमारा पुरुषत्व कहाँ रह जाता, अब तो मेरी आयु समाप्त हो चुकी आज तक मैंने सत्य का पालन किया अतएव आज हम कह सकते हैं कि हम पुरुष हैं। असत्य भाषी पुरुष स्त्री से भी गिरा हुआ है।

—— * ——

४७-झूठ बोलने से हानि।

एक पठान ने एक नौकर इस शर्त पर रक्खा कि तुम कभी झूठ न बोलना परन्तु नौकर ने नौकरी भर में तीन बार झूठ बोलने की आज्ञा लेली। जब कुछ दिन उसको नौकरी करते बीत गये तो पठान ने उसको बहुत से गहने और वस्त्र देकर कहा—"इसको ले जाकर अमुक ग्राम में मेरी बीबी को दे आओ।" नौकर माल लेकर रवाना हुआ। पठान के घ पर पहुँच कर गहने और कपड़े पठानी के आगे रख कर रोने लगा। पठानी ने पूछा—"अरे तू रोता क्यों है?" नौकर ने कहा—"मियाँ जी मर गये"। अब तो पठानी भी रोने लगी। गाँव के सभी लोग जमा हो गये। सभों ने नौकर से पूछा तो नौकर ने कहा—"मियाँ साहब मर गये, अब भूत बनकर लोगों को सताया करते हैं, तुम सब सावधान रहना नहीं तो ऐसा न हो कि किसी के बच्चे खा जायँ।" गाँव में तो सभी रोने लगे, नौकर वहाँ से चलकर मियाँ (पठान) के पास आया। मियाँ ने घर पर एक ऊँट और एक कुत्ता भी पाल रक्खा था। जब नौकर लौट कर आया तो मियाँ ने पूछा—"मेरा कुत्ता तो अच्छा है?" नौकर ने कहा—"वह तो मर गया।" मियाँ ने कहा—"क्यों कर?" नौकर ने कहा—"आपके ऊँट की हड्डी उसके गले में अटक गई थी।" पूछा—"ऊंट कैसे मरा?" कहा—"आप की बीवी की कब्र में उसका पाँव फँस गया था।" पूछा—"बीबी कैसे मरी?" कहा—"पुत्र शोक से?" अब क्या बाकी रहा, पठान ने सोचा कि मेरे घर के जब सभी लोग मर ही गये तो हमीं दुनियाँ में रह कर क्या करेंगे। पठान

ने सब कपड़ा उतार कर फेंक दिया, बदन में राख मल ली और कफन बाँध कर घर की ओर रवाना हुआ। नौकर ने आगे बढ़कर गाँव वालों से कह दिया कि देखो वह पठान भूत बना हुआ आ रहा है होशियार रहना। गाँव वाले द्वार पर आग जलाकर कोठे पर जा बैठे। जब पठान गाँव में आया तो सब कोठे पर ईंटे पत्थर बरसाने लगे। मारे चोट के पठान भी चल बसा। नौकर सब माल असबाब लेकर नौ दो ग्यारह हो गया।

अपि प्रसिद्धा लोकेऽस्मिन्नधमाः पुरुषा हि ये।
अधमाऽधमस्तेषु योऽनृतं वक्ति नित्यशः॥

संसार में जितने अधम पुरुष हैं उन सब में वह अधम है जो नित्य ही झूठ बोलता है।

नहिं असत्य सम पातक पुंजा।
गिरि सम होहिं कि कोटिक गुंजा॥

—*—

४८-दया का फल।

गजनी देश के बादशाह का गुलाम सुबुक्तगीन एक दिन शिकार खेलने जंगल में गया। जंगल में एक हरिणी दिखाई दी जिसके साथ उसका छोटा बच्चा भी था। गुलाम ने अपना घोड़ा हरिणी के पीछे दौड़ाया, हरिणी तो भाग गई परन्तु उसका नन्हा बच्चा न भाग सका और पकड़ गया। गुलाम ने बच्चा उठा लिया और घर की राह ली। हरिणी भी बच्चे के प्रेम के मारे गुलाम के पीछे २ चली। कुछ दूर जा कर गुलाम ने पीछे देखा तो ज्ञात

हुआ कि हरिणी भी पीछे २ चली आती थी। गुलाम ने तीर और कमान से उसको डराया परन्तु फिर भी उसने पीछा न छोड़ा। जब गुलाम घर के निकट पहुँचा और एक बार फिर मुड़ कर पीछे देखा तो फिर भी हरिणी दिखलाई दी। हरिणी की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। गुलाम को यह देख कर दया आई और उसने घोड़ा खड़ा करके हरिणी के बच्चे को छोड़ दिया बच्चा दौड़ कर अपनी माँ के पास चला आया। हरिणी अपने बच्चे को पाकर निहाल हो गई और बार२ गुलाम की ओर देख कर कृतज्ञता प्रगट करती हुई जंगल में चली गयी। गुलाम को रात में स्वप्न दिखाई दिया मानों एक देवदूत उससे कह रहा है कि आज तूने हरिणी के ऊपर दया करके महान उदारता का परिचय दिया है, ईश्वर तुम्हारे इस काम से अत्यन्त प्रसन्न है इस दया के बदले तुमको बादशाही मिलेगी। कुछही दिनों के बाद सुबुक्त-गीन गजनी का बादशाह हुआ।

सर्वे यज्ञेषु यद्दानं सर्वे तीर्थेषु यत्फलम्।
सर्वं दान फलं वापि न तत्तुल्यमऽहिंसया॥

———०———

४९--मेल से लाभ।

एक ब्राह्मण दिनों के फेर से अत्यन्त दीन हो गया था यहाँ तक कि अपने परिवार का पालन पोषण भी न कर सकता था। एक दिन उसने यह सोच कर कि—

मरनो भलो विदेश को, जहँ आपनो न कोय।

माटी खाय जनावरा, महा महोत्सव होय ॥

विदेश यात्रा को तैयार हुआ । घर से निकल कर एक जंगलमें डेरा डाल दिया।ब्राह्मण के कईलड़के थे और सबके सब आज्ञाकारी थे। ब्राह्मण ने पहले लड़के से कहा—"जाओ पानी लाओ।" दूसरे से कहा—"तुम जाकर सूखी २ लकड़ियाँ जलाने के लिये लाओ।" तीसरे से कहा—"तुम कहीं से आग ढूँढ़ लाओ।" स्त्री से कहा—"तुम भोजन बनाने के लिए चूल्हा बनाओ।" ब्राह्मण की बात सुनकर बिना कुछ बोले हुये सब अपने २ काम में लग गये। उसी वृक्ष के ऊपर जिस के तले यह सब लोग बैठे थे एक चिड़िया बैठी थी उसने ब्राह्मण से कहा—"भोजन बनाने के लिए तुम्हारे पास कुछ भी सामान नहीं दिखाई देता है, तुम आग, पानी और लकड़ी मँगाकर क्या करोगे?"। ब्राह्मण ने कहा—"हम तुम को मारकर भूनेंगे।" चिड़िया ने अपने दिल में सोचा कि इनमें मेल है यह अवश्य मुझे मार सकते हैं अतएव ब्राह्मण से कहा—"मेरे मारने से तुम सभों का पेट भी तो न भरेगा, यदि मेरी जान न मारो तो मैं तुमको गड़ा हुआ एक ख़जाना बता दूँ।" ब्राह्मण ने मान लिया। चिड़िया ने उसे ख़ज़ाना बता दिया। ब्राह्मण ख़ज़ाना खोद कर सकुटुम्ब घर लौट गया और चैन से रहने लगा। ब्राह्मण के पड़ोस में एक बनिया रहता था। जब उसको ब्राह्मण के धनपाने का सब वृत्तान्त ज्ञात हो गया तो वह भी सपरिवार उसी जंगल में उसी वृक्ष के नीचे धन पाने की लालच से गया। वृक्ष के नीचे बैठ कर बनिये ने एक लड़के से कहा—"तुम जाओ पानी लाओ।" उसने कहा—"काहे में लाऊँ, तुम्हारी खोपड़ी में।" दूसरे से कहा—"तुम जाओ लकड़ी लाओ" उसने उत्तर दिया—"लक-

ड़ियों में क्या तुम जलोगे ?" बनिये ने तीसरे लड़के से कहा—"तुम जाकर आग ढूँढ लाओ।" उसने कहा—"तुम्हीं क्यों नहीं चले जाते, बैठे २ हुकुम चलाते हो।" उनकी इस फूट को देखकर उसी चिड़िया ने जिसने कि ब्राह्मण को ख़ज़ाना बताया था कहा—"तुममें मेल नहीं है तुम कुछ नहीं कर सकते, जाओ तुमको कुछ न मिलेगा।" बनिया अपना सा मुंह लिये लौट आया।

है कार्य ऐसा कौन सा साधे न जिसको एकता।
देती नहीं अद्भुत अलौकिक शक्ति किसको एकता॥
दो एक एकादश हुए किसने नहीं देखे सुने।
हाँ, शून्य के भी योग से हैं अंक होते दश गुने।

—*—

५०--फूट से हानि॥

एक नाई, एक क्षत्री और एक ब्राह्मण' तीन जने साथ २ कहीं को चले। रास्ते में भूख से पीड़ित हो एक चने के खेत में बैठकर तीनों जने चने उखाड़ने लगे और परस्पर कहते थे, इस दोपहरी में यहाँ आता ही कौन हैं और यदि आया भी तो हम तीन मनुष्य ठहरे उसकी ही ख़बर लेंगे। दैवयोग से उस खेत का स्वामी जो कि जाति का जाट था घूमता हुआ आ निकला, देखता क्या है कि तीन मनुष्य चने उखाड़ रहे हैं। सोचा—यदि इनसे कुछ बोलता हूँ तो यह हैं तीन और मैं हूँ अकेला, एक के लिये तीन बहुत होते हैं यहाँ कोई और दूसरा मेरा साथी

भी नहीं है; फिर सोचा कि कुछ बुद्धि से काम लेना चाहिये। पंडित जी से खेत के स्वामी (जाट) ने पूछा —"आप कौन हैं ?" पंडित ने उत्तर दिया—"मैं ब्राह्मण हूँ" जाट ने कहा—"अच्छा किया महाराज, ब्राह्मणों का खाया हुआ तो ईश्वर को मिलता है, आप ने कृपा की जो चने उखाड़े, मेरा खेत पवित्र हो गया। यदि आवश्यकता हो तो चने उखाड़ दूँ।" इसके पश्चात् ठाकुर साहेब से पूछा—"आप कौन हैं ?" उन्हों ने उत्तर दिया—"मैं क्षत्रिय हूँ।" जाट ने कहा—"तब क्या आप तो मेरे राजा हैं सब खेत आप ही का है आपने बड़ी कृपा की कि दर्शन दिये। यदि आवश्यकता हो तो घोड़ों के लिये भी आप चने ले सकते हैं।" अब वह जाट नाई से बोला—"ब्राह्मण देवता ने जो चने उखाड़े उनका उखाड़ना तो परमार्थ में गया। ठाकुर साहेब ने जो उखाड़े वह भी कभी कृपा कर देंगे। लगान में ही समझ लेंगे। साले! तू अब बता, तूने क्यों चने उखाड़े। गधे का खाया न इस लोक का न परलोक का।" इतना कहकर जूता उतार कर नाई की चाँद गंजी कर दी। ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों मन में प्रसन्न हो कर कहते थे—"अच्छा हुआ साला पिट गया, था भी बड़ा हरामजादा बदमाश, ठीक समय पर बाल बनाने नहीं आता था।" इधर नाई सोचता था कि मैं तो पिट गया यह दोनों खड़े तमाशा देख रहे हैं। हे ईश्वर इनकी भी खोपड़ी आज न बचती तो अच्छा होता। नाई को पीट कर जाट ठाकुर साहब से बोला—"ब्राह्मण देवता तो कभी पूजा, पाठ या श्राद्ध ही करा देंगे, आप ने किस लिये चने उखाड़े ? क्या आप के दादा की दी हुई जागीर थी ? या बिना परिश्रम अन्न उपजा था ?।" इतना कहकर ठाकुर साहेब की भी

खोपड़ी रङ्ग दी। पंडित जी खड़े सोचते रहे कि अच्छा हुआ, यह भी बड़े टर्रबाज़ थे अपनी ठकुरई में किसी को कुछ समझते ही न थे तो आज आटा दाल का भाव जान पड़ा। ठाकुर साहेब की सेवा करके जाट अब पंडित जी से बोला—कहिये महाराज, दक्षिणा पदे पदे कह कर तो आप सब कुछ ले लेते हैं, दक्षिणा में एक कौड़ी भी कम नहीं करते, बताइये तो सही चने क्यों खाये? क्या मैंने बिना परिश्रम के खेती की है?" इतना कहकर पंडित जी की भी जूते से पूजा की। अब ठाकुर साहेब और नाई सोचने लगे कि अब ठीक हुआ नहीं तो यह न पिटता तो गाँव में मेरी और नाई की हँसी करता।

अब आप लोग विचार करें यदि तीनों में मेल होता तो जाट क्या कर सकता था नहीं तो परस्पर की फूट का यह फल हुआ कि तीनों खूब पीटे गये। हमारे भारतवर्ष में ऐसे ही लोगों की भरमार है। यदि ऐसा न होता तो पृथ्वीराज क्यों मारे जाते। एक विभीषण ने भाई से बिगड़ कर स्वर्ण की लंका धूल में मिला दी।

लुट गये पिट उठे गये पटके।
आँख के भी बिलट गये कोये।
पड़ बुरी फूट के बखेड़े में।
कब नहीं फूट फूट कर रोये॥ १॥
बढ़ सके मेल जोल तब कैसे।
बच सके जब न छूट पञ्जे से।
क्यों पड़ें टूट में न, जब नस्लें।
छूट पाईं न फूट—पञ्जे से॥ २॥

खुल न पाईं जाति-आँखें आज भी।
दिन बदिन बल बेतरह है घट रहा।
लूट देखे माल की हैं लट रहे।
फूट देखे है कलेजा फट रहा॥ ३॥
जो हमें सूझता समझ होती।
बैर बकवाद में न दिन कटता।
आँख होती अगर न फूट गई।
देखकर फूट क्यों न दिल फटता॥ ४॥
फूट जब फूट फूट पड़ती है।
प्रीति की गाँठ जोड़ते क्या हैं।
जब मरोड़ी न ऐंठ की गर्दन।
मूँछ तब हम मरोड़ते क्या हैं॥ ५॥

अतएव आवश्यकता है कि:—

विष पूर्ण ईर्ष्या द्वेष पहिले शीघ्रता से छोड़ दो।
घर फूँकने वाली फुटैली फूट का सिर फोड़ दो॥
मालिन्य से मुँह मोड़ कर मद मोहके पद तोड़ दो।
टूटे हुये वे प्रेम-बन्धन फिर परस्पर जोड़ दो॥

—*—

५१--क्षमा (१)

कोई महात्मा नदी पार उतरने के लिये नाव पर बैठे उसी नाव पर एक दुष्ट भी आ सवार हुआ। उस नाव में कितने ही और भी मनुष्य बैठे थे। जब नाव किनारे से चली तो दुष्ट ने महात्मा

जी को चिढ़ाना आरंभ किया परन्तु वे कुछ भी न बोले। जब दुष्ट ने देखा कि मेरी दुष्टता का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ रहा है तो उसने महात्मा जी के शिर पर दो चार जूते भी जमा दिये फिर भी महात्मा जी ऐसे मौन बैठे रहे मानों मुँह में जिह्वा ही नहीं है। ईश्वर से यह अन्याय न देखा गया। आकाश बाणी हुई-ऐ महात्मा! यदि तू कहे तो इस दुष्ट के सहित नौका अभी डूब जाये। महात्मा ने कहा क्या मैं ऐसा पापी हूँ कि मेरे पीछे इतने मनुष्य डूब मरें? फिर शब्द सुनाई पड़ा—यदि कहे तो इस दुष्ट को ही नदी में डूबा दें। महात्माने कहा—क्या मेरे साथ बैठने का यही फल है? फिर आकाश बाणी ने कहा-"इस दुष्टको अवश्य दण्ड मिलना चाहिये। महात्मा ने कहा—भगवन्! यदि आप इसे दण्ड ही देना चाहते हैं तो इसको यही दण्ड मिले कि इसकी प्रवृत्ति धर्म में होजाये। बाणी ने कहा तथास्तु। भगवान की प्रेरणा और महात्मा जी की इच्छा से वह दुष्ट धर्मात्मा बन गया।

तुलसी सन्त सुअम्ब तरु, फूलि फलहि पर हेत।
इतते ये पाहन हनें, उतते वे फल देत॥ १॥
बानी कटुसुनि सठन की, धीर न होहिं मलान।
कहा हानि मृगराज की, भूंकत जौ लखि स्वान॥ २॥

—*—

५२-क्षमा (२)

भगवान् बुद्धदेव को एक धूर्त ने गालियाँ दीं। बुद्ध भगवान कुछ न बोले। दूसरे दिन उसने फिर गालियाँ दीं परन्तु

बुद्ध भगवान ने कुछ न कहा—जब तीसरे दिन भी उसके गाली देने पर वह न बोले तो उसने कहा–"भगवन्! मैंने आप को कितनी ही गालियाँ दीं परन्तु आप को क्रोध नहीं आया, इसका क्या कारण है।" भगवान् बुद्ध ने कहा—"पहले तुम मुझसे एक बात यह बताओ कि यदि कोई मनुष्य किसी को कुछ देने के लिये ले जाय और लेने वाला उसे स्वीकार न करे तो वह वस्तु किसके पास रहेगी?"। धूर्त ने कहा–"ले जाने वाले के पास।" बुद्धदेव ने कहा-"तुम मुझे गालियाँ देने को लाये थे मैंने उसे स्वीकार नहीं किया अब गालियाँ किसके पास रहीं।" धूर्त को इतनी लज्जा आई कि उसने बुद्धदेव के चरणों पर शिर रखकर क्षमा माँगी और उसी दिन से उनका शिष्य बन गया।

क्षमा शस्त्रं करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति।
अतृणे पतितो वह्नि स्वयमेवोपशाम्यति॥

अर्थ—क्षमा खड्ग लीने रहै, खलको कहा बसाय।
आग पड़ी तृण रहित थल, आपुहि ते बुझि जाय॥

५२-अभ्यास।

प्राचीन काल की बात है कि बोपदेव नामी एक विद्यार्थी पाठशाले में पढ़ने जाता था। बोपदेव लिखने पढ़ने में अच्छा न था। एक दिन गुरु ने क्रोध करके पाठ याद न होने के कारण उसको पाठशाले से निकाल दिया। बोपदेव को इतनी ग्लानि हुई कि उसने डूब कर मर जाना अच्छा समझा। इसी विचार से

वह एक तालाब पर गया। वहाँ जाकर वह क्या देखता है कि एक घाट पर स्त्रियाँ मिट्टी का घड़ा लिये पानी भरती हैं और जहाँ पर वह घड़ा रखती हैं उस स्थान पर पत्थर में चिन्ह पड़ गया है। बोपदेव ने अपने मन में सोचा कि बार बार एक ही स्थान पर मिट्टी का घड़ा रखने से पत्थर पर तो चिन्ह बन जाता है यदि मैं भी बार बार पाठ पढ़ूं तो क्या मेरी पत्थर की बुद्धि पर कुछ प्रभाव न पड़ेगा। यह सोच कर वह लौट आया और बारबार पाठ पढ़ने लगा। अभ्यास करने से उसने अपना पाठ याद कर लिया और जाकर गुरु जी को सुना दिया। तब से गुरु जी बोपदेव को बहुत मानने लगे। बोपदेव ने निरन्तर अभ्यास से ही बहुत थोड़े समय में विद्याध्ययन कर लिया और अन्त में वह संस्कृत का इतना बड़ा विद्वान हो गया कि उसने एक बहुत उत्तम व्याकरण बनाया जिसका आज तक विद्वानों में नाम है।

तभी तो कहा है:—

अभ्यास सदृशं नैव लोकेऽस्मिन्हित साधनम्।
अतः स एक कर्तव्यः सर्वदा साधु वर्त्मना॥

और भी:—

करत करत अभ्यास के जड़ मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें, सिल पर होत निसान॥

———*———

५४--ब्रह्मचर्य्य।

एक माली बेतहाशा दौड़ा चला जा रहा था। एक आदमी ने उससे पूछा—"भाई इस तरह कहाँ दौड़े चले जाते हो?"

माली ने उत्तर दिया—"एक गाड़ी गुलाब के फूल तोड़ने जाते हैं।" उसने पूछा—"क्या करोगे इतने फूल ?" माली ने कहा—"इत्र निकालेंगे।" उसने पूछा—"इत्र निकाल कर क्या करोगे ?" उसने कहा—"मोरियों में फेंक देंगे !" उस आदमी ने कहा—"यह कैसी मूर्खता की बात है कि जिस इत्र के निकालने में इतना परिश्रम किया जाय वह मोरियों में फेंक कर नष्ट कर दिया जाय ! "। माली ने कहा—"भाई क्या करें। दुनियाँ इसी प्रकार मूर्खता में चैन मानती है।"

भाइयो, यह तो केवल दृष्टान्त हैं आप इसको दार्ष्टान्त में घटा कर विचार कीजिए। जो अन्न मनुष्य खाता है उससे पहिले रक्त बनता है रक्त से रस रस से मेद, मेद से मज्जा और मज्जा से हड्डी और हड्डी से चालीसवें दिन वीर्य बनता है। शोक कि इस प्रकार खिंचे हुये बहु मूल्य इत्र को लोग बाज़ारी मोरियों में फेंक आते हैं। अपने बल वीर्य को नष्ट करने वाले मन चले भले मानुषो ! विचारो तो सही। जिस वीर्य को बाहर निकालने में तुम को आनन्द मिलता है यदि तुम उसे अपने पास ही रखते तो कितना आनन्द मिलता। आजकल तो सपूतों के बाप लड़कों की शादी कर देने में ही लाड़ प्यार समझते हैं तभी तो हम दिन दिन दुर्बल होते जा रहे हैं:—

हो गया ब्याह लग गईं जोंकें।
फूल से गाल पर पड़ी झाईं॥
सूखती जा रहीं नसें सब हैं।
भीनने भी मसें नहीं पाईं॥
पड़ गया किस लिये खटाई में।

क्यों चढ़ी रूप रंग की बाई ॥
फिर गई काम की दुहाई क्यों ।
मूंछ भी तो अभी नहीं आई ॥

डार्विन साहब मनुष्यों की उत्पत्ति के विषय में लिखते हैं कि बन्दर लोग उन्नति करते २ मनुष्य हो गये लेकिन भाइयो, आजकल के जवानों के तो चूहे जैसे लड़के पैदा होते हैं। यदि यही हाल रहा तो कुछ दिन में मनुष्य से बन्दर बनने लगेंगे। कविवर बाबू मैथिली शरण ने कहा है:—

जो हाल ऐसा ही रहा तो देखना क्या है अभी।
होंगे यहाँ तक क्षीण हम विस्मय बढ़ावेंगे अभी ॥
सिद्धान्त अपना पलट देंगे डारविन जब साहब यहाँ।
हो क्षुद्रकाय अबोध नर बन्दर बनगे जब यहाँ ॥

उस ब्रह्मचर्याश्रम नियम का ध्यान जब से हट गया।
सम्पूर्ण शारीरिक तथा वह मानसिक बल घट गया ॥
हैं हाय ! काहे के पुरुष हम जब कि पौरुष ही नहीं।
निःशक्त पुतले भी भला पौरुष दिखा सकते कहीं ॥

—*—

५५-सब से भली चुप ।

एक ब्राह्मण की स्त्री बड़ी बुद्धिमती थी, वह नित्य ही अपनी पुत्री को सदाचार की शिक्षा दिया करती थी। जब लड़की बड़ी हुई और उसका ब्याह होगया, और कुछ दिन ससुराल

में रह कर फिर अपनी माता के पास आई तो माता ने पूछा— "पुत्री, तेरी ससुराल के लोग तेरे साथ कैसा बर्ताव करते हैं ?" लड़की ने कहा—"और तो सभी मेरा आदर करते हैं परन्तु बूढ़ी सास मुझ से रोज ही झगड़ा किया करती हैं माता ने कहा—"अच्छा मैं एक यंत्र बनाकर देती हूँ, जब तेरी सास तुझ से झगड़ा करने लगे तो तू इस यंत्र को अपने दांतों में दाब लेना, और जब तक झगड़ा बन्द न हो जाय तब तक मुंह में दाबे रहना, बस इसी से तेरी सास तेरे वश में हो जायगी।" इतना कह कर माता ने एक कोरा कागज़ सीकर पुत्री को दे दिया जब लड़की फिर अपनी ससुराल गई तो वही यंत्र काम में लाने लगी। जब तक उसकी सास बोलती रहे वह दाँतों में वही यंत्र दाबे रहे। फल यह होता था कि यंत्र को दांतों से दाबे रहने के कारण कुछ बोल न सकती थी। उसकी सास कुछ देर तक बोलती रहती परन्तु वहू को चुप देख कर अन्त में चुप हो जाती। कुछ दिन के पश्चात् झगड़ा बन्द हो गया। वहू प्रसन्न रहने लगी।

वह यंत्र क्या था ? केवल चुप रहने का एक साधन था। इसी प्रकार एक के चुप रह जाने से झगड़ा शान्त हो जाता है।

—*—

५६—सीधापन और सफाई।

एक राजा एक महल बनवा रहे थे। उस महल के लिए एक सौ फ़ुट लम्बे, साफ़ और सीधे स्थम्भ की आवश्यकता पड़ी। बहुत खोजने पर एक दूसरे देश में ऐसा खम्भा मिला। राजा ने

उसके लाने का हुकुम दिया। कई हजार मनुष्य उसके लाने में लगे थे। जब स्थम्भ निकट आ गया तो राजा मंत्रियों को लेकर उसके देखने के लिए आया बहुत से और लोग स्थम्भ को देखने के लिएजमा थे। एक महात्मा भी उसी भीड़ में थे वह स्थम्भ से कान लगाकर बातें करने लगे। राजाने महात्मा से पूछा—"आप क्या कर रहे हैं?" महात्मा ने कहा-"मैं इस स्थम्भ से यह पूछ रहा था कि तुझ में कौन सा ऐसा गुण है जिस को देखने के लिये सारी प्रजा जमा हुई है, स्थम्भ ने उत्तर दिया कि सीधापन और सफाई।" राजा ने कहा—"सत्य है यदि मनुष्य भी सीधा और हृदय का साफ हो तो कौन ऐसा है जो उसका मान न करेगा?"।

—*—

५७-सीधी चाल।

एक साँप और एक केकड़े में बड़ी मित्रता थी। एक दिन केकड़े ने साँप से कहा—"मित्र का कर्तव्य यह है कि अपने मित्र का अनहित न चाहे और जहाँ तक हो सके उसके अव गुणों को दूर करे। तुम्हारी चाल टेढ़ी है, अतएव आप अपनी चाल सुधारिये। टेढ़ी चाल से कभी किसी का भला नहीं हो सकता।" परन्तु साँप कैसे सीधे चल सकता था। कुछ दिनों के पश्चात् केकड़े ने साँप को रास्ते में पड़ा हुआ देखा। उसका बदन लहूलहान हो रहा था। प्राण कण्ठगत था। साँप ने भी अपने मित्र केकड़े को देखकर कहा-"मित्र! यदि मैं तुम्हारी सलाह मान लेता और अपनी टेढ़ी चाल छोड़ देता तो मुझे आज यह दिन देखना न पड़ता, सच है संसार में टेढ़ी चाल से चलने वालों की अन्त में यही गति होती है।"

५८—समय सूचकता।

एक पंडित अपनी पंडिताई पर बड़ा घमण्ड करता था। एक दिन वह अपने शिष्यों को कुछ समझा रहा था कि एक शिष्य ने पूछा—"गुरु जी! क्या अगस्त जी ने समुद्र प्राशन किया था यह बात सत्य है?" पंडित जी ने उत्तर दिया—"हाँ, यह बात सत्य है, यदि तुझे इस बात पर विश्वास न हो तो मैं स्वयं एकाध दिन में समुद्र को पी डालूँगा और यदि मैं वैसा न कर सका तो तुझे एक हजार मोहरें इनाम दूँगा।" थोड़ी देर बाद उस पंडित को अपनी बात का स्मरण हो आया और अपने किये हुये असम्भव प्रण पर उसे बहुत पश्चाताप हुआ। पंडित ने जाकर कालीदास से प्रार्थना की—"महाराज! यदि आप मुझे इस असम्भव प्रण से मुक्त कर दें तो मैं आपका बहुत कृतज्ञ रहूँगा। पंडित की प्रार्थना पर कालीदास को दया आ गई और उन्हों ने उसे सहायता देने का वचन दिया। दूसरे दिन वह पंडित, अपने शिष्य गण, कालिदास तथा कुछ नागरिकों सहित समुद्र की ओर चला। उसने अपने साथ दो चार लोटे भी ले लिये थे। उसको देख कर सारे विद्यार्थी तथा नागरिक पंडित की मूर्खता पर मन ही मन हँसते थे। भावी कार्य साधन के लिये कालीदास ने उस पंडित को पहिले ही सिखा पढ़ा लिया था। इस कारण जब सब समुद्र पर पहुँचे तो उस पंडित ने जिस विद्यार्थी के साथ शर्त लगाई थी उससे कहा—"अरे लड़के, अब मैं सारा समुद्र पी जाने के लिए तैयार हूँ, परन्तु इस समुद्र में सैकड़ों नदियाँ आकर गिरती हैं इस कारण तुझे इस समुद्र में

उन नदियों का पानी आना बन्द कर देना चाहिये । क्योंकि मैंने केवल समुद्र का ही पानी पीने का प्रण किया है । अतः जो नदियों का पानी इसमें आता है उसे पीने के लिए मैं कदापि तैयार नहीं हूँ । " यह सुनते ही वह विद्यार्थी अवाक् सा रह गया और सभी ने पंडित की समय सूचकता की प्रशंसा की । समय सूचकता महान् महान् संकटों को टाल सकती है ।

—o—

५९-दुख आने पर जिसकी बुद्धि ठिकाने रहती है

वह बहुत से दुखों से तर जाता है ।

किसी नदी के किनारे एक जामुन के वृक्ष पर एक बन्दर रहता था, वह नित्य पकी २ जामुन खाया करता था । एक दिन एक मगर ने बन्दर को देखकर कहा-" मित्र, पेड़ को हिला दो, जिससे पानी में कुछ जामुनें गिर पड़ें और मैं भी खालूँ । " बन्दरने पेड़ को खूब हिला दिया, मगरने खूब जामुन खाई। इसी प्रकार मगर नित्य ही जामुन खाने के लिये उस पेड़ के नीचे आया करता, होते होते दोनों में गहरी मित्रता होगई । एक दिन मगर अपनी स्त्री मकरी के लिये कुछ जामुन ले गया । मकरी ने जामुन खाकर मगर से पूछा-" यह अमृत की तरह मीठा फल आप कहाँ से लाये ?" मगर ने बन्दर की मित्रता का सारा हाल कह सुनाया । मकरी ने फिर कहा-" जो बन्दर ऐसे उत्तम फल नित्य ही खाता है उसका कलेजा बड़ा ही स्वादिष्ट होगा, अतएव आप मेरे लिये उसका कलेजा ला दीजिए । " मगर ने बहुत कुछ समझाया

परन्तु मकरी ने अपना हठ न छोड़ा, अतएव मगर बन्दर को बहकाकर नदी में ले आने के लिए उसके पास जाकर बोला—"मित्र, हम तो नित्य ही तुम्हारे घर आते हैं परन्तु तुम कभी मेरे घर नहीं चलते हो यह बात मित्रता की रीति के प्रतिकूल है। आप कृपा कर आज मेरे घर पधारिये, आपकी भौजाई आप को देखने के लिये उत्कण्ठित है।" बन्दर ने कहा-"मैं पानी में किस प्रकार चल सकूँगा ?"। मगर ने कहा-आप मेरी पीठ पर सवार हो लीजिए, मैं आपको अपने घर ले चलूंगा।" बन्दर राजी हो गया। मगर बन्दर को अपनी पीठ पर चढ़ा कर जब बहुत दूर नदी में ले गया तो उससे कहने लगा-"मित्र! मैंने अपनी स्त्री के कहने से तुम्हारा कलेजा लेने के लिए ही यह सब चाल चली है आज मेरी स्त्री तुमको मारकर तुम्हारा कलेजा खायेगी।" यह बात सुननेही बन्दर ने अपने मन में सोचा कि मैंने बुरा किया जो इस विजातीय का इतना विश्वास किया परन्तु अब इस पश्चाताप से क्या ? कुछ बचने की तरकीब निकालनी चाहिये। बन्दर ने विचार कर मगर से कहा—"मित्र, यदि यही बात थी तो तुमने मुझ से पहिले ही क्यों नहीं बता दिया, मैंने तो अपना कलेजा निकाल कर उसी पेड़ पर टाँग दिया है, तभी तो निर्भय होकर एक डाल से दूसरी डाल पर कूदता फिरता हूँ। जल्दी मुझे किनारे ले चलो मैं कलेजा ले लूँ तो आप की स्त्री के पास चलूँ।" मगर ने ऐसा ही किया। बन्दर किनारे पहुँच कर पेड़ पर चढ़ गया। मगर ने पुकारा-"मित्र, जल्दी आओ देर हो रही है।" बन्दर ने कहा-"ऐ मूर्ख ! कोई अपना कलेजा भी निकाल कर पेड़ पर टाँगता है ? जा अब मैं तेरे फंदे में नहीं

आनेका। आज से तुझे जामुन भी न मिलेगी।" मगर अपना सा मुंह लेकर रह गया।

समुत्पन्नेषु कार्येषु बुद्धिर्यस्य न हीयते।
स एव दुर्गं तरति जलस्थो वानरो यथा॥

अर्थात् जिसकी बुद्धि काम पड़ने पर नाश नहीं होती वह आपत्तियों को इस प्रकार तर जाता है जैसे जल में स्थित बन्दर।

—*—

६०—एक पतिव्रता की स्वधर्म रक्षा।

राजा भोज के दरबार में वररुचि नाम का एक पंडित रहता था। किसी अपराध से राजा ने उसको कुछ दिनों के लिये देश से निकाल दिया। जब वह जाने लगा तो अपनी स्त्री से कह गया कि अमुक सेठ के पास मेरे इतने रुपये चाहिये हैं जब आवश्यकता पड़े मँगा लेना। एक दिन वररुचि की स्त्री ने अपनी दासी को भेजकर सेठ से अपना रुपया माँगा। सेठ जी ने कहा—"अभी मेरी बही राजाके यहां गई है, इस समय नहीं दे सकता।" दासी ने आकर ब्राह्मणी (वररुचि की स्त्री) से बताया तो वह समझ गई कि सेठ जी रुपये हड़प जाना चाहते हैं। किसी दिन वररुचि की स्त्री ग्राम के निकट वाली नदी में स्नान करके लौटी आ रही थी कि अकस्मात् सेठ जी भी उसी रास्ते से आ निकले। उस सुन्दरी को देखकर सेठ ने दासी से पूछा—"यह किस की है?"। जब दासी ने बतलाया तो सेठ ने कहा—" इनसे जब कभी रुपये की आवश्यकता पड़े तो स्वयं आकर

जायें।" वररुचि की स्त्री ने सेठ से कहा—"इस समय मुझे रुपये की आवश्यकता नहीं है परन्तु आप से कुछ कार्य है अतएव आप दश बजे रात को मेरे स्थान पर आइये।" सेठ जी ने मुस्कुराते हुये घर की राह ली, वररुचि की स्त्री थोड़ी ही दूर गई थी कि शहर का कोतवाल आ पहुँचा। उसने इस सुन्दर स्त्री को देख कर कुछ बुरे संकेत किये। वररुचि की स्त्री ने कहा—"आप ग्यारह बजे रात्रि को मेरे घर पर पधारें, इच्छा पूर्ण होगी।" कुछ ही दूर जाने पर राजा के दीवान ने भी इस स्त्री को देख कर उस पर मोहित होकर अपना दुष्ट अभिप्राय प्रगट किया। वररुचि की स्त्री ने कहा—"आप बारह बजे रातको मेरे घर पर आइयेगा।" जब स्त्री घर पहुँची तो उसने अपनी दासी से तीन बर्तनों में तीन प्रकार के रंग (एक में काला, एक में पीला एक में लाल) घोला कर रख दिया। जब दश बजे सेठ जी मनही मन मुस्कुराते हुये उस स्त्री कै घर पहुँचे तो उसने बड़ी आव भगत से स्वागत किया। कुछ बात चीत होने के पश्चात् स्त्री ने उनसे कहा—"आप उस कोठरी में जायें मेरी दासी आप को नहलाकर तेल लगायेगी इस प्रकार जब आप शुद्ध हो जायेंगे तो मैं आपके पास उपस्थित हूँगी।" दासी ने सेठ को नहला कर काला रंग उनके शरीर में पोत दिया। इतने में कोतवाल साहब आ पहुँचे। किवाड़ खटखटा कर कहा—"मैं हूँ कोतवाल, खोलो केवाड़े।" अब तो सेठ जी के शरीर का रक्त सूख गया। ब्राह्मणी के पैरों पर गिरने लगे और लगे गिड़ गिड़ाने—"हाय! मेरी जान बचाओ!" ब्राह्मणी ने कहा—"घबराइये नहीं, आइये इस सन्दूक में बैठ जाइये।" जब सेठ जी सन्दूक में बैठ गये तो सन्दूक में ताला लगा कर

द्वार खोल दिया। कोतवाल साहेब भीतर आ गये। कुछ इधर उधर की बातें होने के पश्चात् उनसे ब्राह्मणी ने कहा-"आप को दासी दूसरे कमरे में स्नान करा कर तैल लगायेगी, जब आप शुद्ध हो जायेंगे तो मैं सेवा में उपस्थित हूँगी।" दासी ने कोतवाल को नहला कर सर से पैर तक पीला कर दिया। इतने में दीवान जी भी आ धमके। स्त्री ने कहा-"आप कौन"। दीवान ने कहा-"मैं हूँ दीवान, खोलो केवाड़।" इस बात को सुन कर कोतवाल साहेब सन्न हो गये। हाथ जोड़कर कहने लगे—"अरे खुदा के लिये मेरी जान बचाओ। अगर आज इस कम्बख्त दीवान ने देख लिया तो रोज़ी भी जायेगी और लेने के देने पड़ जायेंगे।" ब्राह्मणी ने उनको भी एक सन्दूक में बन्द करके ताला लगा दिया। जब दीवान जी आये तो उनसे भी स्नान के लिये कहा गया। जब दासी ने स्नान कराकर लाल रंग चढ़ा दिया तो ब्राह्मणी ने कहा-"दीवान जी, आप थोड़ी देर के लिये इस सन्दूक में बैठ जाइये क्योंकि मेरा एक खास आदमी आ गया है नहीं तो हम दोनों की लज्जा जायगी।" दीवान को भी सन्दूक में बन्द करके ताला लगा दिया। फिर तो वररुचि की स्त्री निश्चिन्त होकर चादर तान कर सो रही। प्रातःकाल राज दर्बार में कहला भेजा कि मेरे घर में चोरी हो गई। जब राज कर्मचारी सेंध देखने आये तो स्त्री ने कहा—"चोर केवाड़ खोल कर घुस आये, अमुक अमुक माल ले गये परन्तु यह तीन सन्दूकें मेरे घर में डाल गये।" तीनों सन्दूकें राजा की सभा में पहुँची और पीछे पीछे वररुचि की स्त्री भी जा पहुँची और राजा से प्रार्थना की कि—"महाराज, मेरे इतने रुपये अमुक सेठ के पास

हैं वह मांगने पर नहीं देता इस बात की यह तीनों सन्दूकें गवाह हैं।" इतना कहकर पहली सन्दूक को हाथ से धमका कर कहा-"क्यों रे काले देव सच बता मेरे इतने रुपये सेठ के पास हैं कि नहीं ?" सेठ ने डरके मारे भीतर से कहा-"हूँ हूँ।" फिर उसने दूसरी सन्दूक धमका कर कहा-"क्यों रे पीले देव, हैं मेरे रुपये सेठ के ऊपर कि नहीं ?" उसमें से भी शब्द निकला "हूँ हूँ।" फिर तीसरी सन्दूक पर हाथ मार कर वररुचि की स्त्री ने कहा-"कह रे ललिया देव! हैं मेरे रुपये सेठ के ऊपर ?"। फिर वही "हू हूँ" का शब्द आया सभा के सभी सभ्य आश्चर्य से चकित हो गये कि क्या बात है। वररुचि की स्त्री ने सेठ के रुपये न देने तथा उन दुष्टों के अभिप्राय को साफ साफ बतला दिया और कहा—"यह नर पिशाच मेरी लज्जा लेने ही के लिये मेरे घर पर आये थे। मैंने इस उपाय से अपना धर्म बचाया। अब आप सन्दूक खोल कर उनको देखें और उचित दण्ड दें।" सन्दूक खोलने पर उसमें से तीनों भूत निकले। उन्हें उचित दण्ड मिला।

विज्ञ वाचक! आप ने देखा पतिव्रतायें अपने धर्म की रक्षा कैसे करती हैं दुष्टों को किस प्रकार दण्ड दिया जाता है, बुरे कर्मों का क्या परिणाम होता है। सच है:—

क्या कर नहीं सकतीं भला यदि शिक्षिता हों नारियाँ।
रण रङ्ग, राज्य, सुधर्म-रक्षा, कर चुकीं सुकुमारियाँ।
लक्ष्मी, अहल्या बायजा बाई, भवानी, पद्मिनी।
ऐसी अनेकों देवियाँ हैं आज जा सकतीं गिनी।

———*———

६१-सती प्रताप (१)

एक ब्राह्मण अपने कर्म दोष से कोढ़ी हो गया था। उस का स्वभाव भी अच्छा न था। किन्तु उसकी स्त्री पतिव्रता थी। एक बार रात को वह अपने पति को कन्धे पर चढ़ा कर उस की इच्छानुसार कहीं लिये जाती थी। मार्ग में माण्डव्य ऋषि के शरीर से उस के पति का पैर लग गया। उन्हों ने क्रुद्ध हो कर शाप दिया कि मुझ से जिस पापिष्ठ का चरण स्पर्श हुआ है वह सूर्योदय होते ही मर जायगा। उस स्त्री ने कहा—"यदि सूर्योदय ही न हुआ तो?"। उस के पतिव्रत धर्म के प्रभाव से हुआ भी ऐसाही। सूर्य का उदय होना रुक गया। इस से बड़ी हलचल मच गई। अन्त में अनसूया देवी ने उसे समझा बुझाकर सूर्य का उदय करवाया। सूर्योदय होते ही ऋषि का शाप फलीभूत हुआ। वह ब्राह्मण मर गया। किन्तु अनसूया ने अपने प्रभाव से उसे फिर जिला दिया और नीरोग भी कर दिया।

अबला जनों का आत्म बल संसार में वह था नया।
चाहा उन्हों ने तो अधिक क्या रवि उदय भी रुक गया॥
मैथिली शरण गुप्त।

---*---

सती प्रताप—(२)

एक योगी बन में वृक्ष के नीचे बैठा था। सहसा दो कौवों ने उसी वृक्ष पर काँव काँव मचा कर उसे क्रुद्ध किया। ज्योंही

उस ने अपनी तीक्ष्ण दृष्टि ऊपर की ओर डाली त्योंही वह दोनों पक्षी मर कर नीचे गिर पड़े। अपना ऐसा प्रभाव देख कर योगी को गर्व हुआ। एक बार उसी योगी ने जाकर किसी गृहस्थ के द्वार पर भिक्षा के लिये आवाज दी। भीतर से स्त्री कंठ से उत्तर मिला—"ज़रा देर ठहरो"। योगी ने कहा—"हैं, यह अभागिनी मुझे ठहरने को कहती है, मेरे योग बल को नहीं जानती!" अभी वह सोच ही रहा था कि अन्दर से फिर आवाज़ आई—"बेटे! बहुत क्रोध मत कर यहाँ कौए नहीं रहते।" अब तो योगी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। स्त्री के बाहर आने पर वह उस के पैरों पर गिर पड़ा और पूछने लगा—"माँ तूने यह कैसे जाना?"। स्त्री ने कहा—"मैं एक साधारण स्त्री हूँ। किन्तु मैं ने हमेशा अपने धर्म का पालन किया है। अभी जब मैं ने तुम को ठहरने को कहा था तब मैं अपने रुग्ण पति की सेवा में लगी हुई थी। पति सेवा ही मेरा धर्म है। अपने धर्म का पालन करने से मेरा हृदय इतना निर्मल हो गया है कि उस में सब बातें प्रतिबिम्बित हो जाती हैं। यदि तुम को इससे अधिक जानने की इच्छा है तो अमुक व्याध के पास जाओ। उस स्त्री के उपदेशानुसार वह योगी उस व्याध के पास गया और व्याध ने उसे अनेक सारगर्भित उपदेश दिये वही उपदेश व्याध गीता के नाम से प्रसिद्ध हैं।

जिस क्षुब्ध मुनि की दृष्टि से जल कर विहँग भूपर गिरा।
वह भी सती के तेज सम्मुख रह गया निष्प्रभ गिरा॥

मैथिली शरण गुप्त।

और भी।

यस्य स्त्री तु भवेत् साध्वी पतिव्रत परायणा।
स जयी सर्व लोकेषु स सुखी स धनी पुमान्॥

जिस की स्त्री साध्वी तथा पतिव्रत परायण होती है वही सब लोकों में जयी, सुखी और धनी होता है।

---*---

६२-अतिथि सत्कार।

एक गाँव में एक बहेलिया रहता था। वह नित्य ही जंगल में जाकर पक्षियों का शिकार करता था। एक दिन जंगल में उसे केवल एक कपोती मिली, इतने में वर्षा होने लगी और दिशायें अन्धकारमय हो गईं। वह बहेलिया पिंजड़ा लिये हुये एक पेड़ के नीचे खड़ा हो गया। जाड़े के मारे वह काँप रहा था। अब रात हो गई और वह बहेलिया घर न जा सका। उसी पेड़ पर एक कपोत रहता था, वह इस चिन्ता में था कि रात हो गयी परन्तु मेरी स्त्री कपोती नहीं आई। पिंजड़े की कपोती ने अपने पति को पहचान कर कहाः—

एष शाकुनिकः शेते तवावासं समाश्रितः।
शीतार्तश्च क्षुधार्तश्च पूजा मस्मै समाचर॥

अर्थात् यह बहेलिया तुम्हारे स्थान में आकर सोता है और भूख तथा शीत से व्याकुल है, इसका सत्कार करिये।

मा चास्मै त्वं कृथा द्वेषं बद्धानेनेति मत्प्रिया।
स्वकृतै रेव बद्धाहं प्राक्तनैः कर्मबन्धनैः॥

अर्थात् आप यह न सोचिये कि इसने मेरी प्रिया को फँसा लिया है क्योंकि मैं तो अपने कर्मानुसार ही बँधी हूं"। यह सुन कर कपोत ने अपनी चोंच में एक जलती हुई लकड़ी कहीं से लाकर वहाँ गिरा दी। बहेलिये ने जाग कर आग देखी और पास के पड़े हुये पत्तों को जमा आग जला दी। फिर कपोत ने सोचा कि अतिथि की देह तो गर्म हुई अब इसके भोजन का प्रबन्ध होना चाहिये। पास तो कुछ था ही नहीं इसलिये कपोत ने बहेलिये से कहा—"मैं आग में गिर कर जल जाता हूं तुम मेरे शरीर के मांस से अपनी भूख मिटा लो"। इतना कह कर कपोत आग में कूद पड़ा। बहेलिये ने उसे भून कर खाया, जब वह सन्तुष्ट हुआ तो सोचने लगा कि पक्षी होकर भी कपोत ने मेरे लिये अपने प्राण दिये, मैं कैसा पापी हूँ जो जीवों को मार मार कर अपनी उदर पूर्त्ति करता हूँ। सब कुछ सोच विचार कर बहेलिये ने कपोती को छोड़ दिया। कपोती ने यह समझ कर कि बिना पति के जीवन सर्वथा व्यर्थ है अपना शरीर अग्नि को अर्पण कर दिया। इस घटना को देख कर बहेलिये का हृदय दहल गया और उस दिन से वह धर्माचरण करने लगा।

अतिथि सत्कार गृहस्थाश्रम का मुख्य धर्म है परन्तु शोक कि आजकल के नई रोशनी वाले केवल बातों से ही सत्कार करना जानते हैं। हमारे शास्त्रों में तो यहाँ तक लिखा है कि:—

यः सायमतिथिं प्राप्तं यथा शक्ति न पूजयेत्।
तस्यासौ दुष्कृतं दत्वा सुकृतं चापकर्षति॥

संध्या के समय प्राप्त हुए अतिथि का जो यथाशक्ति सत्कार

नहीं करता उसको अतिथि अपना पाप दे कर और उसके समस्त पुण्य को लेकर चला जाता है ॥

—-*—-

६३-आज्ञा पालन।

एक राजा जो अत्याचारी था एक दिन किसी साधु से मिलने के लिये गया। साधु जी बैठे हुये अपने पाले हुये कुत्ते का प्यार कर रहे थे। राजा साधु के सामने बहुत देर तक खड़े रहे परन्तु साधु ने राजा की ओर आँख उठा कर देखा भी नहीं। तब राजा ने अपने दिल में सोचा कि यह कैसा मूर्ख है जो कुत्ते को तो प्यार करता है परन्तु मेरी ओर आँख उठा कर देखता भी नहीं। यह विचार कर राजा ने साधु का अनादर करते हुये कहा-"तू बड़ा है या तेरा कुत्ता ?" साधु ने उत्तर दिया कि कुत्ता हम से तुम से दोनों से बड़ा है क्योंकि वह एक टुकड़ा देने वाले मालिक की आज्ञा पालन करता है परन्तु तू ईश्वर की दी हुई समस्त पृथ्वी को भी भोग कर उसकी (ईश्वर) की आज्ञा का पालन नहीं करता। जो अपने बड़ों की आज्ञा का पालन नहीं करता वह कुत्तों से भी बुरा है"। यह सुन कर राजा चुप हो रहा ॥

अनुचित उचित विचार तजि, जे पालहिं पितु बैन।
ते भाजन सुख सुयश के, बसहिं अमर पति ऐन ॥

६४-गम खाना।

एक बनिया बहुत ही मोटा था। दो मित्र साथ चले जाते थे, एक ने कहा बनिये इतने मोटे क्यों होते हैं? दूसरे ने उत्तर दिया-जनाब, वह ऐसी चीज़ खाते हैं जो औरों को नसीब नहीं। चलिये दूकान पर दिखा दूं। यह कह कर अपने मित्र को बनिये की दूकान पर ले गया। एक पुलीस का कान्स्टेबुल आटा लेने के लिये उसी बनिये की दूकान पर आ निकला। एक सेर आटा तौलवाया। आटे को कपड़े में लेकर दाम तो कुछ न दिया उलटे लगा गाली देने। हरामजादा कहीं का! बेईमान ने ज्वार का आटा इस में मिला दिया है। लात के देवता बात से नहीं मानते। अच्छा तेरी खबर कल ली जायगी। तात्पर्य यह कि उसने लाखों खोटी खरी सुनाई परन्तु बनिये ने मारे डर के आह तक न की। तब मित्र ने अपने दूसरे मित्र से कहा—"समझे हुजूर, कि बनियें क्या खाकर मोटे होते हैं।"

—*—

६५--हिम्मत मर्दां मददे खुदा।

एक सियार ने एक मौलवी साहब को यह कहते सुन लिया था कि 'हिम्मत मर्दां मददे खुदा' अर्थात् जो अपनी रक्षा स्वयं करता है ईश्वर भी उसी की सहायता करता है। उस दिन से सियार हर काम में वही कहता 'हिम्मत मर्दां मददे खुदा'। उस सियार की स्त्री गर्भिणी थी जब प्रसव काल निकट आ गया तो

सियारिन ने सियार से कहा—"अब हमको किसी सुरक्षित स्थान में चलना चाहिये जहाँ मैं आनन्द से बच्चे दे सकूं"। सियार ने कहा—"हिम्मत मर्दा मददे खुदा, इस समय दूसरी जगह कहाँ खोजने जायँ चलो आज कल सिंह कहीं बाहर गया है उसी की माँद में चलें फिर जब वह आवेगा तो देखा जायगा।" दोनों शेर की माँद में जाकर रहने लगे। सियारिन के बच्चे पैदा हुये। दो तीन दिन पीछे एक दिन शेर कहीं से डहारता हुआ आता दिखलाई पड़ा। सियार ने कहा—"चलो बच्चों को लेकर कहीं भाग चलें नहीं तो अब जान की खैर नहीं।" सियारिन ने कहा—"क्या 'हिम्मत मर्दा मददे खुदा' भूल गया?" सियार ने लज्जित हो कर कहा—"अच्छा ठीक है, कुछ हिम्मत और बुद्धि से काम लेना चाहिये"। जब शेर निकट आ गया तो सियार पिछले पैरों पर खड़ा होकर बोला—"अरी बन कूबरी!" सियारिन ने कहा—"कहो, बन के राजा।"इस शब्द को और खड़े हुये सियार को देख कर शेर हैरान था कि यह कौन जानवर है बन का राजा तो आज तक मैंही था मेरे चले जाने पर किसने अपना प्रभुत्व जमा लिया, अवश्यही यह कोई महा बलवान् जन्तु है।"यह सोचकर शेर तो उलटे पैर फिरा और कुछ दूर जाकर खूब जोर से भागने लगा। बन के सब जीव जन्तु सियार के डर से शेर को भागते देखकर चकित हो रहे। एक बन्दर पेड़ पर से यह सब कौतुक देख रहा था उसने सिंह से प्रार्थना की—"महाराज, वह तो सियार है आप डरते किस लिये हैं आप चलिये वह स्वयं भाग जायेगा।" सिंह ने कहा—"भाई सियार तो मैंने कितने देखे हैं परन्तु आज तक ऐसा सियार देखने में नहीं आ-

या वह सचमुच कोई बड़ा जन्तु है। बन्दर के बहुत कहने पर सिंह ने कहा—"अच्छा तुम आगे आगे चलो पीछे पीछे मैं भी चलूँगा"! बन्दर तो जानता ही था कि यह गीदड़ है निर्भय हो कर आगे २ चला, शेर भी हो लिया। सियार ने जब सिंह को फिर लौटते देखा तो सियारिन से कहा—"अरी बन कूबरी।" सियारिन ने कहा—"कहो बन के राजा।" सियार ने कहा—"तेरे बच्चे क्यों रोते हैं।" सियारिन ने कहा—"मेरे बच्चे शेर खाने को माँगते हैं"। इस बात को सुनतेही शेर भाग खड़ा हुआ। बन्दर बेचारा सन्न हो गया और यह सोचकर कि सियार के राज में कैसे गुज़ारा होगा फिर शेर के आगे जाकर कहा—"महाराज आप तो व्यर्थ ही भाग आते हैं वह सियार ही है कोई और जानवर नहीं"। शेर ने कहा-"कहीं सियार के बच्चे भी शेर खाने को माँगते हैं?" बन्दर ने कहा—"यही तो सियार का चाल ही है। वह निश्चय ही सियार है"। किसी तरह शेर को समझा बुझा कर फिर लौटने पर राजी किया परन्तु शेरने कहा—"कहीं तू भेदिया बन कर मुझे मौत के मुँह में झोंकने आया हो तो? मैं इस प्रकार विश्वास न करूंगा। यदि तू अपनी पूँछ मेरी पूँछ से बाँध ले तो मैं चलूँ जिससे तू मुझे छोड़ कर भाग न सके।" बन्दर को कुछ सन्देह तो था ही नहीं उसने ऐसाही किया। दोनों पूँछ बांधे फिर सियार की माँद की ओर चले। सियार ने कहा—"अब तो प्राण गये।" हिम्मत मर्दां मददे खुदा, याद कर फिर वही चाल चला और सियारिन से बोला—"अरी बन कूबरी। सियारिन ने कहा-"कहो सब जग के बैरी।" सियार ने कहा-"तेरे बच्चे रोते क्यों हैं?" सियारिन ने कहा

"मेरे बच्चे शेर खाने को माँगते हैं।" सियार ने कहा—"तो शेर तो मिल गया न, अब तू क्यों क्रोध करती है।" सियारिन ने कहा—"इस कमबख़्त बन्दर को भेजा था कि दो शेर ला परन्तु एक तो आया भी बड़ी देर में और दूसरे दो के बदले एक ही लाया, एक ही से पेट कैसे भरेगा।" अब क्या था, शेर इतना डरा कि उसे यह स्मरण ही न रहा कि मेरी पूँछ में कोई बँधा है बेतहाशा भगा बेचारे बन्दर की पूंछ भी उखड़ गई। इससे दो शिक्षायें मिल सकती हैं:—(१) बन्दर को बीच में न पड़ना चाहिये था।

'रहिमन' झगड़ा बड़न के, बीच परहु जनि धाय।
लड़ैं लोह पाहन दोऊ, बीच रुई जरि जाय ॥ १ ॥

दूसरे यह कि आपत्ति में धैर्य, साहस और बुद्धि से काम लेने से सब विघ्न दूर हो जाते हैं :—

अपने सहायक आप हो होगा सहायक प्रभु तभी।
बस चाहने से ही किसी को सुख नहीं मिलता कभी।
आने न दो अपने निकट औदास्य मय उत्ताप को॥
आत्मावलम्बी हो, न समझो तुच्छ अपने आपको!
अति धीरता के साथ अपने कार्य में तत्पर रहो॥
आपत्तियों के वार सारे वीरवर बन कर सहो।
सब विघ्न भय मिट जायँगे होगी सफलता अन्त में॥
फिर कीर्ति फैलेगी हमारी एक बार दिगन्त में॥

म० श० गुप्त

———*———

६६-सच्ची मित्रता।

एक चींटी नदी में बही जाती थी। एक चिड़िया ने उसे देखा। चिड़िये के हृदय में चींटी पर दया आई, उसने एक पीपल का पत्ता चोंच से तोड़ कर नदी में फेंक दिया। चींटी उस पत्ते पर बैठ गयी। थोड़ी दूर पर वह पत्ता किनारे जा लगा, इस प्रकार चींटी भी बच गई। एक दिन उसी चिड़िया को मारने के लिये एक बहेलिये ने बन्दूक का निशाना लगा रक्खा था। दैव-योग से चींटी भी वहीं पहुँची। उसने अपने उपकारी को पहिचान कर प्रत्युपकार करना चाहा। चींटी बहेलिये के हाथ पर चढ़ गई। ज्यों ही बहेलिए ने बन्दूक दाग़नी चाही चींटी ने उसके हाथ में काट लिया। पीड़ा होने से बहेलिये का हाथ हिल गया और हाथ हिलने से निशाना न लगा। बन्दूक की आवाज़ सुनकर चिड़िया उड़ गई। तुच्छ जन्तुओं में इतनी मित्रता और आदमी एक दूसरे का शत्रु! भगवन् तेरी लीला अपरम्पार है—

साहाय्य दे सकते मनुज को मनुज ही खग मृग नहीं।
वे भी न दें तो बस मनुजता व्यर्थ है उनको वहीं॥
निज बन्धुओं की ही न हम यदि पा सकें प्रियता यहाँ।
तो उस महा प्रभु की कृपा-प्रियता हमें रक्खी कहाँ?॥

—:०:—

६७-स्वार्थ की मित्रता।

एक वर्गद के पेड़ के आश्रय में चार जीव बसते थे, नेवला,

उल्लू, बिल्ली और चूहा । नेवला और चूहा अलग २ बिल में रहते थे, उल्लू पत्तों में छिपा रहता था और बिल्ली पेड़ के खोखले में । चूहे को तीनों मार सकते थे और बिल्ली तीनों की जान पर भारी थी । बिल्ली तो निर्भय बिचरती थी परन्तु वे तीनों अवसर पाकर खेत में अन्न के लिए जाते थे । एक दिन खेत में मालिक ने जाल लगाया । बिल्ली चूहों की ताक में खेत में गई तो फँस गई । चूहा भी दबे पांव उसी खेत में पहुँचा और बिल्ली को जाल में फँसी देखकर आनन्द से कूदने लगा । इतने में नेवला और उल्लू भी आते दिखाई पड़े । जब उन दोनों ने बिल्ली को जाल में फँसी पाया तो चूहे को पकड़ने के लिए लौछियाने लगे । चूहे ने सोचा कि यदि मैं दौड़ कर बिल्ली के पास जा रहूँ तो यह दोनों तो डर से उसके पास नहीं जा सकेंगे परन्तु बिल्ली ही मुझको कब छोड़ेगी और यदि बिल्ली से दूर रहता हूँ तो यह दोनों मुझे चट कर जायँगे । चूहा कुछ सोच समझ कर बिल्ली के पास जाकर कहने लगा—"तुम्हें इस जाल में फँसी देखकर मुझे बहुत दुःख होता है यदि तुम कहो तो मैं अपने तेज़ दाँतों से जाल को काट दूं । परन्तु तुम्हारे दिल में क्या है इस बात को बिचार कर मुझे तुह्मारे पास आने में डर लगता है" । बिल्ली ने कहा—"मित्र तुम मेरा विश्वास रक्खो कि जब तुम मेरी जान बचाओगे तो मैं ऐसी कृतघ्न नहीं हूँ कि अपने उपकारी का अनभल सोचूँगी । तुम देर न करो, रात बीतनी चाहती है अतएव बन्धनों को शीघ्र ही काट दो ।" चूहा धीरे धीरे दाँत चलाने लगा । वह जान बूझ कर इस कारण विलम्ब करता था कि जिसमें मालिक आ जावे । उल्लू और नेवले ने चूहे को

बिल्ली के पास देखकर अपनी अपनी राह ली। रात बीतने पर ज्यों ही मालिक आता हुआ दिखाई दिया, बिल्ली ने कहा—"मित्र जल्दी करो"। चूहे ने झट पट जाल काट दी। बिल्ली मालिक के डर से अपनी जान बचा कर भाग खड़ी हुई और चूहा भी मृत्यु के मुख से बच कर बिल में घुस गया। दूसरे दिन बिल्ली ने चूहे को पास बुलाया तो चूहे ने उत्तर दिया—"समय के फेर फार से कभी शत्रु भी मित्र हो जाता है किन्तु वह सदा मित्रता का बर्ताव नहीं करता।

बुद्धिमान पुरुष समय पड़ने पर इसी प्रकार अपना काम निकालते हैं परन्तु स्वार्थ की मित्रता में वह आनन्द कहाँ जो सच्ची मित्रता में है।

लाख उनको रहें मिलाते हम।
हैं न वे मेल मन मिले रहते॥
है मुलम्मा किया हुआ जिस पर।
मेल उस मेल को नहीं कहते॥

धूल में जाय मिल मिलन वह जो।
मसलहत का महँग मसाला हो॥
प्यार जो प्यार मतलबों का हो।
मेल जो मोल जोल वाला हो॥

—*—

६८—बातों की कमाई।

किसी नगर में एक विद्वान और चतुर मनुष्य रहता था जो

कि अपनी बातों की कमाई खाता था। एक दिन वह बाज़ार में खड़ा होकर जोर २ कह रहा था कि हमारे पास एक रूपये से लेकर सौ रूपये तक की बातें बिक्री के लिये मौजूद हैं। जो खरीदना चाहें खरीद सकते हैं"। वहीं पर बाजार में एक बनिये का लड़का भी खड़ा था जिसको उसके बाप ने २५) देकर सौदा मोल लेने के लिये भेजा था उसने २५) उस चतुर मनुष्य को देकर कहा—"मुझे भी २५) की एक बात दो"। विद्वान ने रूपया लेकर कहा—"जहाँ दो आदमी परस्पर लड़ते हों वहाँ पर मत खड़े होना"। बनिये का लड़का इस बात को लेकर घर लौट आया। घर पहुँचते ही बाप ने पूछा—"क्या सौदा लाये"। लड़के ने कहा—"२५) की एक बात खरीद लाया हूँ"। बनिये ने कहा—"हट मूर्ख। वह सब ठग हैं चल उस की बात फेर कर अपना रूपया लौटा लें।" बाप बेटे दोनों बाज़ार पहुँचे। बाप ने बेटे को उस बात बेचने वाले मनुष्य के पास खड़ा करके कहा—"तू कह दे कि हम तुम्हारी बात पर अमल न करेंगे, हमारे रुपये वापस दो"। लड़के ने ऐसा ही कह कर अपना रुपया फेर लिया। कुछ दिनों के पश्चात् वही बनिये का लड़का एक दिन हवा खाने जा रहा था। रास्ते में एक जगह राजा और मंत्री के लड़के गेंद खेल रहे थे। बनिये का लड़का खड़ा होकर खेल देखने लगा। थोड़ी देर में किसी बात पर मंत्री और राजा के लड़के में झगड़ा होने लगा। मार पीट तक की नौबत पहुँची। दोनों ने जाकर अपने अपने बाप से एक दूसरे की बुराई की। राजा और मंत्री दोनों यह विचार करने बैठे कि दोष किस का था। राजा ने अपने लड़के से पूछा-"तुम्हारा कोई

गवाह भी है"। राजा के लड़के ने कहा-"एक बनिये का लड़का वहीं पर खड़ा सब तमाशा देख रहा था वही हमारा गवाह है"। मंत्री के लड़के से भी पूछा गया तो उसने भी उसी लड़के को अपना गवाह बताया। गवाह के नाम सम्मन जारी हुआ। राजा के लड़के ने बनिये के लड़के को कहला भेजा कि यदि तुम मेरी ओर से गवाही न दोगे तो अपने को जीता न पाओगे। इधर मंत्री के लड़के ने भी कहला भेजा कि यदि तुमने मेरी ओर से गवाही न दी तो मानों तुम पैदा ही न हुये थे। बनिये का लड़का बड़े असमंजस में पड़ा। लड़के ने बनिये से कहा-"आपने २५) का मोह किया अब उसके बदले मेरे प्राणों से हाथ धोइये।" बाप के पूछने पर लड़के ने सब वृत्तान्त कह सुनाया। बाप ने कहा-"चलो उसी बात बेचने वाले के पास चलें, कदाचित् जान बचाने की कोई तदबीर बताये"। बाप बेटे दोनों बात बेचने वाले के पास गये और सब वृत्तान्त कह सुनाया। बात बेचने वाले ने कहा-"हम १००) की एक बात ऐसी देंगे कि तुम्हारे प्राण बच जायेंगे। बाप ने प्रसन्नता से १००) बात का दाम और पाँच रुपये अपनी ओर से नजराना, कुल १०५) दाखिल कर दिये। बात बेचने वाले ने कहा-"जब तुम से राजा या मंत्री कुछ पूछें तो पागल बन जाना"। बाप बेटे घर लौट आये। जब बनिये का लड़का गवाही देने के लिये गया तो राजा ने पूछा-"बताओ, किसका दोष है"। बनिये के लड़के ने धोती खोल कर फेंक दी और लगा नाचने गाने-"रमैया की दुलहिन लूटा बजार"। मंत्री ने कहा—"यह तो पागल है इसकी गवाही कैसे मानी जा सकती है। लड़का छोड़ दिया गया। मुकद्दमा खारिज हो गया।

बुद्धिमानी से कौन सा काम नहीं हो सकता है।

—o—

६९-टके टके की चार बातें।

एक राजा एक दिन शिकार खेलते हुये भटक कर विवश हो किसी गाँव में जाकर ठहर गया। वहीं एक बान बटने वाला जिसका बान उलझ गया था अपनी स्त्री से कहता था कि—"यदि तू मेरा बान सुलझा दे तो मैं तुझे टके टके की चार बातें बताऊँ।" स्त्री ने बान सुलझा कर कहा—"बताओ टके टके की चार बातें"। बान बटने वाले ने कहा—

पहली बात एक टके की यह कि—"दूसरों के भरोसे पर अपना काम न छोड़े।"

दूसरी बात एक टके की यह कि—"स्त्री को मायके (नैहर) में न रहने दे।"

तीसरी बात एक टके की यह कि—"नीच की नौकरी न करे।

चौथी बात एक टके की यह कि—"अपनी थाती छिपा कर किसी के पास न रक्खे।"

वह राजा सब सुन रहा था। जब लौट कर अपने राज्य में पहुँचा तो सोचा कि इन बातों की परीक्षा करनी चाहिये। अपने कर्मचारियों को बुला कर कहा—"आजसे छः महीने तक मैं राज्य का कुछ कार्य न देखूँगा आ। लोग सब प्रबन्ध करें मुझसे कोई सम्बन्ध नहीं"। इतना कह कर २५ हजार अशर्फियाँ और

एक लाल लेकर ससुराल की राह ली। इसलिये कि कोई पहचान न ले संन्यासियों का भेष बनाया। अशर्फियाँ गुदड़ी में और लाल लँगोटी में छिपा लिया। जब ससुराल पहुँचे तो सब अशर्फियाँ एक भठियारिन को सौंप कर कहा—"जब मुझे आवश्यकता पड़ेगी तब तुम से ले लूँगा"। लाल को पास ही रक्खा। कुछ दिन तक ससुराल वाले गाँव में रहने के विचार से वहीं के कोतवाल के यहाँ केवल पेट की रोटियों पर ही नौकरी कर ली। राजा की रानी (जो इसी गाँव में अपने नैहर में कुछ दिनों से थी) कोतवाल से कुछ अनुचित सम्बन्ध रखती थी। एक दिन रानी और कोतवाल दोनों बैठे बातें कर रहे थे कोतवाल ने नौकर को बुलाकर कहा—"जरा हुक्का भर कर दे जाना"। नौकर जब हुक्का लेकर अन्दर गया तो रानी ने उसको देख कर पहचान लिया कि यह तो मेरा पति राजा है मेरा भेद लेने ही के लिये यह भेष बनाया है। ऐसा विचार मन में दृढ़ करके कोतवाल से बोली—"आप के यहाँ यह नौकर कब से है"। कोतवाल ने कहा—"कोई दस पन्द्रह दिन से"। रानी ने कहा—"आप इसको मरवा डालें।" कोतवाल ने बहुत समझाया कि यह बेचारा पेट की रोटियों पर ही दिन भर सेवा करता है कभी कुछ अपराध भी नहीं करता इसके प्राण लेने पर तुम क्यों तुली हो परन्तु जब रानी ने एक न सुनी तो यह समझ कर कि यदि इसे न मरवा देंगे तो मेरे और रानी के प्रेम में अन्तर पड़ेगा जल्लादों को बुला कर कहा—"जाओ रे, इस नौकर को जंगल में मार कर डाल आओ"। जल्लाद नौकर को लेकर जंगल में पहुँचे। नौकर ने जल्लादों से कहा—"मुझे जीता छोड़ दो तो मैं तुमको

२५ हज़ार अशर्फियाँ पारितोषिक दूँ "। जब जल्लादों ने मान लिया तो उन्हें लिवा कर भठियारिन के यहाँ पहुँच कर नौकर ने कहा—" दो मेरी २५ हज़ार अशर्फियाँ "। भठियारिन ने डपट कर कहा—" दूर हो मुँह जले, तू कब अशर्फियाँ देने योग्य था कल तक तो मेरे कोतवाल के यहाँ रोटी पर नौकर था आज २५ हज़ार अशर्फियों का स्वप्न देख रहा है "। विवश होकर नौकर ने वही लाल जो लँगोटी में छिपा रक्खा था देकर जल्लादों से छुटकारा पाकर अपने देश को लौट आया। अपने महल में पहुँच कर राजा ने अपने स्वसुर दूसरे राजा के नाम पत्र भेजा कि मैं अमुक तिथि को बिदा कराने आऊँगा। तिथि स्वीकृत हो गई राजा की रानी ने (जो नैहर में थी) सोचा कि जिसको मैंने प्राणदण्ड दिया था वह मेरा पति न था कोई और मनुष्य था। अस्तु राजा साहब अपनी ससुराल बिदा कराने के लिये जा पहुँचे। स्वसुर ने दामाद की बड़ी आव भगत की परन्तु दामाद के दिल में तो और ही काँटा खटक रहा था सदा चुप मारे बैठा रहता। स्वसुर ने कहा—" बेटा उदास क्यों हो, पहिले जब आते थे तो कुछ न कुछ नई वस्तु हम से माँगते थे अब की बार भी कुछ माँगो "। राजा ने कहा—" मुझे आवश्यकता तो किसी वस्तु की नहीं है परन्तु यदि आप कुछ देना ही चाहते हैं तो मेरे राज्य का प्रवन्ध करने के लिये इस कोतवाल को और सराय का प्रवन्ध करने के लिये इस भठियारिन को मुझे दे दीजिये "। दूसरे दिन रानी को बिदा कराकर और कोतवाल तथा भठियारिन को साथ लेकर राजा अपने राज्य में पहुँचे। पहुँचते ही उस बात बटने वाले को बुलाकर कहा—" अमुक दिन जो टके टके की चार बातें तू ने

अपनी स्त्री से बताई थीं वह कौन कौन सी बातें हैं ज़रा फिर बतला" पहिले तो बान बटने वाला बहुत डरा परन्तु राजा के बार बार आश्वासन (ढ़ाढ़स) देने पर बोला—"महाराज एक टके की पहिली बात यह थी कि अपना काम दूसरों के भरोसे पर न छोड़े"। राजा ने तुरन्त राज्य के कर्मचारियों को बुलाकर जब लेखा (हिसाब) देखा तो बहुत गड़बड़ पाया कई लाख रुपयों का पता न लगा, तब बान बटने वाले से कहा—"तेरी यह बात एक टके की नहीं किन्तु १ लाख की थी"। कर्मचारियों को उचित दण्ड देकर राजा ने फिर बान वाले से दूसरी बात पूँछी। उसने कहा—"सरकार दूसरी बात एक टके की यह थी कि स्त्री को मायके में न रक्खे"। राजा ने रानी को सभा में बुला कर सब के समक्ष कहा-"क्यों रे दुष्टा, कुलाङ्गार तू ने सतीत्व का नाश कर इस कोतवाल के प्रेम पाश में पड़ कर मुझे जल्लादों से मरवाना चाहा था? ले भोग अपने कुकर्मों का फल!" इतना कह कर राजा ने उस दुष्टा रानी को प्राण दण्ड दिया। राजा ने बान वाले से कहा—"तेरी दूसरी बात १ टके की नहीं किन्तु २ लाख की है. अब अपनी तीसरी बात बता"। बान वाले ने हाथ बाँध कर कहा—"पृथ्वीनाथ, तीसरी बात एक टके की यह थी कि नीच की नौकरी न करे"। राजाने कोतवाल को बुला कर कहा—"क्यों रे नीच! मैंने तो केवल रोटियों ही पर तेरी सेवा करना स्वीकार किया था उसका बदला तूने यों चुकाया कि मुझे मारने के लिये जल्लादों को नियत किया अब मृत्यु का मुख देख कैसा है"। इतना कह कर राजाने कोतवाल के प्राण लिये और बान वाले से कहा—"तीसरी बात एक टके की नहीं किन्तु ३

लाख की थी अब अपनी चौथी बात बताओ"। बान वाले ने कहा—"महाराज एक टके की चौथी बात यह थी कि अपनी थाती किसी के पास छिपा कर न रक्खे"। तबतो राजा ने उस भठियारिन को बुलाकर उससे कहा—"मैंने तो तुझे २५ हजार अशर्फियाँ इस लिये दी थीं कि आवश्यकता पड़ने पर उसे लेलूँगा जब मैंने अपने प्राण बचाने के लिये तुझसे अशर्फियाँ माँगी तो तू खरी खोटी सुनाने लगी। जैसे उस समय तूने मेरे प्राणों का कुछ भी मूल्य न समझा ऐसेही आज मैं भी तेरे प्राणों को हरण करता हूँ"। राजाने नौकरों को आज्ञा दी कि उसे आधा गाड़के उसके ऊपर शिकारी कुत्ते छोड़ कर चिथवा दें। बान वाले से राजा ने कहा—"तेरी चौथी बात ४ लाख की ठहरी। ले अपनी चारों बातों का दाम १० लाख रुपये"। बान वाला रूपये लिये हँसता चला गया।

मनुष्य को उचित है कि वह सबकी बात ध्यान देकर सुने और यदि बात अच्छी हो तो उस पर आचरण करे। कहा भी है

उत्तम विद्या लीजिये, यदपि नीच पै होय।
परो अपावन ठौर में, कञ्चन तजत न कोय॥

———*———

७०—राजा भोज का विद्या का शौक।

चार मूर्खों ने आपस में सलाह की कि चलो राजा भोज को कुछ कविता सुनाकर कुछ रुपया लायें जिससे खाने पीने का काम चले। उनमें से एक ने कहा—"भाई कविता तो कुछ बनी

नहीं है, क्या सुनाओगे ?"। दूसरे ने उत्तर दिया—"रास्ते में बन जायगी।" चारो चल पड़े। कुछ दूर जाने पर उन्होंने एक मछुये को देखा जो जाल लगाने के लिये तालाब में जमीन खोद रहा था। एक ने कहा—"खोदन्ते भाई खोदन्ते।" दूसरे ने मछलियों को छिप कर बैठते देख कर कहा—"दपक के बैठन्ते भाई बैठन्ते।" कुछ दूर और जाने पर एक हिरन जंगल से भागता हुआ दिखाई दिया जो कुछ दूर तक भागता तो एक बार गर्दन मोड़ कर पीछे देख लेता। तीसरे मूर्ख ने कहा—"चले जात फिर ताकत का?" फिर कुछ दूर आगे बढ़ने पर एक बहुत मोटा आदमी मिला। चौथे ने कहा-"धाँधू साह भाई धाँधू साह"। बस चारों मूर्खों की कविता बन गयी। चारों ने जाकर दरबार में कविता सुनाई। राजा ने उनके उत्साह को देख कर एक एक हजार रुपया चारों को देकर बिदा किया। राजा भोज का इस प्रकार मूर्खों को इतना रुपया देना अच्छा न लगा। राजा भोज के खज़ानची का नाम धाँधू साह था, उसने सोचा कि रोज जमा खर्च लिखते २ नाक में दम है परन्तु तनख्वाह बहुत कम मिलती है, आज रात को सेंध लगा कर सारा खज़ाना उठा ले जाऊँगा तो इस प्रकार मूर्खों को धन देने का फल राजा को जान पड़ेगा। राजा रात को अपनी रानी से चारों मूर्खों की कविता कह रहे थे इधर धाँधू साह ने सेंध लगाना आरम्भ किया। राजाने रानी से कहा—"पहिले मूर्ख की कविता यह थी- खोदन्ते भाई खोदन्ते"। धाँधू साह ने जाना कि खोदने का शब्द राजा को सुनाई देता है इस लिए दपक के बैठ गया। राजाने दूसरे मूर्ख की कविता सुनाई—दपक के बैठन्ते भाई बैठन्ते। धाँधू साह ने सोचा कि अब तो मेरा बैठना भी राजा समझ गये,

अब बिना भागे कुशल नहीं। बस धाँधू ने कदम उठाया। राजा ने तीसरे चोर की कविता सुनाई चले जात फिर ताकत का। धाँधू-साह इस डर के मारे कि कोई पीछे आ न रहा हो ताकते भी जाते थे। फिर राजा ने चौथे मूर्ख की कविता सुनाई- धाँधू साह भाई धाँधू साह। अबतो धाँधूसाह को पूरा विश्वास हो गया कि राजा ने मुझे पहचान लिया। दूसरे दिन दरबार में धाँधूसाह हाथ जोड़े क्षमा माँगने आये। राजा के पूछने पर धाँधूसाह ने सब वृत्तान्त कह सुनाया। राजा ने धाँधूसाह को क्षमा करके दरबारियों से कहा—"देखो भाई जिस कविता ने हमारे सारे ख़जाने को बचाया उसका मूल्य मैंने केवल ४ हजार रुपया बहुत ही कम दिया है।" दरबारी लोग चुप रह गये।

विद्यानुरागी भोज भी कैसा सदाशय भूप था।
विख्यात कवियों के लिये जो कल्प वृक्ष स्वरूप था॥
साहित्य के उद्यान में वह पुण्य काल बसन्त है।
वे वे प्रसून खिले कि अब भी सुरभि पूर्ण दिगन्त है॥

—*—

७१-किसान का हिसाब।

एक बादशाह शिकार खेलने जा रहा था, रास्ते में उसने एक किसान को देखा जो हल जोत रहा था और बड़े ज़ोर २ से गा रहा था। वह बहुत प्रसन्न जान पड़ता था। राजा ने किसान से पूछा—"तुम बहुत प्रसन्न जान पड़ते हो, तुमको कितनी मजदूरी मिलती है?" किसान ने कहा—"आठ आना

रोज़ "। बादशाह ने पूछा—" तुम उसको क्या करते हो ? " किसान ने कहा—"आठ आने में से दो आना रोज ऋण चुकाता हूँ, दो आना ऋण देता हूँ, दो आना आगे के लिये रखता हूँ और शेष दो आना खाता हूँ " बादशाह ने कहा—"तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आई, मुझको समझाओ "। किसान ने कहा—" सर्कार ! माता पिता ने मेरा पालन पोषण किया था। अतएव उनका ऋण मेरे ऊपर है, दो आना नित्य उनकी सेवा में ख़र्च करता हूँ इस प्रकार दो आना नित्य ऋण चुकाता हूँ। दो आना अपने लड़कों के लिये व्यय करता हूँ, अभी मैं उनको खिला रहा हूँ जब वे बड़े होंगे तो मुझको खिलायेंगे, इस प्रकार दो आना नित्य ऋण देता हूँ। दो आना नित्य दीनों को दान देता हूँ, इस जन्म में मैं दे रहा हूँ वह मुझे दूसरे जन्म में मिलेगा, इस प्रकार दो आना आगे के लिए रखता हूँ। और दो आना जो बच रहता है उससे अपना पेट भरता हूँ और भगवान का भजन करता हूँ "। बादशाह ने किसान की बुद्धि की बहुत प्रशंसा की और कहा—"तुम्हारा हिसाब बहुत ठीक है "।

———*———

७२-चित्त की एकाग्रता।

जब गुरु द्रोणाचार्य पाण्डवों को धनुषविद्या सिखा चुके तो एक दिन सब की परीक्षा लेने का दिन नियत किया। नियत समय पर सब पाण्डव एकत्रित हुये। गुरु ने एक लक्ष्य बना कर पहिले युधिष्ठिर को लक्ष्य वेध करने को कहा। जब युधिष्ठिर धनुष

बाण लेकर लक्ष्य बेध करने को तैयार हुये तो गुरु ने पूछा--"तुम क्या २ देखते हो ?"। युधिष्ठिर ने कहा--मैं आपको देखता हूँ, सब भाइयों को देखता हूँ"। गुरु ने कहा-"अच्छा तुम धनुष बाण रख दो। तुम लक्ष्य बेध नहीं कर सकते"। यही प्रश्न गुरु ने और भाइयों से उस समय किया जब वे बारी २ लक्ष बेध करने को तैयार हुये। सभों ने यही उत्तर दिया। अन्त में गुरु ने अर्जुन को लक्ष बेध करने को कहा। जब अर्जुन धनुषबाण लेकर लक्ष बेध करने को तैयार हुये तो गुरु ने पूछा--"तुम क्या देखते हो ?" अर्जुन ने कहा--"गुरु जी ! इस समय मुझको न आप दिखाई पड़ते हैं न और कोई। इस समय मुझको केवल लक्ष ही दिखाई देता है"। गुरु ने कहा--"साधु वाद ! तुम लक्ष भेद कर सकते हो कारण कि तुम्हारा चित्त केवल लक्ष ही पर है"। अर्जुन ने लक्ष भेद किया।

कोई भी काम हो जब मनुष्य उस काम में इतना तन्मय हो जाता है कि उसके सिवा उसे कुछ दृष्टि ही नहीं आता तो वह अवश्य अपने काम में सफल होता है।

७३--जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।

एक बार विष्णु भगवान् के वाहन गरुड़ जी ने अपने घर जाने की इच्छा प्रगट की। भगवान् ने कहा—"देखो, गरुड़ ! यहाँ तुम बैकुण्ठ धाम में स्वर्ग सुख भोग रहे हो। फिर घर जाने की क्या आवश्यकता है ? ऐसा सुख तुम्हारे घर में तो क्या त्रैलोक्य में

भी नहीं मिल सकता।" परन्तु गरुड़ ने आग्रह करके घर जाने की आज्ञा किसी प्रकार ले ही ली। भगवान् ने अपने मन में सोचा जरा इनका मकान देखना चाहिये जिसके लिये इन्होंने इतने आग्रह से आज्ञा ली है। अस्तु छद्म भेष धारण करके भगवान् गरुड़ जी के मकान पर पहुँचे। देखते क्या हैं कि एक पुराने बगंद के वृक्ष में एक खोखला है वही गरुड़ जी का वासस्थान है। गरुड़ जी छोटा रूप धारण करके कभी इस टहनी पर कभी उस टहनी पर फुदक रहे हैं। कभी बोलते हुये अपने कोटर में धस जाते हैं कभी शाखाओं पर पंख फुलाकर जी खोल कर चढ़ते हैं। भगवान् गरुड़ जी को इतना प्रसन्न देख कर अपना कौतूहल न रोक सके और उनके सामने आकर खड़े होकर पूछने लगे—"गरुड़ जी, इस कोटर में ऐसी कौन सी वस्तु है, जिसके कारण आप फूले नहीं समाते और बैकुण्ठ धाम में स्वर्ग सुख होने पर भी आपको मैं इतना प्रसन्न नहीं देखता था।" इस पर गरुड़ जी ने कहा—"भगवन् ! यह अपनी जन्म भूमि है। इसके सुख आप क्या समझेंगे। करुणानिधान ! जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी" अर्थात्--

जननी जन्म भूमि अपनी है स्वर्ग लोक से भी प्यारी।
वाकी रक्षा हित तन मन धन सर्वस अपना बलिहारी।

७४-संसारमें कैसे रहना चाहिये।

एक रास्ते पर एक बिल थी जिसमें एक काला साँप रहता था। लोगों ने वह रास्ता छोड़ दिया था क्योंकि जो कोई उस रास्ते से जाता उसको वह साँप काट लेता और वह तुरन्त मर जाता। एक दिन एक महात्मा उसी रास्ते से हो कर निकले। साँप महात्मा को काटने दौड़ा। महात्मा ने साँप को आता हुआ देख कर कहा भाई हम तुम एक ही पिता परमात्मा के पुत्र हैं अतएव भाई भाई हैं, क्या तुह्मारा यही धर्म है कि तुम भाई को मार कर प्रसन्न हो? महात्मा की इस मीठी बाणी का साँप पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि साँप ने कहा—"बहुत अच्छा आज से मैं किसी को न काटूँगा"। महात्मा जी चले गये. साँप भी अपनी बिल में घुस गया। उस दिन से साँपने काटना छोड़ दिया। अपनी बिलसे निकल कर बाहर पड़ा रहता, कोई कितना ही छेड़ता परन्तु वह कुछ न बोलता, अब उस पर तबाही आने लगी। कोई उस पर पत्थर फेंकता कोई, लाठी से चोट करता, कोई पूँछ पकड़ के घसीटता। फल यह हुआ कि साँप के शरीर में घाव ही घाव हो गये। एक दिन वही महात्मा फिर उसी राह से आ निकले। जब उन्हों ने साँप की यह अधोगति देखी तो उन्हें बड़ी दया आई। साँप से पूँछा—"तुह्मारी यह दशा कैसे हुयी? साँपने कहा—'महाराज, जब तक मैं सब को काटता था कोई मेरे पास न आता था परन्तु जब से मैंने आप के कहने से काटना छोड़ दिया तब से मेरी यह अधोगति हो रही है"। महात्मा ने कहा-"मैं ने तो केवल यही कहा था कि किसी को काटना नहीं यह तो

नहीं कहा था कि किसी को डराना भी नहीं यदि तू अपनी फूत्कार से अपने छेड़ने वाले को डराया करता तो आज तुझे यह दिन न देखना पड़ता।"

मनुष्य को संसार में इस प्रकार रहना चाहिये कि लोग डरते भी रहें और उसका निरादर न करें। परन्तु किसी को दुख भी न देना चाहिये और न ऐसे रहना चाहिये कि लोग उसे व्यर्थ ही सताया करें।

न इतना हलवा बन कि चट कर जाँय भूके ॥
न इतना कड़ुवा बन कि जो चक्खे सो थूके ॥

७५—एक के करने से क्या होगा।

एक राजा ने एक बहुत ही सुन्दर तालाब बनवाया। जब तालाब बन कर तैयार हो गया तो राजा ने अपने राज्य के किसानों को आज्ञा दी कि प्रत्येक किसान एक २ घड़ा दूध आज रात को इस तालाब में डाल जाये, जो दूध न डालेगा उसे दण्ड दिया जायगा। संयोग से उस दिन अमावस्या थी। किसानों ने अपने अपने दिल में सोचा कि यदि हम इस अँधेरी रात में एक घड़ा पानी ही डाल आयेंगे तो कौन देखता है और दूध से भरे हुये तालाब में एक घड़ा पानी कुछ समझ भी न पड़ेगा। इसी विचार से प्रत्येक किसान एक एक घड़ा पानी रात को तालाब में डाल आया। प्रातः काल राजा ने देखा तो तालाब में पानी ही पानी भरा था। सब किसानों को बुलाकर पूछा तो ज्ञात हुआ

कि सबों ने यही सोचा था कि सिर्फ मेरे ही एक घड़े पानी से क्या हानि होगी।

तात्पर्य यह है कि यह कभी न सोचना चाहिये कि केवल हमीं अकेले क्या कर सकते हैं यदि सब यही विचार कर बैठ रहें तो संसार का कोई भी काम पूरा नहीं हो सकता।

——*——

७६-चापलूसी से दुर्दशा। [१]

एक राजा बड़ा चापलूसी प्रिय था। उसकी सभा में बहुत से चापलूस रहते थे जो कि राजा की व्यर्थ प्रशंसा कर रूपया ले ले कर उड़ाते थे। एक दिन चापलूसों ने राजा से कहा—"महाराज संसार के सभी भोग आप भोग चुके हैं परन्तु क्या कभी आपने इन्द्र की पोशाक (पहनावा) भी पहनी है।" राजा ने कहा—"नहीं, क्या किसी प्रकार इन्द्र की पोशाक मिल सकती है"। चापलूसों ने उत्तर दिया—"हाँ धर्मावतार, परन्तु व्यय अधिक पड़ेगा। अर्थात् कोई दश हज़ार रूपये।" राजाने कहा—"कोई हर्ज नहीं लेलो कोष से दश हज़ार रूपये।" चापलूसों ने रूपया लेकर राजा से कहा "महाराज हमलोग ६ महीने में लौटेंगे क्योंकि इन्द्र तक पहुँचने में बहुत समय लगेगा"। ऐसा कह कर सब सभा से चले गये। रूपया तो सभों ने बाँट कर घर में रक्खा और छः महीने इधर उधर घूमघामकर एक दिन एक खाली सन्दूक में ताला बन्द करके एक नौकर के सर पर रख कर सभा में जा पहुँचे और राजा से प्रार्थना की-"महाराज, इन्द्र की

पोशाक यह लीजिये, परन्तु एक बात है कि यह धर्म की पोशाक है अतएव असलों को तो दिखाई देती है परन्तु दोगलों को नहीं दिखाई देती। अच्छा आप अपने सब कपड़े उतार दें और इन्द्र की पोशाक पहनें।" राजा ने सब कपड़ा उतार दिया। चापलूसों ने सन्दूक खोल कर उसमें हाथ डाला और खाली हाथ निकाल कर कहा-"यह लीजिये इन्द्र की कमीज।" सब सभासदों ने दोगला बनने के डर से कहा वाह वाह, बहुत अच्छी है।" फिर चापलूसों ने कहा-"यह लीजिये इन्द्र की वास्कट।" सभोंने फिर" वाह वाह" कहा। चापलूसों ने फिर सन्दूक से हाथ निकाल कर कहा-"और यह महाराज, इन्द्र की कोट, सभासदों ने कहा" वाह वाह।" अब चापलूसों ने कहा-"महाराज और तो आप सब पहिन चुके, इस पुराना धोती को भी छोड़कर इन्द्र की धोती पहिनिये।" राजा ने धोती भी छोड़ दी, अब नितान्त नंगे हो गये परन्तु किसी ने कुछ न कहा क्योंकि यदि कोई कहता तो वह दोगला समझा जाता। चापलूसों ने कहा-"यह महाराज, लीजिये इन्द्रकी धोती।" जब राजा सब पहिन चुके अर्थात् सोलहो आने नंगे हो गये तो चापलूसों ने कहा-"महाराज" इन्द्र बन कर जरा शहर (नगर) में घूम आइये" राजा साहब नंगे धिड़ंगे बग्गी पर बैठकर घूमने चले। जब नगर के लोग कहते कि राजा क्या पगला हो गया है नंगा ही घूम रहा है। राजा ने कहा—"यह सब दोगले हैं इनको इन्द्र की पोशाक नहीं दिखाई दे सकती।" जब शैर करके राजा लौटे तो चापलूसों ने फिर कहा-"महाराज ज़रा महलों में भी हो आइये, आपकी राज महिषी भी इन्द्र की पोशाक देख लें।"

राजा साहब नंग धिड़ंग महल में जा पहुंचे। रानी ने राजा को देखकर कहा—"आज नंगे क्यों ?" राजा ने कहा—"तुम दोगली हो" मैंने इन्द्र की पोशाक पहिनी है यह दोगलों को नहीं दिखाई पड़ती।" रानी ने मुस्करा कर कहा—" कृपाकर और सब पोशाक तो इन्द्र की पहिनिये परन्तु धोती अपने ही देश की पहिनिये।"

आजकल भोले भाले राजकुमार चापलूसों की ऐसी ही कठपुतली बने हैं आजकल हमारे राजा रईसों की सभा ऐसेही लोगों से सुसज्जित रहती है:—

बस भाँड़, भँडुवे, मसखरे उनकी सभा के रत्न हैं।
करने रिझाने को उन्हें अच्छे बुरे सब यत्न हैं।
धारा बचन की कौन जो उनके सुखार्थ न बह उठे।
है कौन उनकी बात पर जो"हाँ हुजूर" न कह उठे।

—*—

७७—चापलूसी से दुर्दशा (२)

किसी राजा की सभा में बहुत से चापलूस थे। एक दिन सायंकाल जब गीदड़ (शृगाल) बोलने लगे तो राजा ने सभासदों से पूछा-"यह गीदड़ क्यों रोरहे हैं।" चापलूसों ने कहा-" महाराज, यह कहते हैं कि आप के राज्य में और सभी सुखी हैं केवल हम गीदड़ ही भूखों मर रहे हैं।" यदि इनको कुछ खाने को दिला दिया जाय तो यह न रोयें।"राजा ने कहा—" अच्छा कितने रुपये में इनके खाने पीने का प्रबन्ध हो सकता है" चापलूसों ने कहा—"केवल पाँच हजार रुपये में।" राजा ने क-

हा—"ले लो कोष से रुपया और इनके खाने का ठीक प्रबन्ध करो यदि कल किसी को कुछ कष्ट रहेगा तो तुम लोग उत्तर दाता होगे।" चापलूसों ने रुपया लेकर परस्पर बाँट कर घर भेज दिया। दूसरे दिन जब सायंकाल को फिर गीदड़ बोलने लगे तो राजा ने सभासदों को बुलाकर पूछा—"अब यह क्यों रो रहे हैं ?" चापलूसों ने कहा—"पृथ्वीनाथ, आप की जय हो, हमने इनके भोजन का तो प्रबन्ध कर दिया परन्तु अब यह कहते हैं कि हम लोग जाड़े में जड़ा रहे हैं कुछ ओढ़ने के लिये चाहिये।" राजा ने कहा—"एक एक कम्मल सब गीदड़ों को देने में कुल कितना रुपया लगेगा ?" चापलूसों ने कहा—"महाराज केवल दश हजार" निदान चापलूसों को दश हजार रुपया फिर मिलगया। उसको सभों ने घर पहुँचा दिया। दूसरे दिन शाम को जब फिर गीदड़ बोलने लगे तो राजा ने फिर सबको बुलाकर पूँछा—"अब यह क्यों शोर मचा रहे हैं ?" चापलूसों ने उत्तर दिया—"महाराज, यह लोग कहते हैं खाने पहिनने को तो सब मिल गया परन्तु रहने के लिये घर भी तो चाहिये।" राजा ने कहा—"अच्छा इनके रहने के लिये घर बनवाने को २० हजार रुपये कोष से ले लो। रुपया लेकर फिर सबों ने घर भेज दिया। फिर शाम को स्वभावानुसार फिर गीदड़ों ने शोर मचाना आरम्भ किया। राजा ने फिर सबों को बुलाकर पूछा उन्होंने उत्तर दिया—"महाराज, आपने गीदड़ों के लिये बहुत किया। सब गीदड़ आप के अत्यन्त कृतज्ञ हैं अतएव आज से नित्य सायंकाल आप की जय मनाया करेंगे। आज भी जय मना रहे हैं।

आप ने देखा कि चापलूसी में पड़कर किस प्रकार धन का

दुरुपयोग किया गया। आजकल राजाओं की सभा में कितने ही ऐसे लोग रहते हैं जिनका काम केवल राजा की हाँ में हाँ मिलाना है। भला ऐसे सभासदों से राज्य की सुव्यवस्था की क्या आशा की जाय। तुलसी दास जी ने यथार्थ कहा है:—

सचिव वैद्य गुरु तीनि जो, प्रिय बोलैं भय आस।
राज, धर्म, तन तीन कर, होय वेगिही नास॥

—*—

७८—चापलूस मंत्री।

एक राजा का दीवान बड़ा चापलूस था। नित्यही राजाकी हाँ में हाँ मिलाया करता था। एक दिन राजा ने बैगन की तरकारी खाई। उन्हें बहुत रुचिकर जान पड़ी। दूसरे दिन दरबारमें कहने लगे-"बगन की तरकारी बड़ी अच्छी होती है। मंत्री ने कहा—"हाँ हुजूर। बगन देखने में भी बड़ा सुन्दर होता है और फिर रेचक भी होता है।" कुछ दिनों के पश्चात एक दिन राजा ने फिर बैगन की तरकारी खाई। उसदिन उन्हें नुकसान जान पड़ा। दसरे दिन दरबार में कहने लगे—" बैगन बड़ी खराब चीज़ है।" मंत्री ने कहा—"हाँ हुजूर, उसका रंग भी कैसा भद्दा काला सा होता है और पित्त को भी बढ़ाता है।" एक आदमी ने दोनों दिन की मंत्री की बातें सुनी थीं, उसने कहा—"मंत्री जी, उस दिन तो आपने बैगन की प्रशंसा के पुल बाँध दिये थे आज उसकी बुराई क्यों, करते हो?" मंत्री ने कहा-"हम बैगन के नौकर नहीं हैं हम तो राजा साहब के नौकर हैं"।

—*—

७९-योग्य मंत्री।

एक बार जब कि सिंह का मंत्री एक सुग्गा और हंस था एक ब्राह्मण जंगल में जा निकला। सिंह ने ब्राह्मण से ज्ञान सीखना चाहा। दोनों मंत्रियों ने कहा-"महाराज, आप ने बहुत अच्छा विचार किया है।" सिंह ने ब्राह्मण को ज्ञान की बातें बताने के लिये पास बुलाया। पहिले तो ब्राह्मण डरा किन्तु सुग्गा और हंस के कहने पर विश्वास करके सिंह के निकट गया। ब्राह्मण ने सिंह को बहुत सी ज्ञान की बातें बताईं। सिंह बहुत प्रसन्न हुआ। जब ब्राह्मण चलने लगा तो एक मंत्री ने कहा—"महाराज। ब्राह्मण को कुछ दक्षिणा दे दीजिए।" सिंहने बहुत से आभूषण जो कि मनुष्यों को मारने से उसको प्राप्त हुये थे ब्राह्मण को दिया। ब्राह्मण प्रसन्न चित्त अपने घर आया। कुछ दिनों के पश्चात् जब ब्राह्मण का सब धन समाप्त हो गया, उसने सोचा कि फिर चल कर सिंह को ज्ञान की बातें बतायें तो कुछ धन की प्राप्ति हो। ब्राह्मण सिंह के पास आया और पहिली बार की तरह फिर ज्ञान की बातें बताईं परन्तु उस समय सिंह के यहाँ सुग्गा और हंस मन्त्री न थे बल्कि कौआ और सियार थे। जब ब्राह्मण चलने लगा तो गीदड़ ने कहा—"देखिये महाराज इस ब्राह्मण का मांस बहुत अच्छा है आपही के योग्य है।" कौये ने कहा—"हाँ महाराज, जरा इस की तोंद तो देखिये, कितनी चर्बी बढ़ी है।" सिंह को अपने पहिले के मंत्री सुग्गा और हंस की बातें याद आ गईं और उसने ब्राह्मण से कहा—"पंडित जी, अबकी बार आप यही दक्षिणा समझें कि आप के प्राण बच गये कुछ मिलैगा नहीं,

यहां से जल्दी चले जाइये। क्या आपको ज्ञात न था कि:—

हंसा रहा सो मर गया, सुगना गयो पहार।
अब हमरे मंत्री भये, कौआ और सियार॥

———*———

८०-सत्संग

एक चोर के पाँच लड़के थे। वह चोर अपने लड़कों को उपदेश दिया करता था कि कभी मन्दिर में मत जाना, कभी सत्संग न करना और न कभी कोई कथा वार्त्ता सुनना। कुछ दिन के पश्चात् वह चोर मर गया। चोर के जेठे लड़के ने सोचा कि कहीं से कुछ चुराकर अपनी जीविका करनी चाहिये। इस विचार से वह चल पड़ा। रास्ते में कथा हो रही थी। लड़के ने सोचा पिता की आज्ञा है कि कभी कथा न सुनना। अतएव उसने दोनों कानों में थोड़ी २ रूई भर ली। वह ज्यों ही कथा के पास से जा रहा था अकस्मात उस के एक कान की रूई गिर गई। उसको कथा सुनाई पड़ने लगी। कथा में यह प्रसंग था कि देवताओं की परछाईं नहीं होती और न उनके पैरही पृथ्वी पर लगते हैं। चोर के लड़के ने भी यह सुन लिया। उसने जाकर राजा के यहाँ चोरी की और बहुत सा माल टाल चुरा लाया। प्रातः काल राजा ने चोर के पकड़ने की आज्ञा दी परन्तु चोर को कोई न पा सका। अन्त में राजा के मंत्री को इन्हीं चोर के पांचों लड़कों पर सन्देह हुआ। मंत्री रात के समय कालीका स्वाँग बना कर चोरों के घर पर आया और कहने लगा—

"तुम लोग मन माना माल नित्यही चुराते हो परन्तु काली माई की भेंट नहीं देते हो। आज हमारी सब भेंट चुका दो नहीं तो अभी नाश कर दूँगी।" चोर के सब लड़के मारे डर के काँपने लगे। इतने में बड़े लड़के के मन में यह बात आई कि देखें तो सही जो कथा में सुना था सत्य है कि नहीं। धैर्य धर कर बाहर आकर देखने लगा तो चन्द्रमा के प्रकाश में काली माई की परछाईं साफ दिखाई देती थी और उनके दोनों पैर भी पृथ्वी से लगे थे। चोर के बड़े लड़के ने समझ लिया कि यह असली देवता नहीं है। एक लाठी लेकर मारने को दौड़ा। काली माई भाग गईं। तब उस चोर ने सोचा कि कथा की एक बात ने मेरा धन और प्राण बचाया यदि हमलोग नित्य ही कथा सुनते तो न जाने क्या फल होता। उसी दिन से सभों ने चोरी कराना छोड़ दिया और सत्संग करके संसार सागर से तर गये।

महानुभाव संसर्गः कस्य नोन्नति कारकः।
पद्म पत्रास्थितं वारि धत्ते मुक्ता फलश्रियम्॥

अर्थात् महान पुरुषों का संग किसकी उन्नति नहीं करता? कमल के पत्ते पर स्थित पानी की बूँद भी मोती की शोभा पाती है।

जो जैसी संगति करी, तेहिं तैसो फल दीन।
कदली सीप भुजंग मुख, एक बूँद गुण तीन॥
जल जिमि निर्मल मधुर मधु, करत ग्लानि को अन्त।
पान किये देखा छुये, हरष देत तिमि सन्त।
तुलसी लोहा काठ सँग, चलत फिरत जल माहिं।
बड़े न बूड़न देत हैं, जाकी पकरैं बाहिं॥
नीचहँ उत्तम संग मिलि, उत्तम ही ह्वै जाय।

गंग संग मिलि झीलहू, गंगोदक के भाय।
जाहि बड़ाई चाहिये, तजै न उत्तम साथ।
ज्यों पलाश संग पान के, पहुँचै राजा पास ॥
भले नरन के संगते, नीच ऊंच पद पाय।
जिमि पिपिलिका पुष्प संग, ईश शीश चढ़ि जाय ॥

सवैया।

ज्ञान बढ़ै गुणवान की संगति, ध्यान बढ़ै तपसी संग कीने।
मोह बढ़ै परिवार की संगति, लोभ बढ़ै धन में चित दीने।
क्रोध बढ़ै नर मूढ़की संगति, काम बढ़ै तिय के संग कीने।
बुद्धि विवेक विचार बढ़ै कवि दीन सुसज्जन संगति कीने।

दोहा,

सात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिय तुला इक संग।
तुलै न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग ॥

—※—

८१-कुसंगति का दुष्परिणाम

एक कौये और हंस में परस्पर मित्रता हो गई। कौआ और हंस दोनों साथ साथ रहने लगे। एक दिन हंस कौये के घर पर गया, कौवे का घर एक बबूल के ऊपर था, आस पास मैले की दुर्गन्ध आ रही थी। हंस बेचारा पहुँचते ही घबरा गया और कहने लगा कि मैं तो ऐसी मैली जगह में पल भर भी नहीं रह सकता। कौये ने कहा—"एक मेरा और निवासस्थान है चलिये

वहाँ आप को लिवा चलें।" दोनों उड़कर एक राजा की वाटिका में पहुँचे। जिस वृक्ष के नीचे राजा साहब वायु सेवन कर रहे थे, उसी वृक्ष पर दोनों बैठ गये। कौवे ने अपने स्वभाव के अनुसार राजा के ऊपर बीट कर दिया। राजा ने ऊपर पक्षियों को देखकर बहेलिये को संकेत किया कि इन दुष्ट पक्षियों को बन्दूक से मार डालो। बहेलिये ने गोली चलाई। कौवा तो उड़ गया, बेचारे हंस पर आफत आई। हंस जब मरने लगा तो उसने कहा—"

नाहं काको हतो राजन् हंसोहं निर्मले जले।
नीच संग प्रसादेन जातं जन्म निरर्थकम् ॥

अर्थात् हे राजन्! मैं कौवा नहीं हूँ, मैं तो निर्मल जल में रहने वाला हंस हू। नीच के संग के प्रसाद से मेरा जीवन व्यर्थ ही नष्ट गया।" और भी:—

बसि कुसंग चाहत कुशल, रहिमन यह जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावण बस्यो परोस।

—*—

८२—कुसंगति से हानि।

हकीम अफ़लातूं अपने लड़के को बुरे लड़कों के साथ बैठने से मना किया करता था, क्योंकि उसको संगति के प्रभाव का सदैव ध्यान रहता था। एक दिन हकीम ने अपने लड़के को किसी बदचलन आदमी से बात चीत करते देखलिया। हकीम ने लड़के को एकान्त में बुला कर कहा—"मेरे प्यारे बेटे! फिर कभी भूल कर भी ऐसा काम मत करना, क्योंकि ऐसे आदमियों के

साथ बात चीत करने ही से इज्जत में बट्टा लगता है।" लड़के ने कहा—"पिता जी! आप का कहना ठीक है परन्तु मैं इतना मूर्ख नहीं हूँ कि मुझे ऐसे आदमियों से कुछ भी हानि पहुंचे।" हकीम इस बात को सुन कर चुप हो रहा। कुछ देर के बाद हकीम ने अपनी अँगीठी से एक कोयला निकाल कर लड़के को दिया और कहा—"यह कोयला गर्म नहीं है इसलिये तुम्हारा हाथ नहीं जलेगा। तुम इसको लिये रहो।" पिता की आज्ञा मान कर लड़के ने कोयला हाथ में ले लिया। थोड़ी देर में लड़के का हाथ भी काला हो गया और कपड़ों में भी काले २ दाग़ पड़ गये। लड़के ने कहा—"पिता जी! मैं कहाँ तक इसकी स्याही से बचूंगा कहीं न कहीं दाग लगही जाता है।" हकीम ने हंस कर कहा-"प्यारे बेटे! यद्यपि कोयला गर्म नहीं है उससे तुम जल नहीं सकते, फिर भी तुम्हारे हाथ पाँव तो अवश्य ही काले हो जायेंगे, ठीक इसी प्रकार बुरे आदमियों की संगति से अगर तुम अपनी चतुराई से हानि नहीं भी उठाओगे तो भी लोगों में बदनाम अवश्य ही हो जाओगे। अतएव बुरे मनुष्यों के साथ उठना बैठना और बात चीत भी करना ठीक नहीं है।"

—*—

८३-रण्डीबाजों को उपदेश।

एक महाशय रण्डी के पञ्जे में पड़े थे। जो कुछ कमाते अपनी जोरू को न देते बल्कि उसी वेश्या की नज़र कर देते। वेश्या भी धन के लोभ से उन पर बहुत प्रेम जनाती थी। एक दिन महाशय

जी को रुपयों की आवश्यकता पड़ी तो वेश्या से माँगा। उसने साफ इन्कार कर दिया। महाशय जी को बड़ी ग्लानि हुई। सब से रण्डी की शिकायत करते फिरते थे। एक बुद्धिमान ने उनसे कहा—"क्या आपको नहीं मालूम था कि जोड़ने वाली तो जोरू होती है वह तो आश्ना है। आश्ना से भी आप आस रखते हैं। महाशय जी चुप रह गये। भर्तृहरि जी ने कहा है।

> वेश्या सो मदन ज्वाला, रूपेन्धन समेधिता।
> कामि भिर्यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानिच।

अर्थात् वेश्या मदन की ज्वाला है, जिसमें रूप रूपी इन्धन जलता है। कामी लोग उस अग्नि में अपनी जवानी और सम्पत्ति की आहुति देते हैं।

—०—

८४—वीर्य का प्रभाव।

एक राजा अपने मंत्री और गुलाम को साथ लेकर शिकार खेलने वन में गया वहाँ पर शिकार खेलते २ तीनों अलग हो गये। राजा मंत्री को खोजता हुआ एक सड़क के किनारे पर पहुँचा, वहाँ पर एक अन्धा बैठा था। राजा ने उससे कहा—"[illegible] जी महाराज! इधर से अभी कोई गया है। अन्धे ने कहा—"कोई नहीं।" थोड़ी देर के पश्चात् मंत्री भी वहीं आ निकला उसने अंधे से पूछा—"क्यों सूरदास जी, इधर से अभी कोई गया है? अन्धे ने कहा—"मंत्री जी! अभी थोड़ी ही देर हुई राजा साहब इधर से गये हैं" मंत्री के चले जाने के थोड़ी ही देर बाद

गुलाम भी उधर ही आ निकला, उसने अंधे से पूछा—"क्यों बे अन्धे, इधर से कोई गया है।" अन्धे ने कहा-"हाँ बे गुलाम! राजा और मंत्री दोनों इधर से गये हैं"। आगे जाकर राजा, मंत्री और गुलाम तीनों इकट्ठा हो गये। तब तीनों ने परस्पर विचार किया कि बिना बताये उस अंधे ने हम लोगों को क्यों कर पहचान लिया, चलकर उससे पूछें। वह तीनों लौटकर अंधे से आकर पूछने लगे। अन्धे ने कहा—"हमने तुम लोगों की बोली से पहचान लिया, जो जितना ही कुलीन होता है वह औरों के साथ उतना ही शिष्टता का व्यवहार करता है।"राजा ने मंत्री से कहा—"यह तो बड़ा बुद्धिमान है, इसको अपने राज्य में ले चलना चाहिये समय पर बड़ा काम देगा।"मंत्री अंधे को घोड़े पर सवार करके ले आया। राजा ने अंधे के लिये एक कमरा दिया और आधा सेर आटा, आध पाव दाल, आधी छटाँक घी रोज़ाना लगा दिया। एक दिन एक सौदागर मोतियों की एक जोड़ी बेचने को आया। राजा ने कहा-"पहले अंधे को दिखाओ यदि वह अच्छा बताये तो मोती लिये जायँ।"अन्धे ने मोतियों को हाथ में लेकर कहा—"मोती तो बहुत अच्छे हैं और दोनों एक ही मूल्य के हैं परन्तु एक मोती के भीतर बालू भरी है। जब अन्धे से पूछा गया कि यह बात तुमने कैसे जानी तो उसने कहा—" जान पड़ता है कि जिस समय सीप के मुख में स्वाती की बूँद पड़ी, बड़े जोर को आँधी आई थी जिससे उस में बालू (रेत) भी जा पड़ी, इसी कारण से दूसरा मोती मुझे भारी जान पड़ा है।"मोती में जब छेद करके देखा गया तो यह बात सच पाई गयी। राजा ने अंधे के ऊपर प्रसन्न होकर उसको आध पाव तरकारी भी रोज लगा दिया।

कुछ दिनों के पीछे घोड़ों का एक सौदागर घोड़ा बेचने को लाया। राजा ने कहा—"पहले अंधे से घोड़े के गुणों की परीक्षा कराओ तब घोड़ा लिया जायगा जब घोड़ा अंधे के पास लोग ले गये तो उसने घोड़े के ऊपर हाथ फेर कर कहा—"घोड़ा तो अवश्य अच्छा है परन्तु जोड़ा पैदा हुआ है।" राजा ने अंधे से पूछा—"तुम को यह कैसे ज्ञात हुआ ?" अंधे ने कहा-"इसकी वक्षी चौड़ी है क्यों कि जिस ओर दोनों मिले रहते हैं उस ओर का भाग चौड़ा हो जाता है।" राजा ने प्रसन्न होकर पाव भर दूध भी रोज लगा दिया। एक दिन राजा ने अंधे से पूछा—"मैं किसका लड़का हूँ ?" अंधे ने कहा--"तुम बनिया के वीर्य से हो।" राजा ने कहा--"यह तुमको कैसे ज्ञात हुआ ?" अंधे ने कहा--"आप के व्यवहार से। क्यों कि यदि कोई क्षत्री के वीर्य से होता तो ऐसी २ गुप्त बातें बतलाने के उपलक्ष में दो चार ग्राम दे देता परन्तु आपने वही बनिया वाला हिसाब रक्खा कभी आधपाव तरकारी कभी पाव भर दूध।" राजा सुनकर चुप हो गये।

—*—

८५-बनने से हानि।

एक गुरु अपने चेले को साथ लेकर देशाटन करते थे। रास्ते में गुरु जी ने चेले से कहा—"देखो बच्चा! कुछ बनना नहीं, नहीं तो अच्छा न होगा"। चेले ने कहा—"बहुत अच्छा महाराज"। रास्ते में चलते २ एक राजा का बाग मिला जिसके बीच में एक सुन्दर भवन बना था। गुरु और चेले दोनों उसी

भवन में चले गये। एक कमरे में गुरुजी सो गये और दूसरे कमरे में उनका चेला सोया। शामको जब राजा हवा खाने आये तो कोठी में दो साधुओं को सोया पाया। पहले राजा चेले के पास गये। उसको जगाकर पूँछा—"तू कौन है ?" चेलेने कहा—" महाराज, मैं तो साधु हूँ "। राजा के सिपाहियों ने कहा—" तू कैसा मूर्ख है जो महाराज की पलँग पर सो गया"। दो चार थप्पड़ मार कर सिपाहियों ने उसको बाहर कर दिया। फिर सिपाही लोग गुरु के पास पहुंचे। उनको हिला कर जगाया। गुरु जी आँख मीचते उठ बैठे और कुछ भी न बोले। राजा ने कहा-" यह महातमा जान पड़ता है इसको जाने दो "। जब कुछ दूर चल कर गुरु चेला फिर मिले तो चेले ने गुरु से कहा—"महाराज! मुझ पर खूब मार पड़ी "। गुरुने कहा—"तो तू कुछ बना होगा।" चेले ने कहा—"महाराज, मैं तो कुछ बना वना नहीं, केवल इतना ही कहा था कि मैं साधु हूँ।" गुरु ने कहा-"मैं ने तो तुझे पहले ही मना कर दिया था कि कुछ बनना नहीं, नहीं तो अच्छा न होगा "। तू साधु तो बना न, तभी तो मार खाई; देख, हमतो कुछ नहीं बने इसी लिए बच गये।"

यह तो आजकल का फैशन हो रहा है। लोग बनने की बहुत कोशिश करते हैं। घर में एक कौड़ी भी न हो पर ठाठ बाट ऐसा हो कि लोग लखपती ही समझें, तभी तो लोग दर दर धक्के खाते हैं।

८६-अपनी करनी पार उतरनी।

किसी ब्राह्मण की बहू अत्यन्त ही झगड़ालू तथा दुष्टा थी। वह अपनी बुड्ढी सास के साथ कभी अच्छा व्यवहार न करती थी। स्वयं तो चैनसे मालपुये उड़ाती परन्तु अपनी सास को सड़े गले अनाज और भूसी की रोटी और दाल का पानी मिट्टी के कोसे में खाने को देती। उस बहू के एक लड़का भी था, उसका ब्याह हो गया और उसकी स्त्री घर में आई। बहू यद्यपि अपनी ... कुछ भी न मानती थी परन्तु उस लड़के की स्त्री अर्थात् बहू को बड़े प्यार से रखती थी। जब से नई बहू आई तब से बहूजी नई बहू के ही हाथ से अपनी बुड्ढी को खाना भेजा करतीं। नई बहू जब बुढ़िया को खाना खिला चुकती तो कोसे को एक जगह रख देती। इस प्रकार थोड़े ही दिनों में बहुत से कोसे एकत्रित हो गये। एक दिन नई बहू की सास ने (अर्थात् बहूने) उन कोसों को देख कर नई बहू से पूछा- यह कोसे क्यों इकट्ठा करती जाती हो, इनको फोड़ती क्यों नहीं जाती? व्यर्थ ही में पड़े रास्ता रोके हैं।" नई बहू ने उत्तर दिया—"जब आप वृद्धी हो जायेंगी और मैं घर की स्वामिनी हूँगी तो आप को किस में खाना परसूँगी। इतने कोसे कहाँ से मिलेंगे। इसीलिये आप के निमित्त कोसे इकट्ठा करती जाती हूँ"। इस बात को सुन कर बहू जी की आँखें खुल गईं और सोचा कि सत्य है जो जैसा दूसरों के साथ व्यवहार करता है लोग भी उसके साथ वैसा ही व्यवहार करते हैं। उसी दिन से बहू ने अपना दुष्ट स्वभाव छोड़ दिया।

जो पार उतारै औरों को उसकी भी पार उतरती है।
जो डुबा दे औरों को उसकी भी डुबकों डुबकों करती है।
शमशेर-बबर बन्दूक सिना और नश्तर तीर नहरनी है।
या जैसी जैसी करनी है फिर वैसी पार उतरनी है॥

—*—

८७-बिना बिचारे कोई काम नहीं करना चाहिये।

देवशर्मा नाम का ब्राह्मण किसी गाँव में रहता था। जिस दिन देवशर्मा के पुत्र हुआ उसी दिन एक नेवले ने भी बच्चा दिया। देवशर्मा की स्त्री अपने बच्चे का साथी समझकर उस नेवले के बच्चे को प्यार करती थी और उसे दूध भी पीने के लिये दे देती थी, परन्तु यह सोचा करती थी कि ऐसा न हो यह नेवला कभी मेरे लड़के को हानि पहुँचावे। एक दिन ब्राह्मणी ने अपने लड़के को सेज पर सुलाकर पति से कहा—"मैं जल लेनै जाती हूँ आप इस नेवले से पुत्र की रक्षा कीजियेगा।" ब्राह्मणी जल लेने को चली गयी और ब्राह्मण भी थोड़ी देर पीछे भिक्षा मांगने के लिये चला गया। उसी समय दैवयोग से एक काला सांप बिलसे निकला। नेवले ने घर सूना देखा अतएव लड़के की रक्षा करने के लिये उसने सांप को खण्ड २ कर दिया। नेवला अपनी परोपकारिता प्रगट करने के लिये ब्राह्मणी की राह में बैठ गया। जब ब्राह्मणी जल लेकर लौटी तो उसने नेवले का मुँह रक्त से रंगा

हुआ पाया। उसको सन्देह हुआ कि हो न हो इस नेवले ने मेरे पुत्र को मार डाला। ब्राह्मणी ने बिना समझे बूझे पानी का घड़ा नेवले के ऊपर दे मारा। नेवला वहीं दम तोड़ कर रह गया। ब्राह्मणी द्वार पर बैठकर रोने लगी। ब्राह्मण भिक्षा माँग कर आया तो ब्राह्मणी से रोने का कारण पूछा। ब्राह्मणी ने कहा—"आप भी मेरी अनुपस्थिति में लड़के को छोड़कर चलेगये दुष्ट नेवले ने लड़के को मारडाला।" ब्राह्मण ने कहा—"अब होनी हो गई, रोने से क्या लाभ, चलो उसकी अन्तिम क्रिया करदें।" दोनों ने घर में जाकर देखा कि लड़का सेज पर सोता है और एक सांप मरा हुआ पड़ा है। तब उन्होंने समझा कि मेरे बच्चे को इस सर्प से उस नेवले ने ही बचाया था। अब दोनों नेवले के वध पर पश्चाताप करने लगे। परन्तु अब चिड़िया उड़ गयी थी। ✓

अपरीक्ष्य न कर्तव्यं कर्तव्यं सुपरीक्षितम्।
पश्चाद्भवति संतापो ब्राह्मण्यां नकुलार्थतः॥

और भी कहा है:—

बिना बिचारे जो करै, सो पीछे पछिताय।
काम बिगारै आपनो, जग में होय हँसाय।
जग में होय हँसाय चित्त में चैन न आवै
खान पान रस राग एकहू मनहि न भावे।
कह गिरधर कविराय, नित्त चिन्ता तन जारे।
खटकत है जिय माँहि किये जो बिना बिचारे॥

——*——

८८-बिना परीक्षा के विवाह ।

एक सेठ ने अपनी सात वर्ष की लड़की के विवाह के निमित्त वर खोजने को एक नाई को रवाना किया। नाई एक सेठ से कुछ लेकर दोही तीन दिन में लौट आया। लालाजी ने पूँछा —"नाऊ ठाकुर, विवाह ठीक हो गया"। नाई ने कहा—"हाँ लालाजी हम सब ठीक कर आये।" लालाजी ने कहा-"वर कैसा है ?" नाई ने कहा—"ऐसा सुन्दर है कि आपने वैसा वर कभी देखा ही न होगा। लालाजीने पूछा-"उमर (आयु) क्या होगी?" नाई ने कहा—"बीस बीस बीस"। लालाजी ने कहा—"और धन सम्पत्ति ?" नाई ने उत्तर दिया—"धन तो अधाधुँध है, कोई इधर उठाये जाता है कोई उधर पर वह कुछ देखतेही नहीं।" लालाजी ने कहा-"वर का स्वभाव कैसा है ?" नाईने कहा-" लालाजी, ऐसा सरल स्वभाव है कि कोई कितना ही किसी की निंदा करे वह सुनतेही नहीं"। लालाजी ने कहा-"भलमंसी कैसी है ?" नाई ने कहा-"बड़े आदमियों की भलमंसी का क्या कहना, सदा चार आदमियों के संग चलते हैं"। लालाजी बहुत प्रसन्न हुये और नाई को ऐसा योग्य वर खोजने के लिये दुशाला पारितोषिक (इनाम) में दिया। बीच की और सब रीतें भी नाऊ ठाकुर करा आये। जब बारात आई और विवाह के लिये वर मंडप में बुलाया गया तो लालाजी ने नाई से कहा-'यह वर कैसा? तुमतो कहते थे कि बड़ा सुन्दर है"। नाई ने कहा-"मैंने तो कहा था कि वैसा सुन्दर वर आपने न देखा होगा"। फिर लालाजी ने पूछा-"यह तो बुड्ढा है तुमतो कहते थे बीस वर्ष का है"

नाई ने कहा-"आप न समझें तो मेरा क्या अपराध मैं ने तो बीस बीस बीसवर्ष कहा था, क्या ६० वर्ष से अधिक का है ?" पुनः लाला जी ने कहा-"यह तो अंधा भी है।" नाई ने कहा-"लाला जी आप मेरा ही दोष देते हैं, मैंने कहा था न कि कोई इधर लिये जाता है कोई उधर पर वह देखते ही नहीं"। जब पुरोहित ने वर से कहा-"हाथ में कुश अक्षत लेकर संकल्प करो।" तो वर ने सुना ही नहीं तब तो लाला जी ने फिर नाई से कहा-"लड़का तो बहरा भी है।" नाई ने कहा—"सरकार, मैंने तो पहले ही बता दिया था कि कोई चाहे कितनी ही निन्दा करे वह सुनतेही नहीं"। फिर पुरोहित ने वर से कहा—"आप उस पाटे पर जाइये।" तबतो चार आदमियों ने उनको उठा कर उस पाटे पर बैठाया, इस पर लाला जी बिगड़ कर नाई से कहने लगे-"यह लड़का तो लँगड़ा भी है"। नाई ने कहा-"आप अपनी समझ को दोष क्यों नहीं देते ? मैंने तो साफ साफ कह दिया था कि सदा चार आदमियों के संग चलते हैं।" लाला जी चुप हो रहे। जैसा किया वैसा पाया।

पाठको, नाई ब्राह्मणों अथवा दूसरों के भरोसे पर विवाह करनेका यही फल होता है। भले मानुषों को उचित है कि स्वयं देख कर विवाह नियत करें नहीं तो वही लाला जी की नाई दामाद मिलेंगे।

लड़कियाँ बोल जो नहीं सकती।
तो बला में उन्हें फँसायें क्यों॥
भेज कर के बुरी जगह टीका।
हम उन्हें धूल में मिलायें क्यों॥

८९-दो जोरू वाला।

एक सेठ ने अपने दो व्याह किये थे। एक दिन उनके घर में चोर घुसे। सेठ जी की पहिली स्त्री नीचे सोती थी दूसरी कोठे पर। जब रात को सेठ जी पहिले स्त्री के पास से उठ कर दूसरे स्त्री के पास जाने लगे तो पहिली ने सेठजी का पैर पकड़ा और दूसरी ने चोटी। एक नीचे की ओर खींचती दूसरी ऊपर की ओर। बेचारे सेठ जी रातभर इसी खींचा खींची में पड़रहे। चोर भी चोरी करना भूल कर एक कोने में बैठे सब दृश्य देख रहे थे। प्रातः काल चोर पकड़ लिये गये। जब न्यायालय में चोरों की पेशी हुई तो न्यायाधीश ने सेठ जी से पूँछा—"इन चोरों को कौन सा दण्ड दिया जाय ?" सेठ जी ने कहा—"हुजूर, इनके दो दो व्याह कर दिये जाँय।" चोरों ने हाथ जोड़ कर प्रार्थना की—"सरकार चाहे फाँसी पर चढ़ा दीजिये हमलोगों को स्वीकार है परन्तु हमारे दो दो व्याह न कीजिए"। न्यायाधीश ने कहा—"क्यों ?" चोरों ने कहा—"सेठ जी से पूछिये।"

इधर उधर दो कर्कशा, धर कर खींचे कान।
दो जोरू वाला करे, हाय हाय हैरान ॥

—*—

९०—अनपढ़ बहू।

एक अनपढ़ बहू ने जोड़ जोड़ कर एक सौ रुपये इकट्ठा कर लिये। गिनना तो उसे आता ही न था इसलिये वह रुपयों का

जोड़ा लगाया करती थी, जब सब जोड़े हो जाते तो समझती कि मेरे रुपये पूरे हैं, उसे तो केवल जोड़े से काम था यह न जानती थी कि जोड़े गिनती में कितने हैं। एक दिन एक चालाक स्त्री ने उसे जोड़ा लगाते देख लिया। दूसरे दिन से वह स्त्री रोज एक एक जोड़ा चुरा लेती। जब बहू रुपयों के जोड़े लगाती तो सब जोड़े जोड़े ही निकलते, वह समझती थी कि मेरे रुपये पूरे हैं। एक दिन वह चोर स्त्री जल्दी में जोड़ा न चुरा सकी, केवल एक ही रुपया उसके हाथ लगा। उस दिन जब बहू ने जोड़े लगाये तो एक रुपया बच गया। बहू ने रुपये अपने सास के पास लेजाकर कहा—"सास जी, आज मेरे रुपयों में किसने एक रुपया मिला दिया।" सास ने गिनकर देखा तो १००) में से केवल २५) बाकी रह गये थे।

आप लोग सोचें कि जिनके हाथ में घर का सारा हिसाब किताब है उनको मूर्ख रखने से कितनी बड़ी हानि हो सकती है। स्त्रियों को मूर्ख रखना गार्हस्थ सुख से वञ्चित होना है।

—— * ——

९१—अर्ध शिक्षित बीबी।

किसी गाँव में एक लाला जी रहते थे। लाला जी नई रोशनी के आदमी थे, बी. ए एल. एल बी. पास थे। यद्यपि उनकी हार्दिक अभिलाषा यह थी कि उन्हें शिक्षित बीबी मिले परन्तु दुर्भाग्य वश उन्हें एक ऐसी बीबी मिली जो केवल हिन्दी के अक्षर पहिचानती थी। लाला जी उदार प्रकृति के मनुष्य थे सभा सोसाइटियों

में चन्दा बराबर दिया करते थे। जमा खर्च का हिसाब मिलाने के लिये चन्दा रोज़नामचे में इस प्रकार लिख देते:—४), चन्दा २) चन्दा देवयोग से उनका रोज़नामचा उनकी बीबी के हाथ में पड़ गया। नीम हकीम खतरये जान उनकी बीबी ने टटोल २ के चन्दा पढ़ा तो यही समझा कि बाजार में रहने वाली किसी रण्डी का नाम चन्दा है लाला जी उसी के जाल में पड़े हैं कभी ४) कभी २) दे आते हैं। आप जानते हैं कि पहले तो स्त्रियाँ किसी भी बात पर सन्देह नहीं करतीं और यदि उनको सन्देह हो गया तो ब्रह्मा भी उनके दिल से वह सन्देह नहीं दूर कर सकते। उसी दिन से बीबी साहिबा का मिजाज़ बिगड़ा। एक दिन लाला जी ने बीबी से पान माँगा। बीबी ने कह दिया—"क्यों नहीं उसी चन्दा से माँगते जिसको रोकड़ सौंप आते हो?" लाला साहब तो वक्का से रह गये, कुछ भी न समझे कि क्या बात है। अन्त को लाला जी ने बहुत हठ किया और बार बार पूछा तो, उनकी बीबी ने कहा—"क्या आप जानते हैं कि मैं जानती ही नहीं मुझे आप की सब करतूतों का पता है, अभी तो मैं जिन्दा हूँ फिर क्यों आप उस 'चन्दा' नामी राँड़ के पास जाते हैं?"

हमारे जीते जी साहब रहो तुम पास गैरों के।
हम अपनी आँख से देखें, ये मर जाने की बातें हैं।"

लाला जी समझ गये कि यह स्त्री का नहीं किन्तु उस अधूरी शिक्षा का फल है जो उसको दी गयी है।

बी. ए. गृह स्वामी विदित हैं किन्तु क्या हैं स्वामिनी?
कैसे कहें हा! हैं अशिक्षा रूपिणी वे भामिनी।

अत्युक्ति क्या दिन रात का सा भेद जो इसको कहें।
दाम्पत्य भाव भला हमारे धाम में कैसे रहें॥

—*—

१२-अत्यन्त दब्बू रहने से हानि।

एक गड़रिये को भेंड चराते हुये किसी जंगल में एक सिंह का बच्चा मिलगया गड़रिया उसे उठा लाया और अपनी भेंड़ों के साथ कर दिया। वह सिंह का बच्चा भेंड़ों में रहने लगा। जिधर सब भेड़ें जातीं उधर ही वह भी जाता। उन्हीं की तरह आर्त्त स्वर से मेंमें करता। जब कभी गड़रिया डाँट देता तो भेंड़ों की नाईं लौट आता। कहने का तात्पर्य यह कि वह भी भेंड़ बना हुआ था। एक दिन वह गड़रिया किसी जंगल में अपनी भेंड़ें चरा रहा था इतने में एक बलवान सिंह दहाड़ता हुआ जंगल से आ निकला। सिंह का शब्द सुनकर सभी भेंड़ भग खड़ी हुईं; वह सिंह का बच्चा भी उन्हीं के साथ भगा। गड़रिया डर के मारे पेड़ पर चढ़ गया। सिंह का बच्चा भगा जा रहा था कि रास्ते में एक जलाशय पड़ा; सिंह के बच्चे ने उसमें अपना रूप देखा। उधर से जंगली सिंह भी दूसरे किनारे पर दहाड़ता हुआ आ पहुँचा। सिंह के बच्चे ने जंगली सिंह की परछाईं जल में देखकर सोचा—"मैं भागता क्यों हूँ। जो वह है वही मैं हूँ। बस" वही मैं हूँ " के भाव ने उसके शरीर में सिंह का सा बल भर दिया। वह गरजने लगा। जंगली सिंह यह समझ कर कि यह भेंड़ो का नहीं किन्तु सिंहों का झुण्ड है चुप

चाप जंगल को लौट गया। इधर सिंह के बच्चे ने अपने को सिंह समझा फिर तो गड़रिया भी जिसके एक संकेत पर वह सिंह का बच्चा भेंड़ की नाईं खड़ा हो जाता था उससे डरने लगा।

जब तक मनुष्य अपने अधिकारों को नहीं समझता वह नीचों से भी डरता रहता है। जो जाति अपने आत्माभिमान को खो चुकी है वह जीवित नहीं रह सकती—

जो जाति अपने पूर्वजों की कीर्ति को रखती नहीं।
वह जाति जीवित जातियों में रह कभी सकती नहीं॥
जिसको न निज गौरव तथा निजदेश का अभिमान है।
वह नर नहीं नर पशुनिरा है, और मृतक समान है॥

हौसिले और दब दबे वाला।
क्या नहीं है दबंग बन जाता॥
हम किसी की न दाब में आयें।
दिल दबे कौन दब नहीं जाता॥

——*——

९३-बुरे की खोज।

किसी साधु के पास एक मनुष्य धर्मोपदेश लेने गया। महात्मा ने उससे कहा—"जाओ, सब से पहिले संसार में जो सब से बुरी वस्तु हो उसे लाओ तो मैं तुमको धर्मदीक्षा दूँगा" वह मनुष्य उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर बुरी वस्तु की खोज में निकला। कुछ दूर गया था कि उसने मैला (पाखाना भृष्टा)

पड़ा देखा उसने अपने दिल में विचारा क्या इससे भी बुरी वस्तु संसार में हो सकती है उसको देखते ही मनुष्य के कर देता है। ऐसा विचार कर मैले को उठाना चाहा। इस पर मैला हट गया और बोला—"महाराज. बस कोजिए। प्रथमतः मैं उन अमिरती और लड्डुओं के रूप में था उसको सृष्टि शिरोमणि मनुष्य तो क्या देवता भी खानेको तरसते थे, तुम मनुष्यों ने ही छूकर मेरी यह गति की है। एक बार छूने से तो इस फल को पहुँचा हूँ दूसरी बार छूकर न जाने क्या बना दोगे।" इस बात को सुन कर उस के ज्ञान के चक्षु खुल गये। महात्मा के पास जाकर हाथ जोड़ कर उसने कहा—"

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न देखा कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसा बुरा न कोय ॥

९४-अत्याचार किस प्रकार बढ़ता है।

एक बार नोशेरवाँ बादशाह ने एक गाँव के समीप डेरा डाला। कबाब के लिये नमक न था। एक नौकर को बाज़ार से नमक लाने को भेजा। जब नौकर जाने लगा तो नौशेरवाँ ने कहा—"देखो नमक का दाम दे देना नहीं तो ऐसा न हो कि मुल्क (देश) बरबाद हो जाये।" नौकर ने हाथ बाँध कर कहा—"बादशाह सलामत, एक पैसे के नमक का दाम न देने से मुल्क क्यों कर बरबाद हो सकता है?"। बादशाह ने कहा—'

राजा अन्डे के लिए, करे जो अत्याचार।
तो फिर वाके लश्करी, मारैं मुर्ग हजार।

यदि मैं आज एक पैसे के नमक का दाम न दूँ तो कल मेरे लश्कर के लोग मेरे नाम पर सैंकड़ों मन नमक बे दाम के लायेंगे। पंहिले दुनियां में अत्याचार बहुत कम था परन्तु यों ही होते होते अब दुनियां अत्याचार से परिपूर्ण हो गई।"

—*—

९५-यह रास्ता बुरा निकला।

एक बनिया रात को चारपाइ पर पड़ा हुआ गहरी नींद में ग़ाफ़िल सो रहा था। एक चूहा उसके ऊपर से एक ओर से दूसरी ओर को चला गया। चूहे के चलने से बनिया चौंक पड़ा और चिल्ला कर ज़ोर ज़ोर से रोने लगा। रोने की आवाज़ सुन कर घर के सब लोग घबरा के दौड़े। सबों ने रोने का कारण पूछा बनिये ने कहा-"मेरी छाती पर से एक चूहा इस तरफ से उस तरफ़ चला गया अब मैं इस घर में नहीं रह सकता।" सबों ने कहा--"चूहा चला गया तो बला से, रोते क्यों हो ?" बनिये ने कहा--"जा तन लगे वही तन जाने दूजा क्या जाने रे भाई ! मैं चूहे के जाने पर नहीं रोता हूँ, रोना तो इस लिये है कि यह रास्ता बुरा निकला। आज तो चूहा ही गया है कल को साँप चला जायगा तो मैं कैसे जिऊँगा।"

बुराई को पहिली ही बार रोकना चाहिये नहीं तो वह बुराई सर्वदा के लिये अपना घर कर लेती है।

—*—

९६-रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिये डारि।

योरोप में प्राचीन काल में इस्हाक़ न्यूटन बहुत बड़ा विद्वान् हो गया है, उसने दो बिल्लियाँ पाल रक्खी थीं एक छोटी एक बड़ी। जब इस्हाक़ सोने जाता तो किवाड़ को धीरे से भिड़ा देता परन्तु जंज़ीर न चढ़ाता जिससे बिल्लियाँ रात को घूम कर आतीं तो केवाड़ खोल कर कमरे में चली जातीं। बिल्लियाँ अन्दर चली तो जाती थीं परन्तु किवाड़ बन्द न कर सकती थीं इस कारण रात को जड़ाया करती थीं। न्यूटन ने सोचा प्रत्येक किवाड़ में एक एक छिद्र (छेद) करादूँ—छोटी बिल्ली के लिये छोटा और बड़ी बिल्ली के लिये बड़ा छेद हो। दूसरे दिन बढ़ई को बुला कर कहा—"सुनो जी, मेरी बिल्लियाँ रात को किवाड़ खुले रह जाने से जड़ाया करती हैं और मैं किवाड़ इस कारण बन्द नहीं करता कि न जाने कब घूम कर कमरे में आवें। इस लिये एक किवाड़ में छोटी बिल्ली के लिये छोटा छेद और दूसरे किवाड़ में बड़ी बिल्ली के लिये बड़ा छेद कर दो, जिससे मैं किवाड़ बन्द कर सो जाऊँ जब बिल्लियाँ रात को आयेंगी तो अपने अपने छेद से होकर कमरे में चली आवेंगी इस प्रकार अधिक हवा कमरे में न

आयेगी और बिल्लियाँ न जड़ायेंगी"। बढ़ई ने कहा —"साहब, दो छेदों की क्या आवश्यकता? एक बडा छेद कर दिया जाय उसीसे दोनों बिल्लियाँ निकल जायेंगी"। साहब ने कहा—" यह कैसे? छोटी बिल्ली बड़े छेद से कैसे निकलेगी"। बढ़ई ने कहा—"देखिये मैं दिखाता हूं"। यह कह कर एक किवाड़ में एक बड़ा छेद करके दोनों किवाड़ भिड़ा दिये। प्रत्येक बिल्ली उस छेद से निकल गई"। न्यूटन ने कहा—"तू तो बड़ा बुद्धिमान् है"।

कहने का तात्पर्य यह है कि कभी कभी छोटे मनुष्यों के मस्तिष्क में वह बात आ जाती है जो बड़े २ विद्वानों को भी नहीं सूझती। अतएव छोटों का अनादर न करना चाहिये—

रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिये डारि।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करै तरवारि॥

६७-किसी की कुरूपता पर मत हँसो।

एक दिन एक युवक जिसके चेहरे का रंग गोरा था कहीं जा रहा था संयोग से एक हबशी से भेंट हो गयी (हबशी एक जंगली जाति के मनुष्य हैं, वह इतने काले होते हैं जैसे कौवे) युवक ने हबशी का काला रंग देख कर उसको हेठी दृष्टि से देखा और उसकी कुरूपता पर हँसने लगा। हबशी ने उस युवक से कहा—"जिस रंग पर तुझको गर्व है उसका एक बिन्दु भी मेरे लिये कोढ़ से भी बढ़कर है और मेरे जिस रंग को तू हेठी

दृष्टि से देखता है उसका एक विन्दु भी तेरे लिये (काला तिल होकर) सुन्दरता का द्योतक है।" युवक यह बात सुनकर निरुत्तर हो गया।

—— * ——

९८-वृद्ध पुरुषों की हँसी मत उड़ाओ।

एक नौजवान आदमी किसी रास्ते से कहीं जा रहा था। इतने में उसको एक बुड्ढा मनुष्य दिखलाई दिया। उस बुढ्ढे की कमर वृद्धावस्था के कारण झुक कर धनुष ऐसी हो गई थी। उसकी ठट्ठा करने के लिये उस जवान आदमी ने कहा—"बाबा" क्या अपना धनुष बेचो, ओ मैं खरीदूँगा? बूढ़े ने उत्तर दिया—"बेटा, यह धनुष मोल लेने की आवश्यकता नहीं है यदि तू कुछ दिनों तक और जीता रहा तो यह धनुष तुझे सेंत मेंत में बिना पैसे के मिल जायगा।" यह बात सुनकर वह जवान लज्जित होकर चला गया।

गो बुज़ुर्गों में तुम्हारे न हो इस वक्त का रंग।
इन ज़ईफों को न हँस हँस के रुलाना हर्गिज ॥
होगा परलय जो गिरा आँख से इनके आँसू।
बचपने से न यह तूफ़ान उठाना हर्गिज ॥

—— * ——

९९-सुभाई का स्वभाव (१)।

एक दिन एक ब्राह्मण जो भिक्षा माँग कर अपना पेट भरता था एक दिन कुएँ में गिर पड़ा। जब पास रहने वाले आदमियों को मालूम हुआ तो बहुत से आदमी ब्राह्मण को कुएँ से निकालने के लिए जमा हुये। एक आदमी कुएँ में उतर गया और ब्राह्मण से कहने लगा—"अपना हाथ इधर दो।" ब्राह्मण डूबता चला जाता था परन्तु हाथ ऊपर न करता था। एक बुद्धिमान आदमी ने कुएँ वाले आदमी से कहा—"भीख माँगते २ इसकी बान पड़ गई है। इसने लेना ही सीखा है देना नहीं जानता इससे इस तरह कहो कि 'लो मेरा हाथ' तब वह हाथ पकड़ेगा।" जब कुएँ वाले आदमी ने ब्राह्मण से कहा-"लो मेरा हाथ!" तो उसने तुरन्त ही उसका हाथ पकड़ लिया। ब्राह्मण कुएँ से बाहर निकाल लिया गया।

कोई काम करते २ मनुष्य की बान पड़ जाती है वह जल्दी छूट नहीं सकती।

१००-सुभाई का स्वभाव (२)।

एक मुसलमान तहसीलदार थे उनकी ऐसी बुरी टेव पड़ गई थी कि बिना गाली के किसी से बात ही न करते। साला ससुरा तो उनका तकिया कलाम था। एक दिन उनके मित्र कलेक्टर साहब उनसे मिलने को आए। तहसीलदार साहब अपने नौकरों

को वेहतर गाली दे रहे थे। कलेक्टर साहब ने तहीसलदार साहब को बहुत समझाया कि यह आदत अच्छी नहीं है कभी इस प्रकृति के बदले आपको नीचा देखना पड़ैगा। तहसीलदार साहब ने भी मान लिया और कलेक्टर साहब से बोले—"आज से हम किसी साले को गाली न देंगे।" कलेक्टर साहब हँसने लगे।

बुरी बात जम जात है जब स्वभाव के माहिं।
मरन काल तक सो बहुरि, टारी टरती नाहिं॥

—*—

१०१-म्याँव का ठौर।

एक दिन बहुत से चूहों ने मिलकर आपस में सलाह की कि बिल्ली जब कभी मौका पाती है हम लोगों को पकड़ कर खा जाती है। इस लिये उसके गले में एक घण्टी बाँध देनी चाहिये जिससे जब वह आये तो घण्टी का शब्द सुनकर हम लोग भाग जायें। सभों ने इस सलाह को बहुत अच्छा कहा। किसी ने कहा-" मैं बिल्ली की गर्दन पकड़ लूँगा।" किसी ने कहा—" मैं उसकी पूछ थाम लूँगा" इसी प्रकार सभी अपनी २ वीरता बघारने लगे। अन्त में एक बुड्ढे चूहे ने कहा—" पहिले यह तो बताओ कि बिल्ली का मुँह कौन पकड़ेगा जो कि म्याँव का ठौर है?" अब तो सब के सब चूहे सन्न हो गये। कोई इधर भागा कोई उधर।

बात बनाने के लिये तो सभी बांके बहादुर हैं परन्तु जब काम करने का अवसर आता है तो बिरलेहीं माई के लाल निकलते हैं॥

✻ श्रीगणेशाय नमः ✻

१०२-ईश्वर का न्याय।

किसी जंगल में एक महात्मा रहते थे एक दिन उनके दिल में यह बात समाई कि ईश्वर न्यायकारी नहीं है क्योंकि संसार में ऐसा देखा जाता है कि जिसके पास सम्पत्ति है उसके यहां सन्तान नहीं जो सन्तान वाले हैं वह खाने को तरसते हैं यह कहाँ का न्याय है ? इसी बात को सोचते बिचारते वह जंगल से निकल कर एक गाँव में आ निकले। साधु ने एक किसान से पूछा-" क्यों भाई ! तुम ईश्वर को न्यायकारी समझते हो या अन्याय कारी ? किसान ने कहा-मुझे तो ईश्वर के न्यायकारी होने में सन्देह जान पड़ता है क्योंकि हमारे खेतों में जो सूखे जाते हैं पानी नहीं बरसता और पर्वत पर नित्य ही वृष्टि होती है। अब साधु को और भी विश्वास हुआ। अभी वहाँ से चले ही थे कि एक युवा मनुष्य उनसे आ मिला और कहा-"महाराज ! यदि आप को कष्ट न हो तो इस दास को भी साथ ले लीजिये आप के साथ में मैं भी कुछ शिक्षा ग्रहण करूँगा। साधु ने कहा-चलो बच्चा ! बस दोनों संग हो लिये।

दोनों चलते २ सायंकाल किसी सेठ के घर जाकर ठहरे। सेठ ने दोनों का सम्मान किया और सोने चांदी के बर्तन में दोनों को भोजन कराया। प्रातःकाल चलते समय युवक ने एक सोने का गिलास बग़ल में दाब लिया। दूसरे दिन दोनों किसी कन्जूस मक्खीचूस महाजन के घर पर पहुँच कर ठहरना चाहते

थे। महाजन ने कहा—"महाराज! आगे बढ़ जाइये वहाँ आप को सुभीता रहेगा। परन्तु उन्हों ने कहा—"हमको किसी वस्तु की आकांक्षा नहीं यदि रूखा सूखा दे दोगे तो कुछ प्रसाद पालेंगे नहीं तो यों ही पड़ रहेंगे। निदान बहुत कुछ कहा सुनी करने पर महाजन ने रहने दिया। शाम को विवश हो कर कुछ खाना दे ही दिया। प्रातःकाल चलते समय युवक ने वह सोने का गिलास वहीं छोड़ दिया। जब वे दोनों कुछ दूर चले गये तो साधु ने युवक से कहा—तू बड़ा पापी है, मैं तुझे संग न ले चलूँगा। युवक ने चरणों पर पड़ कर बहुत प्रार्थना की तब कहा—अच्छा चलो परन्तु अब ऐसा कभी न करना।

तीसरे दिन दोनों एक भक्त के द्वार पर जा निकले। भक्त ने दूर ही से देख कर प्रणाम करके कहा आइये महाराज! आज ईश्वर ने बड़ी कृपा की कि आप लोगों के दर्शन हुये। यदि कुछ कष्ट न हो तो आज इस दास के गृह को अपने चरण रज से पवित्र कीजिए। दोनों साधु और युवक वहीं ठहर गये। भक्त ने बहुत सेवा की और बड़े प्रेम से भोजन कराया। सवेरे भक्त ने प्रणाम कर दोनों को बिदा किया। उस भक्त का इकलौता पुत्र रास्ते में खेल रहा था, युवक ने उसे गला घोंट कर मार डाला। वहाँ से चल कर दोनों किसी नदी के निकट जाकर ठहरे। पास ही कोई धनी रहता था। साधुओं का आना सुनकर उन्हें बुलाने के लिये अपने नौकर को उनके पास भेजा। नौकर ने साधु से कुछ कहा भी न था कि युवक ने उठकर नौकर की गर्दन पकड़ कर नदी में ढकेल दिया। साधु मन ही मनमें पश्चाताप कर रहा था कि किस पापी को साथ लिया इतने में ही

वह युवक न जाने कहाँ अदृश्य हो गया और उसी ओर से एक तपस्वी ने आकर साधु से कहा-तुमको ईश्वर के न्यायी होने में सन्देह था तुम्हारे इसी सन्देह को दूर करने के लिये ईश्वर ने उस युवक को भेजा था। उस युवक ने जो कुछ किया उसका मर्म मैं तुमसे बताता हूँ:—

जिस सेठने सोने चाँदी के बर्तन में तुमको भोजन कराया था उसको अपने सोने के गिलास पर बहुत अभिमान था। अब वह गिलास उसके पास नहीं रहा। उसकी समझ में यह बात आ गयी कि ईश्वर सब का अभिमान चूर करता है। अब वह भगवद्भक्त हो गया।

जिस मक्खीचूस महाजन के पास सोने का गिलास छोड़ दिया गया था वह साधु सेवा न करता था परन्तु उसके मन में अब यह विश्वास हो गया है कि साधु सेवा के ही फल से मुझे सोने का गिलास मिला। अब वह साधु सेवा में तत्पर रहेगा और सत्संगति से उसका भला होगा।

जिस भक्त के एक मात्र पुत्र को युवक ने मार डाला था उसका पहिले ईश्वर में अनन्य प्रेम था उसी प्रेम का यह फल था कि उसके वह पुत्र उत्पन्न हुआ। परन्तु अब पुत्र के प्रेम में वह ईश्वर को भी भूल गया था, यही उसकी अधोगति का कारण होता। अब पुत्रके मरने से फिर उसका प्रेम ईश्वर में लग गया।

और वह नौकर जो नदी में ढकेल दिया गया अपने स्वामी का धन चुराया करता था। उसको अपने दुष्कर्मों का फल मिला है।

सच है मनुष्य में इतनी बुद्धि कहाँ कि ईश्वर के मर्मों को

समझ सके। मनुष्य मात्र का यह कर्तव्य है कि दुख सुख में सर्वदा ईश्वर का ध्यान रक्खे और यही समझे कि ईश्वर ने इसी में कुछ भलाई सोची है।

—*—

१०३-भावी प्रबल है।

एक ब्राह्मण कहीं जा रहा था। रास्ते में उसने एक लड़के को देखा जो खेत में सोया हुआ था। एक साँपने लड़के को काट लिया और वह मर गया। ब्राह्मणने साँप से पूछा—"तुम कौन हो?"। साँप ने कहा—"मैं काल हूँ जिससे जिसकी मृत्यु लिखी रहती है मैं वेही रूप धारण करके उसके प्राण हरण करता हूँ।" ब्राह्मण ने कहा—"अच्छा बताओ मेरी मृत्यु कैसे और कहां होगी?" साँप ने उत्तर दिया—"गंगा नदी में मगर का रूप धारण करके मैं तुमको मारूँगा।" इस बातको सुनकर ब्राह्मण सोचने लगा कि कहाँ जाऊँ कि गंगा में मुझे जाना न पड़े और यदि गंगा में जाऊँगा नहीं तो मगर मुझे मारेगा कैसे? इस प्रकार मैं मरने से बच जाऊँगा। बहुत सोचने के पश्चात् उसने राजपूताना में किसी रियासत में नौकरी कर ली। ब्राह्मण राजकुमार के साथ रहने लगा। ब्राह्मण और राजकुमार में इतना स्नेह बढ़ गया कि दोनों को बिना एक दूसरे के चैन ही न आता। जब राजकुमार बड़ा हुआ तो एक दिन भारत भ्रमण के लिये निकला। ब्राह्मण का राजकुमार के साथ जाना आवश्यक था। ब्राह्मण भी राजकुमार के साथ चला। राजकुमार अयोध्या जाना चाहता था। रास्ते में

गंगा जी पड़ीं। राजकुमार ने गंगा स्नान करना उचित समझा। जब राजकुमार स्नान करने लगा तो ब्राह्मण को भी स्नान करने के लिए बुलाया। ब्राह्मण ने इन्कार कर दिया। पंडितों ने राजकुमार से कहा कि कुँअर जी तीर्थ में कुछ दान करना चाहिये। राजकुमार ने गंगा में खड़े होकर उसी ब्राह्मण से कहा—"आप जल में किनारे खड़े हो कर मुझसे मेरी अँगूठी दान करा लीजिए।" ज्यों ही ब्राह्मण ने गंगा में पैर रक्खा कि एक मगरने आकर उसकी टाँग पकड़ ली और पानी में खींच ले गया। ब्राह्मण की मृत्यु हुई। राजकुमार इत्यादि सब खड़े के खड़े देखते रह गये।

तुलसी जस होतव्यता, तैसी मिलै सहाय।
आपु न आवे ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय॥
जो रहीम भावी कतहुँ, होत आपने हाथ।
राम न जाते हरिण सँग, सीय न रावण साथ॥
मज्जत्वम्भसि यातु मेरु शिखरं शत्रूञ्जयत्वाहवे।
वाणिज्यं कृषि सेवनादि सकला विद्या कला शिक्षितु॥
आकाशं विपुलं प्रयातु खगवत्कृत्वा प्रयत्नं परं।
ना भव्यं भवतीहकर्मवशतो भाव्यस्य नाशःकुतः॥

अर्थात् चाहे पुरुष समुद्र में गोता लगावे, चाहे मेरु शिखर पर चढ़ जाय, चाहे व्यापार खेती, नौकरी इत्यादि सम्पूर्ण विद्याओं में निपुण होकर शिक्षा करने वाला हो, चाहे पक्षी की नाईं आकाश में उड़े परन्तु नहीं होना है वह नहीं होगा और जो होना है वह अवश्य ही कर्मवश होकर रहेगा।

—*—

१०४—कोई निर्धन कोई धनी क्यों ?

एक बार लक्ष्मी जी और नारायण जी में बातचीत हो रही थी, लक्ष्मी ने नारायण से कहा—आप सबके साथ बराबर न्याय नहीं करते प्रत्युत पक्षपात करते हैं। नारायण ने कहा- यह कैसे, कोई प्रमाण दो। लक्ष्मी ने कहा—सुनिये जब मनुष्य मात्र आपके पुत्र हैं तो सभी को बराबर जानना चाहिये। आप किसी को धनी और किसी को निर्धन क्यों बना देते हैं ? यह अन्याय नहीं तो क्या है ? नारायण ने कहा—मैं तो सबको बराबर देता हूँ परन्तु जिसकी भाग्य में जितना है वह उतना ही पाता है। लक्ष्मी ने कहा—यह कभी हो नहीं सकता, यदि आप दें तो किसी को क्यों न मिले। नारायण ने एक भिखारी की ओर संकेत करके कहा-इसकी भाग्य में सम्पत्ति नहीं लिखी है। लक्ष्मी ने कहा—अच्छा आप इसे दें मैं देखू तो सही इसको क्यों कर नहीं मिलता। नारायण ने कहा-अच्छा लो, यह हीरा मैं उसी रास्ते में गिराये देता हूँ जिस रास्ते से भिखमंगा जा रहा है। यह कह कर भिखारी की राह में हीरा गिरा दिया। जब वह भिखारी उस हीरे के निकट आया तो अकस्मात् उसके हृदय में यह विचार उठा कि सूर [दोनों आँखों के अन्धे] न जाने क्यों कर रास्ता चलते हैं। मैं भी तो अपनी दोनों आँखों को मूँद कर चलूँ, देखूँ चल पाता हूँ या लुढ़क कर गिर पड़ता हूँ। इस प्रकार सोचकर वह आँखों को मूंद कर कुछ दूर चला गया यहाँ तक कि जहाँ हीरा पड़ा था उसके आगे निकल गया। फिर आँखें खोल कर कहने लगा- ईश्वर ही उनका पथ प्रदर्शक है। निदान उसको हीरा न

मिल सका। नारायण ने लक्ष्मी से कहा देखा न ? भाग्यहीन को धन क्यों नहीं मिलता। लक्ष्मी ने कहा सत्य है:—

सकल पदारथ है जग माहीं। भाग्य हीन नर पावत नाहीं ॥

और भी:—

पत्रं नैव यदा करीर विटपे दोषो वसन्तस्य किं।
नोलूकोप्यवलोकते यदि दिवा सूर्य्यस्य किं दूषणम्।
धारा नैव पतन्ति चातक मुखे मेघस्य किं दूषणम्।
यत्पूर्वं विधिना ललाट लिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः ॥१॥

दो०—करम कमण्डल कर गहे, तुलसी जहँ लगि जाय।
सागर सरिता कूप जल बूँद न अधिक समाय ॥

—*—

१०५-कुछ तुम समझे कुछ हम समझे।

एक पथिक शिर पर एक गठरी लिये कहीं जा रहा था। गरमी का दिन था, और गठरी बहुत भारी थी, अतएव वह एक पेड़ की छाँह में गठरी रख कर सुस्ताने लगा। एक सवार उसी रास्ते से जा रहा था। सवार को देखकर पथिक ने कहा-"भाई, मेरी गठरी बहुत भारी है। कृपा कर अपने घोड़े की पीठ पर रख लो, मैं आगे मुकाम पर पहुँच कर ले लूँगा।" सवार उसकी बात अन-सुनी करके चला गया। पथिक ने सोचा अच्छा हुआ यदि वह मेरी गठरी लेकर भाग जाता तो मैं क्या करता। इधर सवार ने अपने मन में कहा-मैंने बड़ी मूर्खता की, घर आई लक्ष्मी को छोड़ दिया। यह सोच कर वह लौट पड़ा और पथिक से कहने

लगा—"लाओ भाई, मुझको तुम पर दया आई अतएव तुम्हारी गठरी लेते चलें।" पथिक ने कहा-"नहीं भाई, कुछ तुम समझे कुछ हम समझे। अब गठरी तुमको न मिलेगी।"

जब एक आदमी के दिल में बुराई बसती है तो दूसरों के दिल में भी उस पर सन्देह होता है।

—*—

१०६—जाति कभी नहीं छिप सकती।

एक लालची मुसलमान जनेऊ पहिन कर एक ब्रह्मभोज में शामिल हो गया। ब्राह्मणों को उस पर सन्देह हुआ। उन्हों ने पूछा—"तुम कौन हो?" मुसलमान ने कहा—"मैं बाभन हूँ।" फिर उन्हों ने पूछा—"कौन ब्राह्मण?" उसने उत्तर दिया—"गौड़।" ब्राह्मणों ने पूछा—"कौन गौड़?" अब तो मुसलमान की चारो चौकड़ी बन्द हो गई, घबरा कर कहने लगा—"या अल्लाह! गौड़ों में कौन गौड़।" सबको ज्ञात हो गया कि यह ब्राह्मण नहीं है किन्तु मुसलमान है। सबने उसको कान पकड़ कर निकाल दिया।

तात्पर्य यह है कि लाख करने पर भी मनुष्य की जाति नहीं छिप सकती।

—*—

१०७—नीच की नीचता।

एक गुरु एक दिन अपने चेलों के यहाँ जा रहे थे। उनके

पास कोई नौकर नहीं था। रास्ते में उनको एक चमार मिला। उन्होंने चमार से कहा—"तू मेरे साथ चल, तुझे भली भाँति खाने को मिलैगा और किसी बात का कष्ट न होगा।" चमार ने कहा—"महाराज मैं तो जाति का चमार हूँ, आप के साथ कैसे चलूँ ?" गुरु ने कहा—"कुछ बात नहीं, तुम अपनी जाति किसी से न बतलाना और न किसी से बोलना।" चमार सहमत हो गया। सायंकाल गुरु जी अपने चेले के मकान पर जब पूजा कर रहे थे, एक ब्राह्मण आया और गुरु के नौकर से कहा—"जा कुआँ से एक घड़ा जल भर ला।" नौकर कुछ न बोला। उस ब्राह्मण ने कई बार कहा परन्तु नौकर टस से मस न हुआ। ज्यों ज्यों ब्राह्मण उसके पास आता जाता वह कोने में खिसकता जाता कि ब्राह्मण मुझे छू न ले। निदान ब्राह्मण ने नौकर से कहा—"तू तो ब्राह्मण का कहा नहीं मानता और कोने की ओर ऐसा सकिलता जाता है मानो चमार है।" चमार यह सुनकर डर के मारे काँपने लगा और गुरु जी की ओर देखकर कहा—"गुरु जी ! गुरु जी ! मुझको तो लोगों ने पहिचान लिया कि मैं चमार हूं। अब मैं यहाँ नहीं रहूंगा, मुझे जाने दो।" यह कह कर चमार वहाँ से भाग गया।

ज्ञानमार्ग में इसका दार्ष्टान्त यह है कि जब मनुष्य माया के स्वरूप को पहिचान लेता है तो माया झट उसके पास से भाग जाती है।

१०८-सुत के बुरे भले होने के कारण हैं मां बाप।

एक छोटा लड़का नित्यही पाठशाले में पढ़ने को जाता था। उसकी यह बान पड़ गयी थी कि वह किसी लड़के की पेन्सिल, किसी की स्लेट और किसी की दावात चुरा कर घर लाता था। उसकी माँ उन चीजों को बेच कर लड़के के लिये बताशा खरीद देती थी। अन्त में फल यह हुआ कि लड़के ने पढ़ना लिखना छोड़ कर चोरी करना ही उत्तम समझा। जब वह बड़ा हुआ तो उसने राजा के महल में चोरी की। सिपाहियों ने उसको पकड़ लिया। उसे फाँसी की सजा मिली। जब फाँसी पर चढ़ने का समय आया तो लड़के ने कहा—"मैं अपनी माता से कुछ कहना चाहता हूँ।" उसकी माँ आई तो लड़के ने कान में कहने के बदले अपनी माँ का कान ही दाँत से काट लिया। लोगोंने ऐसा करने का कारण पूछा तो लड़के ने कहा—"जब मैं पाठशाले से कुछ चुराता था तो माँ से बता देता था। यदि माँने पहिले से मुझे चोरी करने से रोका होता तो मुझे आज फाँसी की सजा क्यों मिलती। मेरी मृत्यु का कारण मेरी माँ ही है।"

हे सन्तानवान् मानवगण देखो धर कर ध्यान।
इने गिने इन शब्दों में है कितना गहरा ज्ञान॥
इस प्रसंग को अपने चित में हर दम रख कर याद।
सन्तति को शिक्षा देने में कभी न करो प्रमाद॥

—*—

१०९-वह पानी मुल्तान गया।

एक दिन गुरु गोरखनाथ रैदास भक्त से मिलने गये। प्यास लगने पर गुरु गोरखनाथ ने पानी माँगा। रैदास भक्त ने उनके खप्पर में पानी भर दिया। जब गुरु गोरखनाथ जी को यह स्मरण हुआ कि रैदास भक्त तो जाति के चमार हैं तो उन्हों ने पानी न पिया और उसे खप्पर में ही रहने दिया। वहाँ से वह कबीर साहब के पास गये। जब कबीर ने खप्पर की ओर देखकर पूछा कि इसमें क्या है तो उन्हों ने सारा हाल कह सुनाया। कबीर की लड़की कमाली जो पास ही बैठी थी और रैदास भक्त की सिद्धता भली भाँति जानती थी, उस पानी को पी गई। पानी पीते ही उसके हृदय में दिव्य ज्ञान की उत्पत्ति हो गई। ऐसा अकस्मात् परिवर्तन देख कर गुरु गोरखनाथ को होश हुआ और उन्हों ने तुरन्त रैदास भक्त के पास जाकर पानी माँगा। इसी बीच में कमाली अपने पति के साथ मुल्तान चली गई। रैदास ने अपने योग बल से सब हाल जान कर गोरखनाथ से कहा-"

प्यावते थे जब पिया नहीं, तब तुमने बहु अभिमान किया।
भूला योगी फिरे दिवाना, वह पानी मुल्तान गया॥

शिक्षाः—

क्या द्विजाति क्या शूद्र ईश को वेश्या भी भज सकती है।
स्वपचों को भी भक्ति भाव में शुचिता कब तज सकती है।
अनुभव से कहता हूँ मैंने उसे कर लिया है वश में।
जिस का जी चाहे सो पीले अमृत भरा है इस रस में॥

—*—

११०-उस बूँद से भेंट कहाँ ?

एक गंधी बहुत सा इत्र लेकर एक राजा के पास बेचने के लिये गया। इत्र दिखाते समय उसकी एक बूँद पृथ्वी पर गिर पड़ी। राजा ने झट उसे उँगली से पोंछ कर चाट लिया। ठीक है

करि फुलेल को आचमन, मीठे कहत सराहि।
रे गन्धी मतिमन्द तू, अतर दिखावत काहि॥

राजा का ओछापन देख कर गंधी मुस्कराकर रह गया। राजा का मंत्री बड़ा चतुर था उसने झट इस बात को ताड़ लिया। उसने गंधी का सब इत्र खरीद कर मुँह माँगा दाम दे दिया। अपने राजा को छोटे दिल का समझ कर, गंधी कहीं दूसरी सभा में उसकी हँसी न उड़ावै, इस विचार से उसने सब इत्र गंधी के ऊपर ढलवा दिया। गंधी यह कहता हुआ चला गया कि "बूँद का चूका घड़े लुढ़कावे पर उस बूँद से भेंट कहाँ"। अर्थात् राजा की जो क्षुद्रता एक बूंद को चाटने से प्रगट हो चुकी अब वह घड़ा भर इत्र मेरे ऊपर लुढ़काने से नहीं छिप सकती।

रहिमन बिगरी आदि की बनै न खरचे दाम।
हरि बाढ़े आकाश लौं, छुट्यो न बामन नाम॥

—*—

१११—अदालत से सर्वनाश।

दो बिल्लियों ने रोटी के दो टुकड़े पाये। एक टुकड़ा छोटा था और दूसरा बड़ा। बिल्लियों में इसी बात पर झगड़ा होने लगा,

एक कहती कि बड़ा टुकड़ा मैं लूँगी दूसरी कहती कि मैं लूँगी। जब आपस में झगड़ा तै न हुआ तो दोनों एक बन्दर के पास न्याय कराने गईं। बन्दर एक तराजू लेकर न्याय करने बैठा। तराजू के एक एक पलड़े में एक एक टुकड़ा बन्दर ने रक्खा। बड़े टुकड़े वाला पलड़ा नीचे झुक गया। बन्दर ने उसमें से आधा तोड़ कर अपने मुँह में रख लिया; अब दूसरा पलड़ा नीचे झुक गया। बन्दर ने उसमें से भी आधा तोड़ कर अपने मुँह में रख लिया। अब फिर पहिला पलड़ा भारी हो गया। बन्दर ने फिर उस टुकड़े को समूचा मुँह में रख लिया। अब केवल एक छोटा सा टुकड़ा दूसरे पलड़े में बाकी रह गया। बिल्लियों ने देखा कि हम लोगों के पास जो कुछ था भी वह भी गया अतएव उन्होंने बन्दर से कहा—" अब आप न्याय करने को रहने दीजिये, हम दोनों आपस में निबट लेंगे। बचा हुआ टुकड़ा हम को दे दो।" बन्दर ने कहा—"वाह! तुम लोगों ने अच्छी दिल्लगीकी, मैंने जो इतनी देर परिश्रम किया वह किधर गया। बचा हुआ टुकड़ा तो कोर्टफीस है।" यह कह कर उसने वह टुकड़ा भी मुँह में रख लिया। बिल्लियाँ हाथ मलती हुई रह गयीं।

हमारे भारत में यह अदालती रोग बहुत बढ़ गया है। भाई भाई आपस में लड़कर अदालत की शरण लेते हैं फल यह होता है कि जो कुछ बचा बचाया रहता है वह भी खो बैठते हैं। कुछ तो अदालत के अहलकारों ने लिया, कुछ कोर्टफ़ीस और स्टाम्प में गया। बचा हुआ वकीलों का नजराना हुआ। भाइयो, गाँव २ में पञ्चायतें स्थापित करो और अपना न्याय चार जने मिलकर तय कर लो।

मरे फौजदारी की नानी * दीवाना करती दीवानी ।
हा ! हिंस्र पशुओं के सदृश हममें भरी है क्रूरता ।
करके कलह अब हम इसी में समझते हैं शूरता ॥
खोजो हमें यदि जब कि हम घर में न सोते हों पड़े ।
होंगे वकीलों के अड़े अथवा अदालत में खड़े ॥
न्यायालयों में नित्य ही सर्वत्र खोते सैकड़ों ।
प्रतिवार, पग पग पर, वहाँ हैं खर्च होते सैकड़ों ।
फिर भी नहीं हम चेतते हैं दौड़ कर जाते वहीं ।
लघु बात भी हम पाँच मिलकर आप निपटाते नहीं ॥

—※—

११२—अपना अपना सौदा ।

बाप बेटे बाजार में चले जाते थे । एक दुष्ट मनुष्य उनको गाली देने लगा । बेटे ने बाप से कहा—"पिता जी, सुनिये तो वह क्या कह रहा है ?" बेटे की बात सुनकर बापने कहा—"बेटा यह तो बाजार है, इस में हर एक आदमी अपना सौदा बेचता है, जिसको जो सौदा खरीदना होता है वह उसी की आवाज़ (शब्द) सुनता है, हम को उसका सौदा खरीदना नहीं है हम उसकी आवाज़ को क्यों सुनें ।" बाप की बात सुनकर बेटा चुप हो रहा ।

—※—

११३—शठ बिना शठता के नहीं मानता।

एक महात्मा के पास कुछ धन था। जब वह हरिद्वार जाने लगे तो एक लोहे के डण्डे में वह रुपया भर कर एक साहु के यहाँ रख दिया और कह दिया कि जब हम आवेंगे तो लेंगे। एक दिन साहु जी ने अपनी स्त्री से कहा—"यह डण्डा तो बहुत भारी जान पड़ता है, इस में कुछ है क्या?" स्त्री ने भी डण्डे को उठा कर देखा और बात सच पाई। साहु जी ने लालच में पड़ कर डण्डे को तोड़ कर उसमें से सब रुपये निकाल लिये। जब महात्मा जी हरिद्वार से लौट कर आये तो साहु जी से अपना लोहदण्ड माँगने लगे। साहु ने कहा—"आपके लोहदण्ड को तो छछुन्दरी खा गयी। महात्मा जी बहुत गिड़ गिड़ाये, प्रार्थना की, परन्तु साहु कहता कि उसे तो छछुन्दरी खा गई। महात्माजी समझ गये कि इस दुष्ट ने मेरे सब रुपये हड़प कर लिये हैं इसी लिए ऐसा कह रहा है। महात्मा जी करते ही क्या, चुपचाप चले गये। कुछ महीनों के पश्चात् महात्मा जी उसी गाँव में आकर लड़कों को पढ़ाने लगे। साहु जी का भी इकलौता लड़का महात्मा से पढ़ने लगा। महात्मा ने सोचा कि अब उस दुष्ट को उसकी दुष्टता का फल चखाना चाहिये। एक दिन महात्मा ने साहु के लड़के को बहुत धमकाया और कहा—"खबरदार यदि आज तुम चौराहे तक जाकर न लौट आये तो कुशल न समझना।" शाम को जब छुट्टी हुई तो सब लड़कों के साथ साहु का लड़का भी घर को चला परन्तु थोड़ी दूर जाकर डर के मारे (गुरु जी के कहने के अनुसार) चौराहे से लौट आया महात्मा ने उस

को एक कोठरी में बन्द कर दिया। शाम को जब सब लड़के घर पहुँच गये और साहुजी का लड़का न गया तो साहु जी पाठशाले की ओर लड़के की खोज में चले। रास्ते में यहाँ तक पता लगा कि लड़का चौराहे तक आया था, लेकिन वहाँ से कहाँ गया यह किसी ने न बताया। साहु जी ने पढ़ाने वाले महात्मा से पूछा। महात्मा ने कहा—"मैंने तो सब लड़कों के साथ ही उस को भी छुट्टी दे दी थी, इस बात के सब लड़के गवाह हैं फिर वह कहां गया मैं इसका उत्तरदायी नहीं।" साहु जी ने थाने में रिपोर्ट की। थानेदार साहब जांच के लिये गये। सब लड़के पूँछने पर उसका चौराहे तक जाना बताया। महात्मा से पूछा गया तो उन्हों ने कहा—"चौराहे तक तो लड़का गया था, यह तो आप को मालूम ही हो चुका, कल मैंने एक गिद्ध को एक लड़के को पकड़कर उड़े जाते देखा है कदाचित् वह लड़का साहु जी का ही रहा हो।" साहु जी ने कहा—"देखिये हुजूर! इनकी बदमाशी, कहीं गिद्ध भी लड़का मार सकता है?" महात्मा ने थानेदार से कहा—

शठस्य शाठ्यं शठ एव वेत्ति, नैवा शठोवेत्ति शठस्य शाठ्यम्।
छछुन्दरी खादति लोहदण्डं कथन्न गृद्धेन हतः कुमारः॥

"जब छछुन्दरी लोहदण्ड को खा सकती है तो क्या गिद्ध द्वारा लड़के का मारा जाना असम्भव है?" साहु जी ने लोहदण्ड वापस किया। महात्मा जी ने लड़के को कोठरी से निकाल कर साहु जी के हवाले किया।

जैसे को तैसा मिलै, सुनियो राजा भील।
लोहा चूहा खा गया, लड़का ले गई चील।

रहिमन चाक कुम्हार को, मांगे दिया न देय।
छेद में डण्डा डारि कै, चहै नाँद लै लेय।

—*—

११४-सोंटे चल अब तेरी बारी ।

एक समय शेख़चिल्ली ने अपनी माँ से कहा—"मैं परदेश जाना चाहता हूँ मुझको कुछ रास्ते के लिये बना दे।" उसकी माँ ने चार रोटियाँ बना दीं। शेखचिल्ली रोटियों को लेकर चला। रास्ते में एक पेड़ के नीचे बैठकर कहने लगा-"एक खाऊँ, दो खाऊँ, तीन खाऊँ कि चारों को खा जाऊँ।?" उस पेड़ पर चार परियाँ रहती थीं। उन्होंने समझा कि यह कोई दैत्य है जो हम चारों को खाना चाहता है अतएव परियों ने उसके सामने आकर कहा—"यदि तू मुझे प्राण दान दे तो मैं तुझे एक अद्भुत वस्तु दूँ।" शेखचिल्ली राजी हो गया। परियों ने उसको एक जादू की कड़ाही देकर कहा—"जब तुझे भूख लगे तो इस कड़ाही से माँग लेना, जितनी रोटियों की आवश्यकता होगी यह कड़ाही तुमको दे देगी।" उस कड़ाही को लेकर वह घर को लौटा। रास्ते में एक सरायँ में टिक गया। उसने कड़ाही का सब वृत्तान्त भठियारे से बता दिया। रात को भठियारे ने कड़ाही बदल ली परन्तु शेख़-चिल्ली को इसका पता न चला। जब शेखचिल्ली घर पहुँचा तो उसने अपनी माता से कड़ाही का वृत्तान्त बता कर परीक्षा लेने को कहा। कड़ाही से रोटी माँगी गयी तो न मिली। शेखचिल्ली समझ गया कि भठियारे ने कड़ाही बदल ली। शेखचिल्ली ने सोचा

कि माँगने से तो भठियारा देगा नहीं, अतएव उसको अपने किये की सजा देनी चाहिये, फिर वह चार रोटियाँ लेकर उसी वृक्ष के नीचे वही बात कहने के लिये गया। परियों ने समझ लिया कि इसको किसी ने धोखा दिया है। अब की बार उन्हों ने उस को एक रस्सी और एक सोंटा दिया। शेखचिल्ली फिर उसी सरायँ में ठहरा। रात को उसने रस्सी से कहा कि सबको बाँध ले। रस्सी ने सब को बाँध लिया। फिर शेखचिल्ली ने सोंटे से कहा—"चल सोंटे अब तेरी बारी।" सोंटे ने सबको पीटना शुरू किया। मार से घबड़ा कर भठियारे ने उसकी कड़ाही फेर दी। वह प्रसन्न होकर अपने घर चला गया।

दुष्ट बिना दुष्टता के नहीं मानता।

—*—

११५-नौकरों पर सख्ती करने का फल।

एक मालिक अपने नौकरों पर बहुत सख्ती करता था। जो कोई उसके यहाँ नौकरी करने के लिये जाता उसको एक प्रतिज्ञा पत्र लिख देना होता था, जिसमें नौकर और मालिक की शर्तें लिखी जाती थीं। जब नौकर लोग कभी वेतन (तनख्वाह) बढ़ाने के लिये मालिक से कहते तो मालिक कह देता—"देख अपना प्रतिज्ञापत्र, उसमें तनख्वाह बढ़ाने की शर्त कहाँ है?" बेचारे चुप रहे जाते। नौकर लोग कितना ही अच्छा काम क्यों न करते, इनाम देने की बात तो दूर रही, मालिक कभी शाबाशी भी न देता। एक दिन मालिक मुँहजोर घोड़े पर

चढ़ा था। अचानक घोड़ा पिछले दो पैरों पर खड़ा हो गया। मालिक घोड़े पर से गिर पड़ा परन्तु पैर रेकाब ही में अटक गया। एक नौकर खड़ा हुआ तमाशा देख रहा था। मालिक चिल्लाता था—"अरे नमक हराम! मेरी मदद कर लेकिन नौकर वही प्रतिज्ञापत्र लिये हुये—

दूर ही से था उसे कागज़ दिखा कर कह रहा,
देखिये सरकार इसमें शर्त यह लिक्खी नहीं॥

——*——

११६-यथा राजा तथा प्रजा।

एक राजा के यहाँ एक ज्योतिषी रहते थे। एक दिन राजा ने ज्योतिषी जी से कहा—"पंडित जी, मेरी गाय और घोड़ी दोनों गर्भिणी हैं, यदि आप अभी से बता दें कि वे क्या ब्यायेंगी और आपकी बात सच निकले तो मैं सौ रूपया आप को इनाम दूँ।" ज्योतिषी जीने बहुत सोच विचार उत्तर दिया-"महाराज! गाय बछड़ा ब्यायेगी और घोड़ी घोड़ा।" कुछ दिनों के पश्चात् जब घोड़ी और गाय ब्याईं तो पंडित जी की बात सच निकली, परन्तु दरबारियों ने सोचा कि पंडित जी एक कौड़ी भी न पायें अतएव उन्होंने बछड़े को उठाकर घोड़ी के नीचे और घोड़ी के बछेड़े को गाय के नीचे रख कर राजा साहब से जाकर कहा-"महाराज, ज्योतिषी जी की बात असत्य निकली, गाय ने घोड़ा और घोड़ी ने बछड़ा दिया है यदि आप को सन्देह हो तो

चल कर देख लीजिए।" राजा साहब ने जाकर देखा और ज्योतिषी को बुलाकर कहा—"तुम कुछ नहीं जानते, तुमको तो झूठ बोलने के अपराध में मृत्युदण्ड मिलना चाहिये परन्तु मृत्यु दण्ड न देकर मैं आज्ञा देता हूँ कि तुम मेरे राज्य से निकल जाओ।" पंडित जी करते ही क्या चुप रह गये। पंडित जीने धोबी को अपने कपड़े धोने को दिये थे, माँगने गये तो धोबी ने कपड़ा न दिया। पंडित (ज्योतिषी) जीने राजा से जाकर कहा-"महाराज ! धोबी से आप मेरे कपड़े दिलवा दीजिए तो मैं आप के राज्य से निकल जाऊँ।" धोबी को बुला कर राजा ने उससे पूछा-"क्यों रे, तू इनका कपड़ा क्यों नहीं देता ?" धोबी ने कहा-"धर्मावतार ! मैं पंडित जी के कपड़े नदी में धो रहा था, कि इतने ही में नदी में आग लग गयी पंडित जी के कपड़े जल गये।" राजाने कहा-"क्यों रे मूर्ख, कहीं पानी में भी आग लग सकती है ?" धोबी ने कहा-"

अश्वन्यां जायते वच्छा, कामधेनु तुरंग मा।
नद्यां जायते वह्निः यथा राजा तथा प्रजा ॥

अर्थात् यदि घोड़ी से बछवा और गाय से घोड़ा पैदा हो सकता है तो यथा राजा तथा प्रजा न्यायानुसार नदी में आग भी लग सकती है।" राजा ने अपनी भूल स्वीकार करली और ज्योतिषी को बुला कर क्षमा माँगी तथा इनाम के १००) भी उनको दे दिये।

—— * ——

११७-दिल्लगी मखोल।

एक बंगाली बाबू और एक मौलवी साहब में बड़ी मित्रता थी। बंगाली बाबू अक्सर मौलवी साहब के घर पर उठा बैठा करते थे। एक दिन मौलवी साहब के मित्र खाँ साहब मौलवी साहब के मकान पर मौजूद थे कि इतने में टहलते २ बंगाली बाबू भी जा पहुचे। मौलवी साहब ने उठकर स्वागत किया और कहा—"आइये क़िब्ला ! तशरीफ़ रखिये।" मौलवी साहब पान लेने भीतर चले गये। खाँ साहब ने दिल्लगी के बिचार से बंगाली बाबू से कहा—"आप क़िबला के मानी समझते हैं ? इसके मानी बहुत बुरे होते हैं।" बंगाली बाबू फारसी तो जानते न थे समझे कि क़िबला के मानी बुरे ही हैं। जब मौलवी साहब घर से निकले तो बंगाली बाबू ने कहा—हमें ऐसी दिल्लगी पसन्द नहीं, आप बातों २ में गाली दे देते हैं।" मौलवी साहब ने कानों पर हाथ रखकर कहा—"सुभान अल्लाह ! मैंने आपको कब गाली दी ?" बंगाली बाबू ने कहा—"आपने मुझे क़िबला क्यों कहा ?" मौलवी साहब हँसने लगे और कहा—"क़िबला का अर्थ बुरा नहीं है।" बंगाली बाबू ने कहा—"अगर क़िबला अच्छा तो हम क़िबला, हमारे आजा, बाबा क़िबला और यदि क़िबला बुरा तो तुम क़िबला, तुम्हारे बाप क़िबला और तुम्हारी माँ क़िबली।" खाँ साहब और मौलवी साहब हँसने लगे। बंगाली बाबू को हँसना बहुत बुरा लगा और बिगड़ कर कहने लगे—"मैं आपके घर पर आया हूँ आप चाहे जो कह लीजिए। अगर दूसरा कोई होता तो मैं खोपड़ी चूर चूर कर देता।" दोनों आदमी फिर हँसने लगे। बंगाली बाबू रूठ

कर चले गये और उस दिन से दोनों की मित्रता में अन्तर पड़ गया।

हर समय की दिल्लगी अच्छी नहीं होती।
दिल तो बढ़ता है तबीयत भी बहल जाती है।
(परन्तु) दिल्लगी में कभी तलवार भी चल जाती है।

—*—

११८-बिन अवसर की बात।

एक सीधा सादा देहाती बीमार पड़ा। वैद्य से नाड़ी दिखा कर दवा माँगी। वैद्य जी ने कुछ दवा देकर कहा—"पहले दिन जुलाब लेना तब दवा खाना, जिस दिन जुलाब लेना उस दिन खिचड़ी खाना।" वह आदमी बेचारा कुछ बहुत पढ़ा लिखा न था कुछ दूर गया तो उसे 'खिचड़ी' का शब्द भूल गया। फिर लौट कर वैद्य जी से पूछा—"वैद्यराज जी मुझे खाने को क्या बताया?" वैद्य जी ने कहा "खिचड़ी" उस आदमी ने यह सोचकर कि कहीं फिर न भूल जाय 'खिचड़ी खिचड़ी' याद करता जाता था। कुछ दूर जाते जाते "खिचड़ी" के स्थान पर "खाचिड़ी" होगया वह "खाचिड़ी" "खाचिड़ी" कहता चला जाता था। एक किसान खेत पर बैठा चिड़ियाँ उड़ा रहा था उसने जब "खाचिड़ी खाचिड़ी" का शब्द सुना तो उस आदमी का कान पकड़ कर कहा—"अबे उल्लू, मैं तो उड़ा रहा हूँ" तू कहता है 'खाचिड़ी खाचिड़ी' उसने कहा—"फिर क्या कहूँ" किसान ने कहा—'कहो-उड़ चिड़ी, उड़चिड़ी" अब वह बेचारा "उड़ चिड़ी उड़ चिड़ी" कहता जा रहा था रास्ते में एक

चिड़ीमार जाल बिछाये चिड़ियाँ पकड़ रहा था। वह देहाती कहता था-"उड़ चिड़ी उड़ चिड़ी।" चिड़ीमार ने उसको पकड़ कर दो तीन घूँसे लगाये और कहा-"कब से ताक लगाये बैठा हूँ जब एक चिड़िया मुश्किल से फँसी भी तो तू कहता है 'उड़ चिड़ी उड़ चिड़ी'। ऐसा न कह कर इस तरह कह" आवत जाव फंसि फंसि जाव "। फिर तो वह आदमी" आवत जाव फंसि फंसि जाव, आवत जाव फंसि फंसि जाव" रटता हुआ चला जा रहा था कि किसी स्थान पर चोर चोरी कर रहे थे। उन्हों ने उसकी यह बात सुन कर उसकी नस नस ढीली कर दी और कहा-"बेईमान ! कितनी मेहनत करके सेंध लगा पाई है अभी कुछ असबाब भी नहीं मिला तू कम्बख्त हता है" आवत जाव फंसि फंसि जाव।" उस बेचारे ने रोते रोते पूछा-"तो अब मुझे क्या कहना चाहिये।" चोरों ने कहा यही कह कि" लै लै जाओ घर घर आओ, लैलै जाओ घर घर आओ।" कुछ देर बाद जब रोना बन्द हुआ तो वह यही कहने लगा" लै लै जाओ घर घर आओ।" जिस रास्ते से वह जा रहा था उसी रास्ते से चार आदमी राम नाम सत्य है, कहते हुये मुर्दा लिये चले आते थे। उन्हों ने इसका" लै लै जाओ धरि धरि आओ" का कहना सुना तो बहुत बिगड़े और कहा—"मेरा तो घर सूना हो गया गृहस्थी चौपट हो गई परन्तु यह मूर्ख कहता है" लै लै जाओ घर घर आओ।" फिर तो लाश को पृथ्वी पर रख कर उन सभों ने वही किया जो औरों ने किया था अर्थात उस अदमी को खूब पीटा। वह बेचारा हैरान था कि अब क्या कहूँ। लाश वालों ने कहा—"तू यही कह कि हे भगवान् अस दिन कभौं न आवै।" निदान वह यही कहते

चला—"हे भगवान् अस दिन कभौं न आवै, हे भगवान् अस दिन कभौं न आवै।" रास्ते से एक बारात आ रही थी सभी आमोद प्रमोद में मग्न थे इधर से यह भाग्यहीन भी अपनी राम रटन लगाता जा निकला बारात वालों ने उसको पकड़ लिया किसी ने हाथ पकड़ा किसी ने पाँव किसी ने कान। खूब मरम्मत की। कहने का तात्पर्य यह कि जहाँ कहीं वह गया पीटा ही गया। किसी ने ठीक कहा है:—

फीकी पै नीकी लगै, कहिये समय बिचारि।
सबको मनहर्षित करै, ज्यों विवाह में गारि॥१॥
नीकी पै फीकी लगै, बिन अवसर की बात।
जसे बरनत रन विषे, रस शृँगार न सुहात॥२॥

—*—

११९-केर बेर का संग।

किसी बन में एक महात्मा रहते थे। एक दिन चार चोर उनके पास जाकर बोले—"महाराज, परोपकार ही महात्माओं का परम धर्म है अतएव आप हमारे साथ चल कर उपकार कीजिए।" महात्मा जी ने स्वीकार किया। महात्मा जी चोरों के साथ जा रहे थे और सोचते जाते थे कि आज इन दुष्टों को अपना परोपकार दिखाना है। चारों चोर महात्मा सहित किसी धनी के घर पहुँचे। चोरों ने सेंध लगा कर पहले महात्मा जी ही को घर के भीतर भेज कर तत्पश्चात् स्वयं भी गये। सब चोर

तो माल टाल की खोज में कोठे पर गये इधर महात्मा जी ने बाहर से कोठे के द्वार की साँकल (जञ्जीर) चढ़ा दी। आँगन में कुछ बर्फियाँ एक थाल में रक्खी थीं और निकट ही दीपक जल रहा था। महात्मा जी के मुँह में पानी भर आया, सोचा कि पहिले भगवान् का भोग लगा लूँ तो बर्फियों को खाऊँ। हाथ में जल लेकर थाल के चारों ओर घेरा और फिर ज़ोर से अपना शंख फूँका। शंख का शब्द सुन कर घर के सब लोग जाग पड़े और कहने लगे कि आज इतनी रात गये कहाँ सत्यनारायण का पूजन हो रहा है। जब ध्यान धर कर सुना तो ज्ञात हुआ कि यह तो मेरे ही घर में शंख बज रहा है। सब उठ कर लगे देखने तो महात्मा जी को पाकर उनसे ऐसा करने का मर्म पूछा। महात्मा जी ने सब वृत्तान्त कह सुनाया, और बताया कि इन बर्फियों को देख कर मेरा मन ललचाया अतएव कृष्णार्पण करके अब प्रसाद पाने जा रहा हूँ आप भी प्रसाद लीजिए और उस चार चोरों को भी दीजिए जो आपके कोठे पर माल टाल मूँस रहे हैं। घरवालों ने केवाड़ खोल कर चोरों को पकड़ कर खूब पीटा, तब तो महात्मा जी चोरों से बोले—"देखा न मेरा परोपकार ?"

एक प्रकृति वाले मनुष्यों का संग बन सकता है क्योंकि:-

प्रकृति मिले मन मिलत है, अनमिल ते न मिलाय।
दूध दही ते जमत है, काँजी से फटि जाय॥
कहु रहीम कैसे बनै, केर बेर को संग।
वे तो डोलत सहज ही, इनके फाटत अंग॥
केला तबहिं न चेतिया, जब ढिग जामी बेरि।
अब के चेते क्या भया, काँटों लीना घेरि॥

१२०-निन्दा का फल निन्दा ।

आजकल प्रायः देखा जाता है कि लोग दूसरों की निन्दा करने में अपना बड़प्पन समझते हैं परन्तु याद रहे कि जैसे आप दूसरों की निन्दा करते हैं वैसेही दूसरे भी आपकी निन्दा करते हैं यथा दो पडित साथ साथ भ्रमण कर रहे थे। यद्यपि दोनों जन विद्वान् थे परन्तु स्वभाव अच्छा न था दोनों ही पर निन्दक थे। एक दिन दोनों महाशय किसी सेठ के घर जा ठहरे। सेठ जी ने दोनों को विद्वान् और सज्जन समझ कर उनकी बड़ी इज्जत की। नौकर को बुला कर कहा पंडित जी को स्नान करने के लिये चौकी इत्यादि ला दे। स्नान से पहिले एक महाशय शौच निवृत्ति के लिये वाहर गये तो सेठ जी ने दूसरे पण्डित जी से पूछा—"महाराज! वह पंडित जी जो शौच करने गये हैं कैसे विद्वान हैं। जवाव मिला—" निरा मूर्ख है। गधा तो है।"जब शौच वाले पंडित लौट कर कुल्ला इत्यादि कर चुके तो दूसरे पण्डित जी शौच को चले गये। अब सेठ ने वैठे हुये पण्डितजी से प्रश्न किया—" पण्डित जी! वह जो शौच को गये हैं कैसे विद्वान् हैं?" उत्तर मिला—"अरे [illegible] नहीं आता, पूरा वैल है।"जब दूसरे पण्डित जी भी [illegible] अतएव आप हमारे साथ स्नान ध्यान किया तदुपरान्त भोजन के लिये चौकी पर आ विराजे। उधर सेठ जी ने एक नौकर से थोड़ी सी हरी हरी घास और एक पलड़े में थोड़ा सा भूसा भेजवा दिया। नौकर ने पण्डितों के आगे रख दिया। दोनों पण्डितों ने कहा—"यह क्या, इसका क्या अर्थ?" नौकर ने कहा—"महराज! मैं कुछ नहीं जानता, जाकर सेठ जी को

भेजे देता हूँ ।" नौकर ने सेठ जी से कहा—"लाला जी ! आप को पण्डितगण याद करते हैं ।" जब सेठ जी उनके पास पहुँचे तो दोनों साहिबों ने कहा—"यह आपने क्या भेजवाया है ?" सेठ जी ने कहा—"जो चाहिये था आप उन्हें गधा कहते हैं वह आप को बैल कहते हैं । मैंने गधे के लिये घास और बैल के लिये भूसा तो भेजा है और क्या चाहिये खरी भूसी ?" दोनों अपना सा मुँह लेकर रह गये ।

बद न बोले जेर गर्दूं गर कोई मेरी सुने ।
है यह गुम्बद की सदा जैसी कहे वैसी सुने ।

अर्थात्-यदि मेरी बात मानो तो दुनियामें किसी की बुराई न करो क्योंकि इस संसार के गुम्बद से तुम्हारी ही बातों की प्रतिध्वनि आती है । जैसी कहोगे वैसी सुनोगे ।

———*———

१२१-हमारे बाप दादे से सनातनी

चली [illegible]

न मिलत है [illegible]मिलते [illegible]

किसी गाँव में एक लड़का कुएँ में गिर गया । गाँव वालों ने उसके शिर में रस्सी लगाकर और शरीर बाँध कर कुएँ से वाहर निकाल लिया । कुछ दिनों के बाद वह लड़का बड़ा हुआ । एक दिन एक लड़का एक पेड़ पर चढ़ गया । चढ़ने को तो वह किसी प्रकार चढ़ गया परन्तु उतर नहीं सकता था । संयोग से वहाँ वह

आदमी भी खड़ा था जो लड़कपन में कुएँ से निकाला गया था। वह झट पेड़ पर चढ़ गया और रस्सी लेकर उसके शिर में और शरीर में बाँध दिया। इसके पश्चात् स्वयं पेड़ पर से उतर कर उस लड़के को खींच लिया। वह बेचारा पेड़ पर से गिरकर चारों खाने चित्त हो गया। लोगों ने उस खींचने वाले आदमी से जब पूछा कि तुमने ऐसा क्यों किया तो उसने जवाब दिया-" हमारे बाप दादे से यह सनातनी चली आती है कि जिस किसी की जान बचानी होती है उसके शिर में रस्सा बाँध कर खींचते हैं. जब हम कुएँ में गिरे थे तो इसी प्रकार खींचे गये थे।"

ऐसे ही कितनी रीतियाँ हैं जिनका तात्पर्य बिना समझे ही लोग उसे इसलिए करते चले आते हैं कि यह उनके बाप दादे से सनातनी चली आती है।

सब अंग दूषित हो चुके हैं अब समाज शरीर के।
संसार में कहला रहे हैं हम फकीर लकीर के॥
क्या बाप दादों के समय की रीतियाँ हम तोड़ दें?
वे रुग्ण हों तो क्यों न हम भी स्वस्थ रहना छोड़ दें?

पुरानी लकीर के फकीर बनने में।

*

१२८-हमारे बाप दादे से सनातनी चली आती है।

(२)

एक बार एक ब्राह्मण के घर में लड़की का विवाह हुआ। जिस दिन विवाह था उसी दिन विवाह के समय ही अकस्मात् एक

बिल्ली मर गई। लोगों ने यह समझ कर कि यह समय बाहर फेंकने का नहीं है उसे एक झौए के नीचे ढाँक दिया। जिस कन्या का विवाह था उसने भी बिल्ली को ढाँकते देखा था। बहुत दिनों के बाद जब वह लड़की ससुराल गई और उसके यहाँ लड़की की शादी पड़ी तो उसने क्या किया कि एक डण्डा लेकर घर में पली हुयी बिल्ली को मारना आरम्भ किया। बिल्ली इधर उधर भागने लगी। बड़ा कोलाहल मच गया। लोगों ने उससे पूछा—"तू बिल्ली को क्यों मारती है?" उसने उत्तर दिया कि:—"इसको मार कर झौए के नीचे ढाँकेगी, क्योंकि विवाह के अवसर पर ऐसा करना शुभ है। हमारे विवाह में पुरोहित जी ने एक बिल्ली मरवा कर झौए के नीचे ढकाई थी।" सब लोग हँसने लगे।

इसी को कहते हैं:—"पुरानी लकीर का फकीर होना।"

—*—
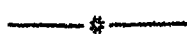
१२३-भेड़िया धसान।

एक साधु के पास कुछ ताँबे के बर्तन थे। जब साधु तीर्थ यात्रा को जाने लगा तो उसने एक जंगल में अपने बर्तन गाड़ कर चिन्ह के लिये वहाँ पर मिट्टी की एक ढ़ूरी बना दी। एक आदमी यह देख रहा था। उसने यह समझा कि यात्रा समय में जंगल में ढ़ूरी बनाना शुभ होगा इसी लिये यह साधु यहाँ ढ़ूरी बना रहा है। उस आदमी ने गाँव में जाकर यह बात प्रसिद्ध कर दी कि जो कोई विदेश जाये वह जंगल में अमुक स्थान पर मिट्टी

की एक कूरी बना दिया करे. ऐसा करना तीर्थ यात्रा में विशेष फल देता है। भारतवर्ष की भेड़िया धसान प्रसिद्ध ही है किसी ने यह न सोचा बिचारा कि यह बात सत्य है या असत्य, जो कोई विदेश जाता उसी स्थान पर मिट्टी की एक कूरी बना देता। फल यह हुआ कि कुछ ही दिनों में उस स्थान पर जहाँ साधु ने कूरी बनाई थी बहुत सी कूरियाँ बन गईं जब वह साधु तीर्थ यात्रा से लौट कर आया तो क्या देखता है कि वह स्थान जहाँ पर उसने अपना बर्तन गाड़ा था कूरियों से भरा पड़ा है। साधु को यह मालूम न हो सका कि मेरी कूरी कौन है, इसलिये उसे बर्तन न मिल सके; तब साधु ने कहाः—

"गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः।
पश्य लोकस्य मूर्खत्वं हृतं मे ताम्र भाजनम् ॥

संसार का चलन भेड़िया धसान है, कोई परमार्थ का बिचार करने वाला नहीं, लोगों की मूर्खता तो देखो मेरे सभी ताँबे के बर्तन मारे गये।"

भाइयो, अब पुरानी लकीर के फकीर बनने से कुछ हाथ नहीं आयेगा अतएव आवश्यकता है कि जिस ओर समय की गति है उसी ओर तुम भी अपनी गति को फेर दो क्योंकि वायु के प्रतिकूल नाव नहीं चल सकती।

१२४-मूँड़ मुड़ाये सिगरे गाँव, कौन २ को लीजै नाँव।

एक धोबी ने अपने गधे का नाम गंधर्वसेन रक्खा था। जब वह गधा मर गया तो धोबी उसका नाम लेकर जोर जोर से रोने लगा। उसके जितने आत्मीय थे यह समझे कि इस का कोई निकट सम्बन्धी मर गया है अतएव उन लोगों ने शोक प्रगट करने के लिये मूंड़ मुड़ा लिया। जब उनसे लोग पूछते कि तुमने मूँड़ क्यों मुड़ाया तो वह कह देते "क्या आपको नहीं मालूम गंधर्वसेन मर गये?" वह भी यही समझते कि गन्धर्वसेन कोई ऐसे ही प्रतिष्ठित व्यक्ति रहे होंगे इसलिये वे भी मूँड़ मुड़ा लेते। इसी प्रकार लोगों को देखकर कोतवाल शहर ने, और कोतवाल शहर से सुनकर मन्त्री ने, और मंत्री से सुनकर राजा ने भी अपना सर मुड़वा लिया। जब रानी ने राजा से पूछा 'कि आपने सर क्यों मुड़ा लिया तो' उन्हों ने कहा—"गंधर्वसेन मर गये।" रानी ने पूछा—"वह आपके कौन थे?" राजा ने कहा—"मैं तो नहीं जानता, मुझसे मंत्री ने कहा है।" मंत्री से पूछा गया तो उन्हों ने कोतवाल का नाम लिया। कोतवाल से पूछा गया तो उन्हों ने कहाः—

मूँड़ मुड़ायो सिगरे गाँव, कौन २ को लीजै नाँव।

अन्त में पूछते २ मालूम हुआ कि गंधर्वसेन गधे का नाम था। तात्पर्य यह कि लोग एक दूसरे की देखा देखी काम करते हैं सोचते नहीं कि ऐसा करने का तत्त्व क्या है।

तुलसी भेड़ी की धसनि, जग बहराइच जाय।

१२५-अन्ध विश्वास।

कोई ब्राह्मण १२ वर्ष तक काशी में विद्याध्ययन करता रहा। एक दिन एक वैद्य की दूकान पर बैठा था कि देखता क्या है कि जितने रोगी आते हैं वैद्य जी सबको पहिले जुल्लाब ही देते हैं। ब्राह्मण ने समझा कि जुल्लाब से बढ़ कर कोई औषधि नहीं अतएव जमालगोटे का जुल्लाब सीखकर घर लौट आया, गाँव में पहुँच कर यह प्रसिद्ध कर दिया कि मैंने १२ वर्ष तक काशी में शास्त्र का अध्ययन किया है और कठिन से कठिन कार्य एक पुड़िया में सिद्ध कर देता हूँ। उसी गाँव में एक धोबी का गधा गुम हो गया था, धोबी ने भी पंडित जी की ख्याति सुनी थी अतएव पंडित जी के पास आकर कहा—"पंडित जी मेरा गधा खो गया है कोई उपाय बताइये।" पंडित जी ने जुल्लाब की एक पुड़िया देकर कहा—"इसे खा लेना तेरा गधा मिलजायगा।" धोबी ने पुड़िया खाई तो उसें दस्त आने लगा। अपने घर के पिछवाड़े वह दस्त के लिये गया, वहीं उसका गधा झाड़ी में चर रहा था। उसको उसका गधा मिल गया। तब तो पंडित जी बहुत प्रसिद्ध हो गये। एक दिन वह धोबी अपने राजा के यहाँ कपड़ा धोकर ले गया था, थोड़ी देर तक द्वार से कपड़ा ले आने के लिये पुकारता रहा परन्तु कोई नौकर बाहर न आया। धोबी के पूछने पर ज्ञात हुआ कि राजा का कोई शत्रु चढ़ाई कर रहा है सब लोग इसी सोच विचार में डूबे हैं कि शत्रु पर विजय किस प्रकार मिले। धोबी ने कहा—"मुझको राजा साहब के पास ले चलो तो मैं एक ऐसी उपाय बताऊँ कि सहज ही में राजा साहब शत्रु पर विजय

पा जायें।" नौकरों ने उसे राजा साहब के सामने उपस्थित किया। उसने हाथ जोड़कर कहा-"महाराज, यह तो कोई बड़ी बात नहीं है, मेरे गाँव के एक ब्राह्मण ने १२ वर्ष काशी में शास्त्रों का अध्ययन किया है उसके पास एक ऐसी पुड़िया है जिससे सर्व कार्य सिद्ध हो जाते हैं, आप उससे वही पुड़िया लेकर अपने सिपाहियों को क्यों नहीं खिला देते, बस एकही पुड़िया में शत्रुओं का नाश हो जायगा, मैंने स्वयं उस पुड़िया को खाकर देखा है।" राजा को विश्वास हो गया, उन्हों ने ब्राह्मण को बुला कर बहुत सत्कार किया और आदर के साथ ब्राह्मण से कहा—"पंडित जी! इस समय मैं बड़ी आपत्ति में हूँ केवल आप ही उस आपत्ति से मुझे बचा सकते हैं। मेरे राज्य पर शत्रु लोग आक्रमण कर रहे हैं अतएव आप उसी पुड़िये से शत्रुओं का नाश कीजिए जिस पुड़िया से धोबी का कल्याण हुआ था।" पंडित जी ने राजा से कहा—"महाराज आप कुछ भी शोच न करें, मुझे ५ सेर जमालगोटा मँगवा दीजिए, मैं अभी इस का उपाय बताये देता हूँ।" राजा ने नौकरों को आज्ञा दी, थोड़ी ही देर में ५ सेर जमालगोटा पंडित जी को मिल गया। पंडित जी ने जमालगोटे को चूर्ण करके रख दिया। दूसरे दिन वही चूर्ण राजा साहब को लाकर दिया और कहा—"महाराज जब सेना लड़ने के लिये प्रस्तुत हो तो एक एक तोला चूर्ण प्रत्येक सिपाही को खिला दीजिये बस इतने ही से आप शत्रुओं पर बिजय लाभ कर सकेंगे।" राजा ने वैसा ही किया। जब सेना लड़ने के लिये तैयार हुई तो १-१ तोला चूर्ण सब सैनिकों को खिला दिया। चूर्ण के खाते ही सबों को दस्त आने लगे, कोई

नदी पर, कोई तालाब के किनारे, कोई कहीं और कोई कहीं वरदी खोले पाखाना फिर रहा है। पहिले तो शत्रु सेना ने समझा कि यह कोई नई कवायद है जो सिपाहियों से कराई जा रही है परन्तु थोड़ी ही देर में भेदियों ने सारा हाल जाकर उस राजा से बताया। शत्रु सेना ने दूसरे राजा की सेना पर धावा करके विजय पाई।

बिना सोचे बिचारे किसी बात पर बिश्वास करने का यही फल होता है।

१२६ कलियुग में तो अधर्म ही से उन्नति होती है।

एक सेठ जी बड़े धार्मिक थे। कभी असत्य न बोलते, सदैव परोपकार में दत्त चित्त रहते और सदा धर्म कर्म किया करते थे। परिश्रम भी कम न करते थे परन्तु दूकान कम चलती थी। किसी प्रकार सायंकाल तक भोजन मिल जाता था। सेठ जी के सामने वाली दूकान खाली थी उसी दूकान को एक अहीर ने किराये पर लेकर केवल १॥) में ही दूध की दूकान खोली। पहिले दिन १॥) का दूध लाया, दूध के बराबर पानी मिला दिया उस पानी मिश्रित दूध को बेचने से १॥) के ३) हो गये। इसी प्रकार नित दूध में उतना ही पानी मिला कर दूना लाभ उठाता था। कुछ दिनों में बड़ा धनी हो गया और चौधरी जी कहा जाने लगा। हमारे सेठ जी अपनी पुरानी ही दशा में रह गये। एक दिन सेठ जी बैठे सोच रहे थे कि लोग सत्य ही कहते हैं, अधर्म ही

करने से आजकल उन्नति होती है, देखो अहीर कितना धनी हो गया और हम वैसे के वैसे ही बने रह गये। एक महात्मा के पास जाकर सेठ ने उनसे सब कथा सुना कर अधर्म से उन्नति और धर्म से अवनति होने का कारण पूछा। महात्मा ने कहा- "तुम कल मेरे पास आना तो मैं इस प्रश्न का उत्तर दूँगा।" सेठ जी दूसरे दिन गये। महात्मा ने सर तक गहरा एक गढ़ा खुदा रक्खा था, सेठ से कहा कि इसी गढ़े में खड़े हो जाओ। जब सेठ उसी गढ़े में खड़े हो गये तो महात्मा ने चेले से १० घड़े जल उसी गढ़े में डलवा दिया। सेठ की गाँठ तक जल चढ़ आया। महात्मा ने पूछा—"सेठजी, तुम्हें कोई कष्ट तो नहीं है?" सेठ ने कहा—"कोई कष्ट नहीं है।" महात्मा ने फिर गढ़े में पानी डलवाया यहाँ तक कि सेठ जी की कमर तक पानी आ गया। महात्मा ने फिर सेठ से पूछा—"कुछ कष्ट तो नहीं है?" सेठने कहा—"कोई कष्ट नहीं है।" फिर महात्मा ने पानी डलवाया। अब की बार कण्ठ तक पानी आ गया। जब महात्मा नें पूछा"कोई कष्टतोनहीं है तो सेठने कह दिया कि कोई कष्ट नहीं है।" फ़िरमहात्माने ज्यों ही चार पाँच घड़े पानी और छोड़वायासेठ जीडुबकियाँखाने लगे। महात्मा ने सेठ को बाहर खींचकर कहा—"समझा, अपने प्रश्न का उत्तर?" सेठ ने कहा—"नहीं महाराज।" महात्मा ने कहा—"देख, तुम कण्ठ तक पानी में खड़े थे, परन्तु तुम को कोई कष्ट न जान पड़ता था, दो ही घड़े पानी और डालने से तुम डूबने लगे। इसी प्रकार मनुष्य पाप करता हुआ जब तक कण्ठ तक पाप में रहता है अपने को सुखी समझता है परन्तु थोड़ा ही

पाप और करने से समूल नष्ट हो जाता है। वह चौधरी अब कण्ठ तक पाप कर चुका है।"

करि अधर्म पहिले बढ़त, सुख पावत बहु भाँत।
अधरम कर्ता के सहित, पुनि समूल नशि जात॥
अन्याय का धन भी किसी का दूर करता कष्ट है।
उत्पन्न कर्ता के सहित वह शीघ्र होता नष्ट है॥

—*—

१२७-कृपण।

एक ख़ाँ साहब और एक सैयद साहब में गहरी मित्रता थी। सैयद साहब कंजूसी में सब का नम्बर काटे बैठे थे, कोई मेहमान आता तो ऐसी सफ़ाई से निकल जाते कि मेहमान बेचारे को यह न जान पड़ता कि हमें खिलाने से बचने के लिये ही यह ऐसा करते हैं। एक दिन ख़ाँ साहब सैयद साहब की मुलाकात के लिये आये। बहुत देर तक बातें होती रहीं। सैयद ने समझा कि अब यह टलेंगे नहीं और खाने का वक्त टला जाता है, यदि इन्हें भी खिलाते हैं तो कम से कम ८ आने के मत्थे जाते हैं, इसलिये ख़ाँ साहब से कहा-"ख़ाँ साहब आप ज़रा ठहरिये, मैं पाख़ाना हो लूँ।" इतना कहकर सैयद साहब भीतर भोजन करने चले गये। ख़ाँ साहब, भी एकही काइयाँ ठहर, फौरन ताड़ गये। जब सैयद साहब बहाने से खाना खाकर लौटे तो दाढ़ी में संयोग से एक चावल लगा रह गया। खाँ साहब ने फौरन इशारा करके कहा—"जनाब,

आप की दाढ़ी में ज़रा सा पाखाना लगा है।" सैयद साहब शर्म से पानी २ हो गये।

---*---

१२८-कृपणता।

एक लाला जी अत्यन्त ही कृपिण थे। उनका बहुत दिनों से विचार था कि यदि कोई कम खाने वाला ब्राह्मण मिलता तो हम उसको न्योता खिलाते। उनका यह अभिप्राय प्रगट हो चुका था। एक दिन किसी ब्राह्मण से बोले—"महाराज, आप कितना भोजन करते होंगे?"। ब्राह्मण उनका अभिप्राय समझ गया और झट बोला-"केवल आध छटाँक के लगभग।" लाला जी ने उस ब्राह्मण को कल के लिये निमंत्रण दिया और कह दिया कि मैं तो एक गाँव में कुछ सौदा तोलाने जाऊँगा, आप घर पर भोजन कर आइयेगा, मैं घर में कहे जाऊँगा। लालाजी ने घर पहुँच कर सेठानी जी से कहा—"मैं तो कल अमुक स्थान पर सौदा लेने जाऊँगा, अमुक ब्राह्मण आवे तो उसे भोजन बनवा देना और जो कुछ मांगे दे देना।" लाला जी ने मनमें सोचा था कि बहुत होगा आध छटाँक के बदले एक छटाँक खा लेगा और क्या लेगा। सेठानी जी पतिव्रता और ब्राह्मण भक्त थीं। उनको अपने पति की कृपिणता पर शोक हुआ करता था। दूसरे दिन जब लाला जी सौदा लेने चले गये तो ब्राह्मण लाला जी के घर पर पहुँचा। सेठानी जी ने श्रद्धा से प्रणाम किया। ब्राह्मण ने सेठानी से कहा-"२ मन आटा,

५ सेर घी, १½ मन भाजी, २ सेर नमक, ३ सेर मसाला तो मुझे घर के लिये दीजिए।" सेठानी जी ने सब दिया, ब्राह्मण ने घर भेजवा दिया। फिर ब्राह्मण ने कहा—"अब मेरे लिए भोजन की सामग्री लाओ चौका इत्यादि ठीक करो।" जब चौका इत्यादि ठीक हुआ तो ५ सेर की पूड़ी और भाजी इत्यादि बनाकर खूब भोजन किया और चलते समय सेठानी से कहा-"यजमान अब एक सौ मोहर मुझे दक्षिणा के मिल जाँय, मैं अपने घर की राह लूँ।" सेठानी ने एक सौ मोहर दक्षिणा के देकर ब्राह्मण को सादर विदा किया। जब सेठ जी लौट कर आये तो पूछा-"ब्राह्मण देवता भोजन कर गये?"। सेठानी ने कहा—आप के कथनानुसार ब्राह्मण ने जो कुछ माँगा मैं ने दिया, इतना सामान घर के लिये लिया, इतना खाया और इतनी दक्षिणा ली।" लाला जी सुनकर अचेत हो गये। अब कुछ देर में चेत आया तो ब्राह्मण के घर चले। इधर ब्राह्मण ने अपनी स्त्री से कह दिया था कि जब लाला जी आवें तो तुम रोने लगना और कहना कि जब से आप के घर से भोजन करके लौटे उनकी बुरी दशा हो रही है, बचने की आशा नहीं, न जाने आपने क्या खिला दिया। जब लाला जी ब्राह्मण के घर पहुंच कर पूछा कि ब्राह्मण देवता कहाँ हैं तो ब्राह्मणी फूट २ कर रोने लगी और कहा—"लाला जी जब से वह आपके घर से भोजन करके लौटे हैं उनकी बुरी दशा है, प्राण बचने की कोई आशा नहीं, न जाने आपने भोजन में क्या खिला दिया।" अब तो सेठ जी ने सोचा यदि कहीं पुलीस वालों ने सुन लिया और ब्राह्मण मर गया तो लेने के देने पड़ जाँयगे, ब्राह्मणी से बोले, चुप रहो चुप, यह सौ रुपये

लो, उनकी औषधि करो और किसी से कहना नहीं कि लाला जी के यहाँ भोजन करने गये थे।

—*—

१२९-अत्यन्त कृपणता।

एक चौबे जी बड़े ही कंजूस थे। कंजूसी में वे उतने ही प्रसिद्ध थे जितना कर्ण दान में। कोई दूबे जी उनके मित्रों में से थे। दूबे जी बड़े मज़ाकी थे। एक दिन दूबे जी चौबे जी के घर पर गये। चौबे जी ने उनकी ज़बानी खूब खातिर की परन्तु चाहते यह थे कि भोजन के समय से पहिले ही को बिदा कर दें, नहीं तो भोजन कराना ही पड़ेगा। चौबे जी ने कहा—"दूबे जी! मुझे एक आवश्यकीय कार्यवश थोड़ी देर के लिये बाहर जाना है।" चौबे जी कब के हटने वाले थे, तुरन्त जवाब दिया—"थोड़ी देर के लिये क्या बहुत देर के लिये जाइये, यह तो मेरा अपना घर है मैं शाम तक आराम करूँगा।" चौबे जी की यह भी चालाकी न चली तो फिर कहा—"आप तो दिन में केवल एकही बार भोजन करते होंगे?" दूबे जी ने कहा—"दो बार तो भोजन करता ही हूँ फिर भी सुबह और शाम को कुछ जल पान जरूरी है।" चौबे जी ने फिर कहा—"आप तो अपने ही हाथ का भोजन करते होंगे।" दूबे जी ने कहा-"यह कोई नियम नहीं है, मैं तो चारों वर्णों के हाथ का बनाया खाने में कोई दोष नहीं समझता हूँ, फिर आप तो मेरे मित्र भी हैं और सम्बन्धी

भी, आप के घर खाने में मुझे कुछ आगा पीछा नहीं है।" अब तो चौबे जी ने समझ लिया कि यह मूर्ख बिना भोजन किये जाने का नहीं। घर में भोजन बना। दोनों जने खाने बैठे। चौबे जी ने ऐसी बातें कहनी आरम्भ कीं कि जिससे दूबे जी कम भोजन करें। चौबे जी ने कहा—"कल तो मेरे यहाँ एक मित्र आये थे वह बड़े खाने वाले थे। पूरा सेर भर भोजन करते थे और मज़ा यह कि एक एक रोटी का एकही कौर करते थे।" दूबे जी ने कहा—"मर्द की खूराक तो कम से कम डेढ़ सेर होनी ही चाहिये, मैं तो दो सेर खाता हूँ; और आप के कल वाले मित्र मूर्ख थे जो ऐसी २ पतली रोटियों का एक एक ग्रास करते थे मैं तो दो दो रोटियों का एकही ग्रास करता हूँ।" इतना कह कर लिया, ई-दो दो रोटियों के एकहो ग्रास करने लगे। चौबे जी हाथ अचेत रह गये।
चले

१३०-मक्खीचूस।

एक मौलवो साहब बड़े ही कंजूस थे। एक दिन रात को नमाज पढ़ने मसजिद को जा रहे थे कि रास्ते में याद आया कि कमरे में दीपक जलता हुआ छोड़ दिया है। मौलवी साहब ने सोचा कि तेल व्यर्थ ही जल रहा है चल कर दीपक बुझा आयें। लौटकर घर पर आये तो देखा कि नौकर ने किवाड़ बन्द कर लिया है। मौलवी साहब ने पुकारा—'किवाड़ खोलो" नौकर ने कहा—"जो काम हो बताइये, किवाड़ खोलने में इसकी

चूलें व्यर्थही घिस जायेंगी।" मौलवी साहब ने कहा-"तू ठीक कहता है, अच्छा, दीपक बुझा दे, तैल व्यर्थ ही जल रहा होगा।" नौकर ने कहा—"दीपक तो मैंने बुझा दिया है परन्तु इतनी दूर आप नाहक आये आप का जूता घिस गया होगा।" मौलवी साहब ने कहा-"घबराने की बात नहीं है मैं जूतों को बग़ल में दाब कर आया हूँ।"

खाय न खरचे सूम धन, अन्त चोर ले जाय।
पीछे ज्यों मधुमक्षिका, हाथ मलै पछिताय॥

—*—

१३१-"तेरह का बैल तीन का"

(ठगी का फल)

एक दीन ब्राह्मण एक साहूकार के यहाँ नौकर था। कुछ महीने बीत जाने पर ब्राह्मण ने अपना वेतन (तनख़्वाह) माँगा। साहूकार ने कहा—"तुह्मारे १३) कुल हुये, इस समय मेरे पास रुपये तो नहीं हैं यह एक बैल है यदि तुम चाहो तो ले लो।" ब्राह्मण बैल लेकर अपने घर को चला। रास्ते में चार ठग एक जगह और उनका बाप कुछ दूर पर दूसरी जगह बैठे थे। ठगों ने कहा-"क्यों रे बैल वाले, बैल बेचेगा?" बैल वाले ने कहा—"हाँ।" ठगों ने कहा—"ठीक ठीक कह कितना लेगा?" बैल वाले ने कहा-"जो दो भले मानुष कह दें।" ठगों ने कहा-"क्या तू दो भले मानुषों की बात मानेगा?" बैल वाले ने कहा—

"अवश्य।" चारों ठग बैल वाले को लिवा कर अपने बाप के पास पहुँचे और उससे कहा—"यह अपना बैल बेंच रहा है। आप बतलाइये यह बैल कितने का है?" बुड्ढे ने कहा—"यदि सच पूछा जाय तो यह बैल तीन रूपये का है।" बैलवाले ने स्वीकार कर लिया और तीन रूपया लेकर चला गया। कुछ दूर जाने पर उसे यह ज्ञात हुआ कि वह तो ठग थे। बैलवाले ने सोचा कभी न कभी इसका बदला लूँगा। एक दिन स्त्री का भेष बना कर ठगों के घर के पास वाले कुआँ पर आकर रोने लगा। ठगों ने रोने का कारण पूछा। स्त्री ने कहा—"मेरे पति ने मुझ को घर से निकाल दिया है, अब मैं अभागिनी कहाँ जाऊँ।" ठगों ने कहा—"अच्छा, तुम हम लोगों के साथ रहोगी?" स्त्री ने कहा—"कहीं तो रहना ही होगा।" चारों ठग स्त्री को घर में ले गये। परन्तु लगे परस्पर झगड़ा करने—एक कहता इसको मैं अपनी स्त्री बनाऊँगा, दूसरा कहता मैं अपनी स्त्री बनाऊँगा। इसी प्रकार झगड़ते बाप के पास पँहुचे। बापने कहा—"कुछ नहीं यह मेरी स्त्री होगी और तुम सभों की माँ बनैगी।" सब सहमत हो गये। एक दिन उस बुड्ढे ने सब लड़कों को इधर उधर भेज दिया और स्त्री से कहा-"चल तो रे, मेरे पैर तो दाब।" स्त्री ने (बैलवाले ने) उठकर बुड्ढे का गला दबा कर कहा—"बता तेरा धन कहाँ है नहीं तो अभी तुझे समाप्त कर दूँगी।" बूढ़े ने प्राण के भय से सब बता दिया। बैलवाले ने सब धन खोद लिया और एक सोंटा लेकर उस बूढ़े को खूब पीटा और कहता जाता था—"क्यों रे दुष्ट, तेरह का बैल तीन का" उसकी मरम्मत करके सब धन समेट कर वह बैल वाला घर चला गया। जब ठग

लोग लौटे तो बाप को कराहते और धन की जगह को खुदा हुआ पाया। बाप से पूछा-"यह क्या हुआ। वह स्त्री कहाँ गई।" बापने रोते रोते कहाः—

वह औरत न थी बल्कि था बैल वाला।
मुझे पीट कर ले गया धन वह साला॥

सब पछता कर बूढ़े बाप की दवा करने लगे। दूसरे दिन वह बैलवाला फिर वहीं वैद्य का भेष बना कर आया। ठगों ने कहा-"वैद्यजी, हमारे पिता जी बीमार हैं चल कर देख लीजिये, जो कुछ फ़ीस कहियेगा हम देंगे।" वैद्यजी ने जाकर बीमार को देख कर कहा-" यदि १० दिन यहाँ ठहर कर मैं औषधि करूँ तो अवश्य अच्छा हो जायगा।" ठगों ने बहुत विनती की, वैद्य जी वहाँ रुक गये। एक दिन अंट संट औषधियाँ बता कर सब ठगों को इधर उधर लाने के लिये भेज दिया और बुड्ढे को एक खम्भे में बाँध कर खूब पीटा और कहा " क्यों रे दुष्ट तेरह का बैल तीन का?" यदि सच सच तू अपना बचा हुआ धन न बतावेगा तो आज मानों पैदा ही न हुआ था।" बुड्ढे ने डर के मारे बता दिया। सब धन लेकर वैद्य घर को चम्पत हो गया। जब लड़के दवा लेकर लौटे तो यहाँ और ही दशा देखो। कुछ समझ बूझ कर उसी दिन से ठगी छोड़ दी॥

है बुराई का समर "रंगीं" यही।
पोस्तकुन्दा मैंने तुझ से यह कही॥
समर=फल। पोस्त कुन्दा=खुल्लमखुल्ला।

—:—

१३२—हिंसा का फल।

एक हिन्दू बोखारा शहर में व्यापार करता था। जब उसके पास बहुत सा रुपया हो गया तो वह अपने देश भारतवर्ष को लौटने का विचार करने लगा। वहाँ के चोरों को यह हाल ज्ञात हो गया। चोरों ने एक झूठा क़ाफ़िला बनाया और हिन्दू से कहा कि चलो क़ाफ़िला उसी देश को चल रहा है। हिन्दू अपनी सारी सम्पत्ति लेकर उन चोरों के साथ चल पड़ा। जब वह लोग कुछ दूर निकल आये तो चोरों के सरदार ने हिन्दू से कहा—"हम लोग सब चोर हैं, तुम्हारा धन लूटने के लिये ही हम लोगों ने झूठा क़ाफ़िला बनाया है। अब हम तुम को किसी प्रकार जीता न छोड़ेंगे, तुम्हें एक घंटा की छुट्टी देते हैं। तुम अन्तिम बार अपने ईश्वर का स्मरण कर लो।" हिन्दू ने समझ लिया कि अब जान की ख़ैर नहीं है। स्नान करके शालग्राम की मूर्ति की यथा विधि पूजा की और अन्त में हाथ जोड़ कर बोला—"भगवान्, अशरण शरण! मैंने आजन्म आप की सेवा की। क्या उस सेवा का फल यही है कि मैं म्लेच्छों द्वारा वध किया जाऊँ?" इतने में आकाश वाणी हुई कि "तुम पूर्व जन्म में चोर थे और डाके डाला करते थे। इन चालीस आदमियों के शिर तुमने काटे हैं। इस के बदले में इन चालीस आदमियों को बारी २ से चालीस बार तुम्हारा शिर काटना चाहिये। क्या मेरी सेवा का इतना फल कम है कि चालीस बार शिर काटे जाने की जगह तेरा शिर चालीसों मिलकर एकही बार काटें?" एक घंटे बाद चोरों ने उस हिन्दू का वध करके सब धन ले लिया।

१३३-बहुत चालाकी से सर्वस्व नाश।

चार चोर चोरी करके लौटे आ रहे थे। एक बाज़ार के पास पहुँच कर चारों ने सलाह की कि कुछ जलपान कर लें तो सब धन आपस में बाँटें। दो चोर मिठाई लेने बाज़ार गये। बाज़ार में पहुँच कर उन दोनों ने सलाह की कि चलो उन दोनों के लिए मिठाई में विष मिलाकर ले चलें, जिससे वह दोनों मर जायें तो हम तुम सब धन आधा २ बाट लें। इधर दोनों बैठे हुये चोरों ने सोचा कि आते ही उन दोनों को मार कर सब धन लेकर हम दोनों चलते बनेंगे। दोनों चोर बाज़ार से विष मिश्रित मिठाई लिए आते थे कि बैठे हुये दोनों चोरों ने तलवार से उनका काम तमाम कर दिया। जब वे दोनों मर गये तो बाकी बचे हुये एक चोर ने दूसरे से कहा—"अब तो डर की कोई बात नहीं, आओ मिठाई खाकर पानी पी लें तो चलेंगे।" वही विष मिली हुई मिठाई दोनों ने खाकर पानी पिया। थोड़ी ही देर में विष ने अपना काम किया। वे दोनों भी चल बसे।

—*—

१३४—व्यर्थ विवाद (१)।

दो जमींदार कहीं चले जाते थे। रास्ते में एक तीस चालीस बीघे का एक चक दिखाई पड़ा। एक ने दूसरे से कहा—"यदि यह सब खेत तुम को मिल जाय तो क्या करोगे?" उसने उत्तर दिया—"यदि मुझे मिल जाय तो मैं इस में बगैचा लगाऊँ।"

दूसरे ने कहा—" यदि मुझे मिल जाय तो मैं अपनी भैंसें और गायें चराऊँ।" पहिले ने तमक कर कहा—" इसमें चाहे आप बुरा ही क्यों न मानें, मैं तो अपने बगीचे में आप को गाय भैंस न चराने दूँगा।" दूसरे ने कहा—"आप का इस में क्या इजारा, मैं अपनी जमीन में चाहे जो करूँ।" दोनों में बात बढ़ती गई और अन्त में 'चल सोंटे अब तेरी बारी' की कहावत चरितार्थ हुई। उसी रास्ते से कई पथिक (मुसाफिर) जा रहे थे। उन लोगों ने बीच देकर झगड़े का कारण पूछकर कहा—तुम लोगों की तो वही बात है कि:—

सूत न कपास, कोली से लट्ठमलट्ठा।

खेत किसी तीसरे का है झगड़ा तुम दोनों में हो रहा है।

—*—

१३५—व्यर्थ विवाद (२)।

दो किसान साथ साथ कहीं जा रहे थे। दोनों परस्पर बात चीत करते जाते थे। एक ने कहा—"भाई अब की साल हम तुम दोनों आदमी साझे में ईख बोएँगे।" दूसरे ने कहा—" हाँ ठीक है परन्तु भाई हम एक ईख रोज़ चूसेंगे।" दूसरे ने कहा—" हम नित्त दो चूसेंगे।" फिर पहले ने कहा—" तुम दो चूसोगे तो हम तीन चूसेंगे।" दूसरे ने बिगड़ कर कहा—"हम तो तुम को तीन ईख न चूसने देंगे।" पहिले ने कहा—"हम अपने हिस्से से चूसेंगे तुम्हारा क्या

इजारा ?" दोनों में तकरार होने लगी, और मारपीट तक की नौबत पहुँची। दोनों ने अदालत में नालिश की। हाकिम ने कहा—" सरकारी खेत में तुम दोनों ने ईख बोकर खूब चूसा, अतएव २५–२५ रुपया लगान और हरजाना के अभी दाखिल करो।" दोनों को २५ २५ रुपया देना पड़ा।
मूर्ख लोग इसी प्रकार व्यर्थ ही विवाद करके अपनी हानि करते हैं।

शतं दद्यान्न विवदेदिति विज्ञस्य संमतम्।
विना हेतुमपि द्वन्द्वमे तन्मूर्खस्य लक्षणम्॥

——*——

१३६-व्यर्थ विवाद [३]।

एक किसान अपने दामाद के साथ हल जोत रहा था। किसान ने कहा—" यहाँ से बाज़ार तीन कोस है।" दामाद ने कहा—"नहीं, दो कोस है।" किसान ने कहा—" नहीं जी, दो कोस कैसे है, तीन कोस है"। दोनों में इसी बात पर तकरार होने लगी। किसान की लड़की अपने बाप और पति के लिए खाना लेकर आई तो देखती क्या है कि दोनों में विवाद हो रहा है। झगड़े की जड़ समझ कर लड़की ने अपने बाप से कहा—पिता जी, आंपने मेरे विवाह में बहुत कुछ दहेज में दे डाला, क्या आप अब एक कोस भी नहीं दे सकते? बाप नें कहा—" हाँ, यों कहो तो एक नहीं तीनों कोस ले मैं दे सकता हूँ परन्तु यह मूर्ख तो मुफ्त ही में एक कोस लिए जाता था।" झगड़ा शान्त हो गया।

मूर्ख लोग इस प्रकार बे बात की बात पर झगड़ बैठते हैं और बुद्धिमान लोग उस लड़की की नाईं झगड़ा चुका देते हैं।

—*—

१३७-आँधर सोंटा।

एक बार एक आदमी ने अँधों को भोजन करने का निमंत्रण दिया। जब बहुत से अँधे पाँति लगाकर बैठ गये तो उस आदमी ने एक पत्तल में भोजन परोस कर पहिले अन्धे के आगे रख दिया। पहिले अन्धे ने हाथ से टटोल कर देख लिया कि मुझे भोजन मिल गया, अतएव निश्चिन्त होकर बैठ गया। उस आदमी ने वही पत्तल खिसका कर दूसरे के आगे रख दी। दूसरे ने भी टटोल कर मालूम कर लिया कि मुझे भोजन मिल गया, अतएव निश्चिन्त होकर बैठ गया। इसी प्रकार वह आदमी वही पत्तल हटा हटा कर दूसरे अन्धे के सामने रखता जाता और वह टटोल कर यह जान जाता कि मुझे भोजन मिल गया। अन्त में उस आदमी ने सब से आखिरी आदमी के सामने पत्तल करके हटा ली। अब सब अँधे यह समझते थे कि सब को भोजन मिल गया है। उस आदमी ने पुकार कर कहा—"भाइयो, अब नमो नारायण कीजिए (अर्थात् भोजन कीजिए) अब अन्धों ने टटोला तो किसी के आगे भोजन न था प्रत्येक अन्धे ने यही समझा कि मेरा भोजन पास के पड़ोस के अन्धे ने हटा लिया। एक दूसरे को कहने लगा कि तुम ने मेरा भोजन हटा लिया। इसी प्रकार बात बढ़ती गयी। अन्त में वही हुआ

जो प्रायः झगड़ों में होता है अर्थात् अन्धों ने अपने अपने सोंटे (डण्डे) सम्हाल लिये और एक दूसरे को पीटना आरम्भ किया। अन्धे आपस ही में पिट पिटा कर भूखे अपने अपने घर चले गये।

अनधिकारियों को अधिकार देने का यही फल होता है कि वह परस्पर ही लड़ झगड़ बैठते हैं। भारत में स्वराज्य पाने के लिये हिन्दू मुसल्मान दोनों लालायित हैं परन्तु यदि स्वराज्य मिल गया तो हिन्दू मुसलमानों में ऐसा ही आँधर सोंटा चलैगा।

—— * ——

१३८-ईर्ष्याद्वेष।

एक ब्राह्मण तीन भाई थे। दो तो निपट मूर्ख थे, एक कुछ कुछ पढ़ा था। दोनों मूर्ख भाई खेती का काम करते थे और तीसरा भाई अदालत का काम देखता था। एक दिन दोनों मूर्ख भाइयों ने आपस में सोचा कि देखो हमारा बड़ा भाई बड़ा चालाक है, हम दोनों तो नित्त ही कमाते कमाते मरे जाते हैं परन्तु वह अदालत जाने के बहाने से चैन करता है, तो हम लोग ऐसा क्यों न करें कि कल उनको खेत में काम करने को कह दें और हममें से कोई अदालत चला जाय। अन्त में यही बात निश्चित हुई। जब बड़ा भाई उस दिन लौट कर घर आया तो दोनों भाइयों ने कहा—"आप कल खेत में काम करने जाइयेगा, हम दोनों में से एक कोई अदालत चला जायगा।" बड़े भाई ने बहुत समझाया कि वहाँ मूर्खों का काम नहीं है परन्तु उन दोनों ने नहीं माना।

अन्त में विवश होकर बड़ा भाई दूसरे दिन खेत में काम करने चला गया और उन दोनों में से एक भाई अदालत गया। यह उस समय की बात है जब सरकारी अदालतों की तरह अदालतें नहीं थीं। एक काज़ी होता था वही न्याय करता था। वह मूर्ख जब काज़ी के यहाँ पहुँचा तो काज़ी साहब बैठे बाल बनवा रहे थे। काज़ी का शिर बिना चोटी के देख कर वह मूर्ख हंसा। काज़ी ने हँसने का कारण पूछा तो उसने कहा—"मैं यह सोच कर हँसा हूँ कि यदि कोई तुम्हारा शिर काट डाले तो चोटी तो तुम्हारे है ही नहीं कि उसे पकड़ कर उठाये, तो फिर क्या पकड़ कर उठावे?" काज़ी ने अपने नौकरों से कहा—"यह आदमी बड़ा बेअदब (असभ्य) है इसको जेल में बन्द करो।" नौकरों ने उस को जेल में बन्द कर दिया। दूसरे दिन उसका दूसरा भाई आया और अपने भाई के जेल जाने का समाचार सुन कर काज़ी से पूछा—"आपने किस कसूर (अपराध) पर मेरे भाई को जेल में बन्द कर दिया है?" काज़ी ने उसको सब बात ठीक२ बता दी। उसने कहा—"निस्सन्देह वह मूर्ख है। इसमें हर्ज ही क्या था यदि सर पकड़ कर उठाने के लिये चोटी नहीं थी तो क्या, मुँह में लाठी घुसेड़ कर उठा ले।" काज़ी ने उसको भी असभ्यता से बात करने के अपराध में जेल में बन्द करवा दिया। जब बड़े भाई को दोनों भाइयों के जेल में जाने का समाचार मिला तो वह समझ गया कि अवश्य ही उन लोगों ने कोई मूर्खता की होगी। बड़ा भाई दूसरे दिन काज़ी के पास जाकर कहने लगा—"हुज़ूर! आपने हमारे दोनों बैल जेल में बन्द कर लिये हैं, मेरी खेती ख़राब हो रही है।" काज़ी ने कहा—

"कैसे बैल ?" उसने उत्तर दिया—"वही दोनों बैल जिनकी सूरत आदमियों की सी है जो असभ्यता के अपराध में जेल में भेजे गये हैं।" जब क़ाज़ी को यह ज्ञात हुआ कि वे दोनों निपट मूर्ख हैं तो उनको छोड़ दिया।

देखा ईर्ष्याद्वेष करने का यही फल होता है।

—*—

१३९-आलस्य (१)

चार आलसियों ने मिलकर एक साथ रसोईं बनाने की ठानी। चारों में घी कौन लावेगा इस विषय में झगड़ा होने लगा। उन्होंने यह निश्चय किया कि जो पहिले बोलेगा वही घी को जायेगा। जब वे चारों मौन साधे बैठे थे, पहरे वाले सिपाही ने उनसे पूछा— "तुम कौन लोग हो ? कहां से आते हो ? और क्या करते हो ?" अपने प्रश्न का उत्तर न पाकर सिपाहियों ने उनको गिरफ्तार करके चालान कर दिया। अदालत में मजिस्ट्रेट के पूछने पर भी जब उन्होंने जवाब न दिया, तो उन्हें कोड़े लगाने की आज्ञा हुई। उन चारों में से एक जो कोड़ों की मार न सह सका जोर से चिल्लाने लगा। तब वह तीनों बोल उठे—"तुम्हीं को घी को जाना पड़ेगा।" जब यह हाल हाकिम को मालूम हुआ तो उन्हों ने उनको मूर्ख तथा आलसी जान कर छोड़ दिया। उर्दू के महाकवि 'मीर' ने ऐसे ही आलसियों के लिए कहा है:—

दुनिया में हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा।

मर जाना पर उठ कर कहीं जाना नहीं अच्छा ॥
बिस्तर प मिस्ले लोथ पड़े रहना हमेशा।
बन्दर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा ॥
रहने दो जमीं पर मुझे आराम यहीं है।
छेड़ो न नक्शे पा है मिटाना नहीं अच्छा ॥
उठ करके घर से कौन चले यार के घर तक।
मौत अच्छी है पर दिल का लगाना नहीं अच्छा ॥
धोती भी पहनें जब कि कोई ग़ैर पिन्हा दे।
उमरा को हाथ पैर हिलाना नहीं अच्छा ॥
सर भारी चीज़ है उसे तकलीफ़ हो तो हो।
पर जीभ बिचारी को सताना नहीं अच्छा ॥
फ़ाक़े से मर मिटे प न कोई काम कीजिए।
दुनिया नहीं अच्छी है ज़माना नहीं अच्छा ॥
सिजदे से गर बहिश्त मिले दूर कीजिए।
दोज़ख़ ही सही सर का झुकाना नहीं अच्छा ॥
मिल जाय हिन्द ख़ाक में हम काहिलों को क्या।
ऐ 'मीर' फ़र्श रञ्ज उठाना नहीं अच्छा ॥

—*—

१४०-आलस्य [२]

दो आलसी मनुष्य एक जगह पड़े थे। एक की छाती पर एक पक्का आम गिर पड़ा था परन्तु वह आलस्य के मारे उसे उठा कर खाता न था। एक सवार उधर से आ निकला। उस

आलसी मनुष्य ने सवार को पुकार कर कहा—"ओ भाई घोड़े के सवार! मेरी छाती पर एक आम पड़ा है, जरा इसको उठा कर मेरे मुँह में निचोड़ दो।" सवार ने कहा—"क्या तुम्हारे हाथ नहीं है तुम स्वयं क्यों नहीं निचोड़ लेते।" इतने में दूसरा आलसी बोला—"भाई तुम जाओ, यह ऐसा ही आलसी है। रात भर मेरा मुँह कुत्ता चाटता था मैं इस उल्लू से कहता था कि ज़रा कुत्ते को दुतकार दे परन्तु इसके मुँह से एक शब्द भी न निकला।" सवार उन दोनों के आलस्य पर शोक करता हुआ चला गया।

ऐसी ही काहिली से भारत गारत हो गया। हमको निकम्मा देख कर ईश्वर ने भी आँखें फेर लीं, क्योंकि ईश्वर उनकी सहायता करता है जो अपनी सहायता स्वयं करते हैं:-

हिन्दुओ! हाथ पाँव के होते।
जब कि है बेबसी तुम्हें भाती।
तो भला क्यों न फेर में पड़ते।
दैव की आँख क्यों न फिर जाती॥
जो रहे आसमान पर उड़ते।
आज उनके कतर गये हैं पर॥
सिर उठाना उन्हें पहाड़ हुआ।
जो उठाते पहाड़ उँगली पर॥

१४१--आधी तज सारी को धावै । आधी रहे न सारी पावै ॥

एक हंस उड़ता हुआ संयोग से समुद्र के किनारे गया, वहाँ उसकी एक मेढ़क से मित्रता हो गई। एक दिन एक बहेलिये ने हंस को जाल में फँसा लिया, मेढ़क ने बहेलिये से कहा—"तू ने मेरे मित्र को क्यों फँसाया ?" बहेलिये ने कहा—"हम इसको राजा को देंगे और बहुत बड़ा इनाम पायेंगे।" मेढ़क ने कहा—" यदि तुझे रुपये की ही आवश्यकता है तो मुझसे ले ले और मेरे मित्र को छोड़ दे। यह कह कर मेढ़क ने समुद्र में से एक लाल निकाल कर बहेलिये को दे दिया। बहेलिये ने वह लाल घर आकर अपनी स्त्री को दिया। उसने कहा—"एक ऐसा ही लाल और ला दो मैं अपने कानों का लटकन बनवाऊँगी, बहेलिये ने जाकर फिर वही हंस फँसाया और मेढ़क से कहा कि उसी लाल का जोड़ा दे तो मैं तेरे मित्र को छोड़ दूँ। मेढ़क ने कहा—"यह तो रत्नाकर हई है इसमें सभी प्रकार के रत्न भरे पड़े हैं, तू अपना लाल ला तो उसको जोड़ी मैं निकाल दूँ। बहेलिये ने वह लाल लाकर मेढ़क को दे दिया। मेढ़क ने अपने मित्र हंस से कहा—" इसकी नीयत खराब है, यह तुझे फिर पकड़ेगा, इसलिये तू अभी यहाँ से चला जा।" और उस बहेलिये से कहा—"तुझे न तो एक लाल लेना है और न मुझे दो देने हैं।" इतना कह कर वह लाल मुँह में रख कर मेढ़क समुद्र में चला गया।

यो ध्रुवानि परित्यज्य अध्रुवं परिसेवति ।
ध्रुवानि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्ट एव च ॥

अथवा–आधी तज सारी को धावै, आधी रहै न सारी पावै।
बहता फिरै बर्दकी नाईं घर के करते टिक टिक तोय।
मार लकड़ियें पुट्ठे फोरें नकुना छेद नाक दई प्रोय।
करे अनीठे दई भाँवरी खाने को खर पीना लोय।
कहते नित्य न ग़ाफ़िल हो याँ लेना एक न देना दोय॥
जो तू आया जगत में बन्दे गन्दा काम करै मत कोय।
कबहुँ क परै दुःख बहुतेरा कबहुँ क रहै सुख में सोय।
भाई बन्धु अरु कुटुम्ब कबीला मरघट लै सब चलते रोय।
कहते नित्य न ग़ाफ़िल हो याँ लेना एक न देना दोय॥

—*—

१४२-अन्याय का परिणाम।

एक कौये और हंस में बड़ी मित्रता हो गई। कौआ नित्त-ही हंस के यहाँ जाया करता था, हंस उसका बहुत सत्कार करता था। एक दिन कौये ने हंस से कहा—"मित्र! हम तो नित्य ही आप के घर आया करते हैं और आप मेरा सत्कार करते हैं। इस बात से मुझे लज्जा आती है अतएव एक दिन आप भी मेरे घर चलें तो मैं भी आप का सत्कार करके उस लज्जा को कम करूँ।" हंस ने कौये की बात मान ली। हंस अपनी स्त्री हंसिनी को लेकर कौये के यहाँ गया। एक बबूल के पेड़ पर कौये का घोंसला था, आस पास मैले के ढेर लगे थे। हंस ने पहुँचते ही कहा—"मित्र! मुझ से तो इस मैली जगह में नहीं रहा जाता, अब तो आप की बात रह गई यदि

आज्ञा हो तो अपने घर को जाऊँ।" जब हंस चलने लगा तो कौये ने हंसिनी को पकड़ लिया और कहने लगा कि यह तो मेरी स्त्री है। दोनों में झगड़ा होने लगा। दोनों हाकिम के पास न्याय कराने गये। कौये ने हाकिम से चुपके से कह दिया यदि आप हंसिनी मुझे दिला देंगे तो हम आप के पूर्व पुरुषों (आजा, बाबा) को दिखा देंगे। हाकिम ने कौये की बात मान ली। हाकिम ने दोनों से कहा-"तुम दोनों में से जो पहिले उड़ कर हंसिनी के पास पहुँच जाय वही हंसिनी का पति माना जायगा।"कौआ तो उड़ने में एकही था, उड़कर हंसिनी के पास जा बैठा। हाकिम ने कहा-"हंसिनी कौये की स्त्री है क्योंकि कौये का प्रेम उस पर अधिक है।"हंसिनी कौये को मिल गई, हंस बेचारा अपना सा मुँह लेकर चला गया। अब हाकिम ने कौये से कहा-"मेरे आजा, बाबा को हमको दिखाओ।" कौये ने कहा—"चलिये देखिये।"कौआ उड़कर एक घूर पर जा बैठा और पैरों से खाद कुरेदने लगा, जब उसमें कीड़े दिखाई देने लगे तो कौये ने हाकिम से कहा-"यह देखिये, आप के आजा बाबा यही हैं।" हाकिम ने कहा—"यह कैसी बात करते हो?" कौये ने उत्तर दिया-"आप जैसा न्याय करते हैं आप के आजा बाबा को वैसाही फल मिलता है, क्या आप को इतना भी नहीं ज्ञात है कि हंसिनी कौये की स्त्री कभी नहीं हो सकती।"

———*———

१४३-कृतघ्नता का फल।

एक जंगली बकरी का चार शिकारियों ने पीछा किया। बकरी भाग कर एक अंगूर के पेड़ के पीछे खड़ी हो गई। शिकारियों ने उसे न देखा। सब इधर उधर बकरी को खोजने लगे। इधर अंगूर की हरी २ पत्तियाँ देख कर बकरी उसे खाने लगी। यहाँ तक कि अँगूर का पेड़ बिना पत्तियों का हो गया। जब अँगूर के पेड़ में पत्ते न रह गये तो बकरी दिखलाई पड़ने लगी। शिकारियों ने बकरी को देख लिया और उसे मार डाला। मरते समय बकरी ने कहा--"मैंने अपने प्राण बचाने वाले अंगूर के साथ कृतघ्नता की, उसी को खाने लगी, इसका परिणाम यह हुआ कि मैं बेमौत मारी जाती हूँ। जो लोग अपने साथ भलाई करने वाले के साथ बुराई करते हैं वह अन्त में मेरी ही तरह कृतघ्नता का विषमय फल चखते हैं।"

१४४-सब दिन चंगी त्यौहार के दिन नंगी

एक ब्राह्मणी अपने को बड़ी चतुर समझती थी। जो काम उससे न बनता वह अपने पड़ोस में रहने वाली एक ठकुराइन से पूछ लेती। जब वह बता देती तो ब्राह्मणी कह देती—"यह तो मुझे पहिले ही से मालूम था।" उसके ऐसा करने का मतलब यह था कि एक तो वह कृतज्ञता से अपने को बचाना चाहती थी और दूसरे यह कि किसी को यह न समझ पड़े कि ब्राह्मणी को

यह बात नहीं मालूम थी। ऐसा करते करते बहुत दिन बीत गये। एक दिन ठकुराइन ने ब्राह्मणी से कहा—"बहिन! कल तो त्योहार है, पूरन पूरी बननी चाहिये।" ब्राह्मणी ने पूछा—"पूरन पूरी कैसे बनती है?" ठकुराइन ने कहा—"स्नान करके शरीर में कोयला पोत कर घी में आँटा गूंधना, इसके पश्चात् विना बोले हुये, नंगी होकर पूरन पूरी घी में निकाल लेना।" ब्राह्मणी ने अपने स्वभावानुसार कहा—"यह तो मुझे पहिले ही से मालूम था।" ठकुराइन ने अपने मन में कहा कि आज तुझे, 'यह तो मुझे पहिलेही से मालूम था' कहने का मज़ा मिल जायगा। ब्राह्मणी ने अपने घर जाकर अपने पति से कहा—"घी, आटा तरकारी इत्यादि सब सामग्री ला दो, कल त्योहार है, पूरन पूरी बनाऊंगी।" ब्राह्मण देवता ने यह समझ कर कि पूरन पूरी बहुत बढ़िया वस्तु होगी सब कुछ बाज़ार से तुरन्त ला दिया। दूसरे दिन ब्राह्मण तो अपनी यजमानी में कथा कहने चले गये घर में ब्राह्मणी ने स्नान करके शरीर में कोयला पोता, घी में आटा गूंधा, नंगी होकर घर के केवाड़ बन्द करके विना बोले पूरन पूरी पकाना आरम्भ किया। दोपहर को ब्राह्मण देवता कथा कह कर लौटे और ब्राह्मणी को पुकारा कि "भोजन तैयार है?" केवाड़े के भीतर से ब्राह्मणी "उहूँ उहूँ" करती थी क्योंकि बोलना तो मना था। ब्राह्मण ने "उहूँ उहूँ" का कुछ मतलब न समझा और धक्के देकर केवाड़ खोल दिये। देखते क्या हैं कि ब्राह्मणी चुड़ैल बनी हुई पूरन पूरी पका रही है। ब्राह्मण ने कहा—"क्यों रे चुड़ैल, सब दिन चंगी त्योहार के दिन नंगी। यह कैसी पूरन पूरी है?" पूरन पूरी करके ब्राह्मणी ने कहा-"

ठकुराइन ने तो ऐसा ही बताया था।" अन्त में बात खुल गयी कि यह उसके उपकार न मानने और "यह तो मुझे पहिले ही से मालूम था" कह देने का फल था।

—*—
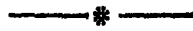
१४५-निन्नानबे का फेर।

किसी शहर में एक सन्तोषी और उसकी स्त्री चार पैसे में अपना गुज़र करते थे। इस पर भी वह बहुत सुखी थे। उसकी एक भौजाई बहुत धनाढ्य थी जिससे उनका यह सुख न देखा गया। उसने उन लोगों को दुख में डालने के लिए छिप के एक थैली में निन्नानबे रुपये भर कर उसके घर में रख दिये। वे गरीब तो थे ही रुपया देख कर बहुत प्रसन्न हुये। जब गिना तो एक कम सौ पाये। अब वह इस बात की फ़िक्र में लगे कि किसी प्रकार सौ रुपये पूरे करें। उन्हों ने अपना ख़र्च घटा कर तीन पैसे रोज़ का किया। जब दो महीने में सौ रुपये पूरे हो गये तो उन्हों ने बिचारा यदि दो पैसे में ही गुज़र करते तो इसका दूना हो जाता। ज्यों ज्यों उनका लालच बढ़ता गया वे पेट काट कर जोड़ने लगे। इस प्रकार उनकी चिन्ता और दुर्बलता बढ़ती गई और वह सुख सदा के लिये तिरोहित हो गया।

—o—

१४६–लालच बुरी बला है।

एक नाई एक पेड़ के नीचे होकर कहीं जा रहा था। इतने में यह शब्द उसके कानों में आया कि "तू सोने से भरे हुये सात घड़े लेगा?" नाई ने चकित होकर चारों ओर देखा, कोई दिखलाई न दिया, परन्तु सात सोने से भरे हुये घड़ों का नाम सुनकर उसके मन में लालच उपजी और उसने जोर से कहा— "हाँ, मैं सोने के सात घड़े लूंगा।" इतने में दूसरा शब्द उसके कान में आया कि तू अपने घर जा मैंने सोने के सात घड़े तेरे घर पहुँचा दिये हैं। नाई यह देखने को कि यह बात कहाँ तक सच है दौड़ता हुआ अपने घर पहुँचा और उसे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि वे सात घड़े सामने रक्खे हैं। जब उसने उनको खोल कर देखा तो छः घड़े सोने से भरे थे और सातवाँ घड़ा आधा भरा हुआ था। इस आधे घड़े को देखकर नाई के मन में यह चिन्ता उपजी कि सातवाँ घड़ा जब तक न भरैगा तब तक मुझे पूरा सुख न मिलैगा। अतएव उसने सब सोने चाँदी के गहने बेचकर अशर्फियाँ मोल लीं और उनको उन घड़े में डाला परन्तु घड़ा न भरा। फिर उसने सब खर्च घटा दिये और भूखा रह कर रुपया इकट्ठा किया और उस रुपये से अशर्फियाँ मोल लेकर घड़े में डालीं। वह घड़ा फिर भी न भरा। नाई राजा की नौकरी करता था और राजा उससे प्रसन्न था। उसने राजा से बिनती करके कहा कि मेरा ख़र्च नहीं चलता है। राजा ने उसकी तनख्वाह दूनी कर दी। नाई ने वह भी सब जमा किया और अशर्फियाँ लेकर फिर उसी घड़े में डालीं। घड़ा फिर भी न भरा। इसके पीछे नाई

घर घर भीख माँगने लगा और जो कुछ उसको काम करने और भीख माँगने से मिलता सब उसी घड़े में डालता जाता, परन्तु घड़ा फिर भी वैसे का वैसे ही रहता। एक दिन राजा ने उस नाई से कहा—"तू इतना दुखी और उदास क्यों हो गया है जब तक तेरी तनख्वाह आधी थी तू प्रसन्न था परन्तु जब से तेरी तनख्वाह बढ़ा दी गई तू दुखी होता जाता है, कहीं तुझे सात घड़े तो नहीं मिल गये?" नाई इस बात को सुनकर चकित हो गया और बोला—"महाराज आप से किसने कहा?" राजा ने कहा—"तू नहीं जानता यह लक्षण उसी के होते हैं जिसको यक्ष अपने सात घड़े देता है। उस यक्ष ने मुझ से भी उन सात घड़ों को लेने के लिये कहा था मैंने उससे पूछा कि घड़े खर्च करने के लिये हैं या जमा करने के लिये। यक्ष यह सुन कर भाग गया। तू यह नहीं जानता कि कोई उस धन को खर्च नहीं कर सकता। उससे केवल और धन समेटने की इच्छा बढ़ती है। अभी जा और उन घड़ों को फेर दे।" नाई ने घड़े फेर दिये।

जिन्हों ने रुपया जमा करके सद्व्यय करना नहीं सीखा है उनकी यही दशा होती है। इससे तो रुपये का न होना अच्छा है, व्यर्थ की चिन्ता तो नहीं रहती।

वह सम्पति केहि काम की, जनि काहू पै होय।
नित्त कमावे कष्ट करि, बिलसे औरहि कोय॥

१४७—व्याज की लालच में

रुपया भी गया।

किसी लालची मनुष्य के पास ५०) थे। उसने उन रुपयों को सूद पर लगाना चाहा। एक मनुष्य को उसने ५०) रुपये १ महीने के वादे पर दिये परन्तु पाँच रुपये सूद के पहिले ही काट लिये। फिर वह पाँच रुपये उसने दूसरे आदमी को १ महीने के वादे पर दिये और १) सूद के पहिले ही काट लिये। वह एक रुपया भी तीसरे आदमी को १ महीने के वादे पर दिये और दो पैसे व्याज के पहिले ही काट लिये। संयोग वश तीनों असामियों में उसका रुपया मारा गया, तब उसने पश्चाताप पूर्वक कहा—

पाँच पचासे ले गया, पाँचे ले गया एक।
टका रुपैया ले गया, तू बैठा बैठा देख॥
मक्खी बैठी शहद पर, पंख गये लपटाय।
हाथ मलै अरु शिर धुनै, लालच बुरी बलाय॥

—※—

१४८-परसंतापी सदा दुखी।

किसी गाँव में स्वार्थीदत्त नाम के एक ब्राह्मण रहते थे जो कि विष्णुजी के परम भक्त थे। उनकी प्रकृति यह थी कि परसम्पदा कभी सहन नहीं कर सकते थे। यदि उनको यह ज्ञात हो जाता

कि मुझे एक ही रोटी खाने को मिली और पड़ोसियों को दो दो मिली तो सन्ताप के मारे उस एक रोटी को भी न खाते और यही कहते "हा भगवान्, पड़ोसी हमसे दूने।" एक बार भगवान् ने प्रसन्न होकर स्वार्थीदत्त से कहा—"हम तुमसे परम प्रसन्न हैं, जो वर चाहो माँगो।" स्वार्थीदत्त मांगना तो यह चाहते थे कि "हम पड़ोसियों से सदा दूने रहें। परन्तु हरि इच्छा बलवान वह भूल से यह कह बैठे कि "हमसे पड़ोसी सदा दूने रहें।" भगवान् ने एक घंटा देकर ब्राह्मण से कहा—"तू जिस वस्तु को इससे मांगेगा यह तुरन्त ही वह वस्तु तुम्हें और उससे दूनी तुम्हारे पड़ोसियों को देगा।" भगवान् तो इतना कह कर अलक्ष्य हो गये परन्तु ब्राह्मण बड़ी सोच में पड़ा और कहने लगा—"मेरी आशाओं पर पानी फिर गया, भला जब मैं अपने पड़ोसियों को अपने से दूना देखूँगा तो कैसे जीवित रहूँगा अच्छा एक उपाय तो है कि मैं इस घंटे को न बजाऊँ तो सब दुख मेरा दूर हो, कहीं परदेश चल कर अपनी जीविका का प्रबन्ध करूँ।" ऐसा मन में विचार कर वह स्वार्थीदत्त ब्राह्मण अपनी स्त्री के पास आकर कहने लगा—"मैं परदेश जा रहा हूँ, तुमसे केवल इतना ही कहना है कि इस घंटे को जो मैं घर में रक्खे जाता हूँ कभी न बजाना।" स्वार्थीदत्त तो परदेश में जा रहे, उनकी ब्राह्मणी किसी प्रकार घर में रहने लगी। जो कुछ माँगे जाँचे मिल जाता सायंकाल उसी को पका कर खा लेती और सो रहती। एक दिन उसके चित्त में ऐसा बिचार हुआ कि इस घंटे को ही क्यों न बजाऊँ देखूँ तो सही इसमें क्या होता है चित्त में इस बिचार का आना था कि ब्राह्मणी ने घंटा निकाल कर बजाना आरम्भ किया उसी

समय उसके चित्त में यह आया कि यदि दो मन अनाज मिल जाता तो कुछ दिन का ठिकाना हो जाता। घंटे की कृपा से दो मन अनाज मिला और चार २ मन पड़ोसियों को। जब ब्राह्मणी ने घंटे का ऐसा अद्भुत प्रभाव देखा तो मन ही मन प्रसन्न हो कर कहने लगी कि पारस मणि तो मेरे घर ही में थी अब तक मैं व्यर्थ ही इधर उधर भिक्षा माँगती रही, अब सभी आवश्यक वस्तुयें इसी से मिल जायेंगी। ब्राह्मणी ने फिर कहा—"हे घंटेश्वर महाराज, मेरे यहाँ अन्न का ढ़ेर लग जाय।" एक ढ़ेर तो उसके यहाँ लगा और पड़ोसियों के यहाँ दो दो ढ़ेर लग गये इसने कहा-"या घंटे-श्वर महाराज, मेरे द्वार पर इतनी गौयें बँध जाँय" उतनी गौयें उसके द्वार पर और उन से दो गुनी पड़ोसियों के यहाँ बध गईं। फिर ब्राह्मणी ने कहा-"हे घंटेश्वर जी, मेरा दो मञ्जिला घर बन जाय" दो मञ्जिला ब्राह्मणी का और चार चार मञ्जिले घर पड़ोसियों के बन गये। इसी प्रकार ब्राह्मणी ने हाथी, घोड़े, रथ इत्यादि सभी माँगे। जितने ब्राह्मणी को मिले उनके दूने पड़ोसियों को मिल गये। जब ऐश्वर्य की सभी वस्तुयें मिल गयीं तो ब्राह्मणी ने अपने पति को पत्र लिखा कि भगवान् का दिया हुआ घर में सब कुछ है आप वृथा कष्ट क्यों उठाते हैं, पत्र के देखते ही घर चले आइये। स्वार्थीदत्त पत्र पाकर घर आये। घर पर आते ही स्वार्थीदत्त की दृष्टि पड़ोसियों के ऐश्वर्य पर पड़ी। सभी वस्तुयें अपने यहाँ से पड़ोसियों के यहाँ दूनी दिखाई पड़ीं। स्वार्थीदत्त जी परसन्ताप की ज्वाला से जलने लगे और मन में सोचा कि ब्राह्मणी ने अवश्य घंटा बजाया होगा। स्वार्थीदत्त जी ने सब पड़ोसियों की खबर लेने की ठानी। घंटा लेकर बैठे और कहा-"हे घंटेश्वर जी,

मेरी एक आँख फूट जाय।" एक आँख तो स्वार्थीदत्त की फूटी परन्तु पड़ोसियों की दोनों गईं। स्वार्थीदत्त ने फिर कहा :"मेरी एक टाँग टूट जाय" एक टाँग तो उनकी टूटी परन्तु पड़ोसियों की दोनों गईं। उन्हों ने पुनः कहा--"मेरे द्वार पर एक कुआँ खुद जाय" उनके द्वार पर एक परन्तु पड़ोसियों के द्वार पर दो दो कुयें खुद गईं। अब स्वार्थीदत्त जी अपने पड़ोसियों की दुर्दशा देखने चले। कोई इधर टटोलता है कोई उधर कोई इधर चूतड़ के बल चल रहा है कोई उधर। किसी कुयें में एक अंधा गिरा पड़ा है किसी में दो दो। अब तो स्वार्थीदत्त जी बहुत प्रसन्न हुये।

सारे ऐश्वर्य को पाकर स्वार्थीदत्त जी प्रसन्न न हुए बल्कि उलटा और अप्रसन्न ही हुये। भारत में एक दो नहीं ऐसे लोग सैकड़ों और हजारों की संख्या में हैं जिनको दूसरों के कष्ट ही देखने में आनन्द आता है।

१४९-गर्जमन्द बावला।

एक साहूकार ने एक दुष्ट को भूल से १०००) ऋण दे दिये। साहूकार जब माँगने जाता तो वह दुष्ट खरी खोटी सुनाता। जब साहूकार ने तक़ाजे पर तक़ाजे करने आरम्भ किये तो वह दुष्ट पास ही रहने वाले वैद्य के पास जाकर बोला—"वैद्य जी, यह साहूकार मुझे बहुत तंग करता है आप इसका कोई उपाय बताइये।" वैद्य जी ने उत्तर दिया—"यदि तुम बीमारी का बहाना करके बिस्तर पर पड़ रहो तो मैं सेठ जी के चार पाँच सौ रुपये

और बिगाड़ दूँ।" वह दुष्ट राजी हो गया। दूसरे दिन बीमारी का बहाना करके पड़ रहा। जब साहूकार ने सुना कि अमुक व्यक्ति जिसके ज़िम्मे मेरे एक हजार रुपये चाहिये हैं बीमार है तो उसको बड़ी चिन्ता हुई कि ऐसा न हो कि वह मर जाय तो मेरे सब रुपये बूड़ जायँ। मन में कुछ सोच समझ कर उन्हीं वैद्यराज जी के पास जाकर कहा—"वैद्य जी, उस आदमी को आप कोई ऐसी औषधि दें कि जल्दी आराम हो जाय।" वैद्य जी तो घात ही में थे, कहने लगे-"यदि अमरीका का उल्लू मिल जावे तो हम उसको अच्छा कर दें परन्तु अमरीका का उल्लू बाज़ार में ५००) का मिलता है।" साहूकार ने सोचा यदि यह मर गया तो मेरे एक हज़ार रुपये डूबेंगे, मैं क्यों न ५००) व्यय करके उसे अच्छा करा दूँ, पाँच ही सौ सही।" साहूकार "बहुत अच्छा" कह कर चला गया। इधर वैद्य जी ने एक आदमी को ठीक करके बाज़ार में भेजा और उससे कह दिया कि जंगली उल्लू हाथ में लेकर पुकारा करना कि 'ले अमरीका का उल्लू'। साहूकार दूसरे दिन उल्लू लेने बाज़ार गया तो वह मनुष्य चिल्ला रहा था "ले अमरीका का उल्लू ले अमरीका का उल्लू" सेठ जी ने दाम पूछा उसने ५००) माँगे। जब साहूकार उल्लू ५००) में खरीद कर वैद्य जी के पास लाया तो वैद्य जी ने कहा—"वह मनुष्य तो अच्छा हो गया, अब उल्लू की आवश्यकता नहीं है, आप अपना उल्लू ले जाइये।" साहूकार अपना उल्लू लेकर अपनी दूकान पर आया। एक पिंजड़े में उल्लू को बन्द करके अपनी दूकान के द्वार पर टाँग दिया। जब कोई ग्राहक आकर पूछता—"इलाइची है?" तो वह झट कह उठता—"लौंग है,

इलाइची है, उल्लू है" जब कोई कहता—"धनिया है धनिया।" तो साहूकार कहता—"धनिया है, सौंफ है, जीरा है, उल्लू है।" निदान कोई भी वस्तु कोई ग्राहक माँगता तो दो एक वस्तुओं का नाम लेकर "उल्लू है" उसमें और जोड़ देते। क्योंकि गरज तो थी उल्लू बेचने की इस लिये बिना पूछे ही "उल्लू है" कह देते।

इसी प्रकार गर्जमन्द (स्वार्थी) पुरुष बिना समय ही के अपना स्वार्थ कहने लग जाता है कोई पूछे या न पूछे।

—*—

१५०—कपट।

एक बनिये के यहाँ एक लड़का नौकर था। उसके उस बनिये ने दो नाम रख दिये थे और लड़के को पहिले ही से सिखा पढ़ा दिया था। एक नाम था "लिब्बा" और दूसरा था "दिब्बा।" जब कोई माल बेचने को उसके यहाँ आता तो वह लड़के को पुकार कर कहता—"अबे लिब्बा, जरा तराजू बाट तो ले आ।" तो लड़का सवा सेर का सेर ले आता। और जब कोई माल खरीदने को आता तो बनिया यह कह कर बुलाता—"अबे दिब्बा, जरा बाट तराजू तो ले आ" तो लड़का तीन पाव का सेर ले आता। एक दिन एक पुलिस के कान्स्टेबुल से भी उसने यही चाल चली। कान्स्टेबुल भी एक ही काइयाँ था झट ताड़ गया। बनिये का चालान कर दिया और ४ महीने के लिये चक्की पीसने भेजवा दिया। कहा है:—

फेर न होयहैं कपट सों, जो कीजै व्यापार।
जैसे हाँड़ी काठ की, चढ़ै न दूजी बार॥

—*—

१५१-पारसमणि की बटिया।

एक योगी ने एक सेठ को ऐसी पारसमणि की बटिया दी जिसको छुआते ही लोहा सोना हो जाये परन्तु योगी ने कहा कि यह बटिया केवल सात ही दिन के लिये देता हूँ। इससे अधिक एक क्षण भी तू रख न सकेगा। सेठ जी पारसमणि की बटिया लेकर प्रसन्नचित्त घर पहुँचे। सेठ जी ने सोचा कि घर में लोहा ही कहाँ है केवल फावड़ा, कुदाल, खुरपी, छुरी यही सब हैं इससे क्या होगा। अभी तो सात दिन पड़े हैं। तुरन्त अपने मुनीमों को बुलाकर एक को जमशीदपुर दूसरे को बम्बई भेजा और कह दिया कि बहुत बड़ी संख्या में लोहा ७ दिन के भीतर ही आ जाना चाहिये। इधर जमशीदपुर और बम्बई पहुंचने में २ दिन लग गये। वहाँ जाकर लोहा लेकर रेल गाड़ी में चढ़ाने में भी दो दिन व्यतीत हुये। फिर माल रवाना हुआ तो रास्ते में दो दिन लगे इस प्रकार छः दिन बीत गये। सातवें दिन सवेरे माल स्टेशन पर उतरा। स्टेशन से सेठ के घर पहुँचते २ शाम हो गई माल बाहर द्वार पर पड़ा था। सेठ ने सोचा यदि द्वार ही पर बटिया छुआते हैं तो यहाँ से चोर डाकू सब उठा ले जायेंगे। अतएव सैकड़ों नौकर लगा कर सब लोहा घर में रखवा रहे थे कि रात के १२ बजे। योगी अपनी बटिया लेने आ पहुँचा। योगी ने कहा-"दो मेरी

बटिया।" सेठ ने कहा-"महाराज, अभी तो हम लोहा ही मँगाने में लगे थे कुछ छुवाया थोड़े ही, कुछ दिन ठहरिये।" महात्मा ने कहा—"कुछ दिन तो क्या, एक क्षण भी न ठहरूँगा, दे मेरी बटिया।" सेठ ने कहा-"मैं अभी जाकर छुवाये आता हूँ।" सेठ जी उठना ही चाहते थे कि योगी ने उठ कर पारसमणि की बटिया छीन ली।

इसका दार्ष्टान्त यों है कि परमात्मा रूप योगी ने जीवात्मा रूप सेठ को मनुष्य शरीर रूप पारसमणि की बटिया ७ दिन के लिये (कुल दिन ७ ही होते हैं) दी थी कि इसके उपयोग से मोक्ष रूप सोना बना लेना। परन्तु यह जीवात्मा शरीर पाकर संसारी वस्तुओं के संग्रह रूप लोहा ही मँगाने में रह गया। ७ दिन बीतने पर परमात्मा बटिया माँगने आया तो कहते हैं 'यदि और कुछ दिन जीते तो कुछ धर्म कर्म करते, न कुछ होता तो एक बार सप्ताह ही सुन लेते", परन्तु मृत्यु किसकी सुनती है। इस मणि का कुछ भी उपयोग न कर पाया कि मणि हाथों से निकल गयी।

देश, जाति और धर्म हित, होहिं जु तुव कर्तव्य।
कालि करन्ते आजु कर, आज करन्ते अब्ब॥

और भी:—

सेठ जी को फ़िक्र थी यक यक के दस दस कीजिए।
मौत आ पहुँची कि हजरत! जान वापिस कीजिए॥

——*——

१५२-टाल मटोल।

भारतवर्ष के दक्षिण ओर किसी नगर में एक बनिया रहता था, वह नित्य ही धन पैदा करने की धुन में लगा रहता था, कभी भूल कर भी भगवान् का नाम न लेता था। उस बनिये की स्त्री बड़ी धर्मात्मा थी वह अपने पति से कहा करती थी कि स्वामिन्! मनुष्य शरीर का मिलना अत्यन्त दुर्लभ है, यह शरीर केवल ऐश्वर्य के भोगों के निमित्त नहीं है, आप गुरु जी को बुला कर मंत्र ले लीजिए और नित्य एक घड़ी तो भगवान् का भजन किया कीजिए। बनिया कहा करता था—"क्या अभी आयु बीती जाती है, कभी मंत्र ले लेंगे।" इसी प्रकार बहाना करते २ बहुत समय बीत गया। एक दिन बनिया बहुत बीमार पड़ा। बनिये ने अपनी स्त्री से कहा—"किसी योग्य वैद्य को बुला कर मुझे दिखाओ।" स्त्री ने वैद्य को बुलाया। वैद्य ने आकर बनिये को देख कर दवा दी। स्त्री ने दवा उठा कर ताक़ पर रख दी। बनिये ने अपनी स्त्री से कहा—"लाओ, औषधि पीलें।" स्त्री ने कहा—"अभी आयु तो बीती नहीं जाती, पी लीजिएगा।" जब २ बनिया दवा माँगता, स्त्री यही उत्तर दे दिया करती थी। दो दिन बीत गये बनिये को दवा न मिली। तीसरे दिन बनिये ने झुंझला कर कहा—"तू मुझे दवा को नहीं देती, क्या मर जाऊँगा तब देगी?" स्त्री ने कहा—"प्राण-नाथ, मरने को तो आप मानते ही न थे, मैं जब कहती थी-मंत्र ले लीजिये तो आप कहते थे क्या जल्दी पड़ी है, कभी ले ही लूँगा। आज आप दवा के लिये मरने का भी स्मरण करने

लगे।" अब बनिया समझ गया कि निस्सन्देह मेरी भूल थी, काल का क्या ठिकाना वह तो हर घड़ी सर पर नाच रहा है अतएव धर्म कर्म करने में कभी टाल मटोल करना ठीक नहीं है। स्त्री ने जान लिया कि बात उसके पति के चित्त में असर कर गयी। अतएव उसने दवा पिला दी, बनिया चंगा हो गया और भगवान् का भजन करने लगा।

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातम्
भास्वान् देष्यति हसिष्यति पद्मजाले।
इत्थं विचिन्तयति कोश गतो द्विरेफे
हा हन्त! हन्त नलिनी गज उज्जहारः॥

दो०-काल करै सो आजु कर, आज करै सो अब।
पल में परलै होयगी, बहुरि करोगे कब॥

दुख न भोगें उखाड़ दें उसको।
है अगर जम गया हिला डालें॥
लाभ क्या टाल टूल से होगा।
जो सकें टाल पाँव को टालें॥

—*—

१५३-हाँ और नाहीं का दुरुपयोग

(मूर्खता)

किसी गाँव में दो भाई रहते थे जो जाति के अहीर थे। बड़ा भाई तो बुद्धिमान था परन्तु छोटा भाई पूरा मूर्ख था, उसे बात करने का ढंग न आता था। एक दिन बड़ा भाई किसी

कार्य वश बाहर जा रहा था अतएव उसने अपने छोटे भाई को बुलाकर कहा—"मैं एक आवश्यकीय कार्य से बाहर जा रहा हूँ, तुम मेरी ससुराल जाकर अपनी भावज को लिवा लाना, परन्तु वहाँ जाकर बात ज़रा ठिकाने से करना, सब की बातों पर हाँ नाहीं समझ कर करना।" छोटे भाई ने कहा—"क्या मैं इतना मूर्ख हूँ कि मुझे हाँ और नाहीं का भी ज्ञान नहीं है?" बड़े भाई ने कहा-"हाँ है क्यों नहीं परन्तु समझाना मेरा धर्म था अतएव मैंने ऐसा कहा।" बड़ा भाई तो बाहर चला गया इधर छोटे ने सोचा कि अवश्य ही हाँ और नाहीं कहने में कोई बात है तब तो चलते समय उन्होंने मुझ से ऐसा कहा। ऐसा मन में विचार कर उसने क्रम से हाँ नाहीं रट लिया। जब छोटा भाई बड़े भाई की ससुराल पहुँचा तो राम राम सीताराम होने के पश्चात् ससुर ने पूछा-"गाँव में सब कुशल है?" इसने कहा-"हाँ।" ससुर ने कहा-"तुम्हारे बड़े भाई कुशल से हैं।" इसने अपने क्रम के अनुसार कहा-"नाहीं।" ससुर ने कहा-"क्या बीमार हैं।" इसने कहा-"हाँ।" ससुर ने कहा-"कुछ औषधि की जाती है।" इसने कहा-"नाहीं।" ससुर ने पूछा—'बहुत अधिक बीमार हैं।" इसने कहा-"हाँ।" ससुर ने कहा-"बचने की आशा तो है।" इसने कहा-"नाहीं।" ससुर ने कहा—"अरे इतनी कड़ी बीमारी है।" इसने कहा-"हाँ।" ससुर ने कहा-"हैं तो अभी जीते न?" इसने कहा-"नाहीं" बस और क्या शेष रहा घर में भी हाल पहुँची। सब रोने लगे। गाँव वाले आकर समझाने लगे-"जो भाग्य में बदा था हो ही गया, अब रोने धोने से क्या लाभ?" अस्तु किसी प्रकार रात बीती। प्रातःकाल इस अहीर ने कहा-"अच्छा भावज को विदा कर दो, हम लिवा कर

जायें।" ससुर ने कहा-"अब लिवा जाकर क्या करोगे, इस समय नहीं फिर कभी लिवा जाना।" वह मूर्ख अकेला बिदा होकर अपने घर पहुँचा। बड़े भाई ने पूछा—"अपनी भावज को क्यों नहीं लिवा लाये।" इसने उत्तर दिया-" वह तो राँड हो गई, ससुर ने कहा अब लिवा जाकर क्या करोगे।" बड़े भाई ने कहा-"तू कहाँ का मूर्ख है, मैं तो अभी जीवित ही हूँ मेरी स्त्री बिधवा कैसे हो गई?" छोटे भाई ने कहा-"मूर्ख तो तुम हो तुम्हारे जीते हुये भी जैसे माता जी राँड हो गईं, बहिन राँड़ हो गई, फूफी राँड़ हो गई, ऐसे ही तुम्हारे जीवित रहते ही तुम्हारी स्त्री भी राँड हो गई। बड़ा भाई समझ गया कि इसने कोई न कोई मूर्खता अवश्य की है अतएव उसने कहा-"अच्छा बतलाओ तुमसे क्या क्या बात हुई।" छोटे भाई ने ससुर के प्रश्न और अपने क्रम से हाँ और नाहीं का उत्तर सुना दिया। सब हाल सुन कर बड़ा भाई स्वयं ससुराल गया और सबको समझा बुझाकर अपनी स्त्री को लिवा लाया।

आदमी आदमी में अन्तर।
कोई हीरा कोई कंकर॥

—*—

१५४-डपोल शंख।

एक ब्राह्मण ने बहुत दिनों तक समुद्र की उपासना की। समुद्र ने उससे प्रसन्न हो कर एक शंखी दी और कहा—"तुम नित्य पूजा करके इस शंखी से ५) रुपया माँग लेना यह तुरन्त ही तुमको दे देगी।" ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ। शंखी को

लेकर ब्राह्मण घर जा रहा था कि उसके दिल में यह बात आई कि देखें तो सही सचमुच यह शंखी ५) नित्य देती है या नहीं। ऐसा विचार कर एक कुआँ पर बैठ कर स्नान करके शंखी से ५) माँगा। शंखी ने तुरन्त ही पाँच रुपये दे दिये। एक बनिया बैठा हुआ यह सब कौतुक देख रहा था। बनिये ने सोचा कि किसी प्रकार इस शंखी को ब्राह्मण से लेना चाहिये। ब्राह्मण से बनिये ने पूछा—"महाराज जी! आप कहाँ जायेंगे।" जब ब्राह्मण ने बताया तो फिर बनिये ने कहा—"महाराज वह स्थान तो यहाँ से बहुत दूर है, आज रात भी अँधेरी होगी, रास्ते में चोरों का डर भी है अतएव यदि आप कृपा कर मेरा ही गृह पवित्र करें तो आप को आराम भी मिले और मुझे भी अतिथि-सेवा का सुअवसर प्राप्त हो।" ब्राह्मण बेचारा सीधा सादा पुराने ढरें का आदमी था, बनिये के कहने में आकर उसके यहाँ गाँव में टिक रहा। जब रात को ब्राह्मण सो गया तो बनिये ने ब्राह्मण की झोली से वह शंखी निकाल कर उस की जगह एक साधारण शंखी रख दी। दूसरे दिन जब ब्राह्मण घर पहुँचा और स्नान करके शंखी से ५) माँगने लगा तो शंखी ने न दिया। ब्राह्मण जान गया कि बनिये ने शंखी बदल ली। ब्राह्मण बिचारा रोता हुआ समुद्र के पास गया और सब हाल कह सुनाया। समुद्र ने एक दूसरी शंखी देकर कहा—"इसका नाम डपोल शंख है यह कहने को तो कहती है परन्तु देने के नाम एक छदाम नहीं देती।" ब्राह्मण वहाँ से चल कर फिर उसी कुयें पर पूजा करने लगा जिस पर पहिली बार किया था। पूजा करके ब्राह्मण ने शंख से ५) माँगा। शंख ने कहा—"पाँच ही क्यों दश लो।"

ब्राह्मण ने कहा—" अच्छा दश दो।" शंख ने कहा—"दश ही क्यों २०) लो।" दैवयोग से वही बनिया जिसने पहिली शंखी चुरा ली थी वहीं खड़ा हुआ सब देख रहा था। बनिये ने मन में सोचा कि मेरी शंखी तो ५) नित्य देती है परन्तु वह शंख तो जितना माँगे उसका दूना रोज ही देता है अच्छा होगा कि मैं अपनी शंखी को इस शंख से किसी प्रकार बदल लूँ। बनिये ने ब्राह्मण से कहा-" महाराज, आज कहाँ जाइयेगा—शाम हो गई है, आज कृपा कर मेरे ही घर पर भोजन पा लीजिए।" ब्राह्मण तो यही चाहता ही था, झट पट मान गया। रात को बनिये ने जब समझा कि ब्राह्मण सो रहा है तो अपनी शंखी को ब्राह्मण के झोले में रख दिया और ब्राह्मण का शंख निकाल लिया। अब पाँच रुपया देने वाली शंखी तो ब्राह्मण को मिल गयी और डपोल शंख बनिये के हाथ आया। दूसरे दिन बनिये ने पूजा करके शंख से ५) माँगा। शंख ने कहा—" ५) लेकर क्या करोगे १०) लो।" बनिये ने कहा—"अच्छा दश ही दो।" शंख ने कहा-" दश लेकर क्या करोगे २०) लो।" बनिये ने कहा—" अच्छा बीस ही दो।" शंख ने फिर कहा—" ४०) लो।" इसी प्रकार १००, २००, ४००, १०००, २००० तक शंख ने कहा। जब बनिये ने कहा अच्छा अब जल्दी से २०००) तक दो तो शंख ने कहाः—

" परहस्ते गता शंखी, पञ्चरूपक दायिनी।

अहं डपोल शंखोस्मि वदामि न ददामि च ॥

अर्थात्, ५) रुपया देने वाली शंखी तो दूसरे के हाथ में चली गई मैं तो डपोल शंख हूँ कहता हूँ देता कुछ नहीं ॥

इस प्रकार के ढपोल शंख संसार में बहुत हैं जो देने के लिए वादा तो सैकड़ों का कर लेंगे परन्तु देने के नाम छदाम न देंगे।

—*—

१५५-उल्लू बसन्त।

किसी गाँव में एक उल्लू बसन्त रहता था जो कुछ काम धाम तो करता न था बैठे बैठे खाया करता था। एक दिन उसकी स्त्री ने कहा—"कुछ काम काज किया करो, इस प्रकार बैठे बैठे कैसे काम चलैगा।" उल्लू बसन्त ने कहा—"जाओ किसी पड़ोसी के यहाँ से कुछ माँग कर आज का काम चलाओ कल देखा जायगा।" दूसरे दिन स्त्री के फिर कहने पर उल्लू बसन्त ने कहा—"अच्छा, हमको एक खुरपी लादो तो कुछ घास छील लावें।" उसकी स्त्री ने पड़ोसी के घर से एक खुरपी लाकर उसको दे दी। उल्लू बसन्त दिन भर इधर उधर घूमता रहा, फिर जाकर एक जंगल में बैठ कर नख (नाखून) काटने लगा। एक आदमी उधर से जा रहा था उसने उल्लू बसन्त को खुरपी से नख काटते देख कर कहा—"भाई, खुरपी से नख नहीं काटा जाता, तुह्मारा हाथ कट जायगा।" अभी वह आदमी कुछ ही दूर गया था कि उल्लू बसन्त का हाथ कट गया। उल्लू बसन्त ने दौड़ कर उस आदमी से हाथ जोड़ कर कहा—"आप तो साक्षात् परमेश्वर हैं।" आदमी ने कहा—"यह कैसे?" उसने जवाब दिया—"यदि तुम ईश्वर न होते तो पहिले ही से कैसे जान जाते कि मेरा हाथ कट

जायगा। अब बताइये मैं कब मरूँगा।" उस आदमी ने इसको निरा मूर्ख समझ कर कहा—"जब तक तुम्हारा डोरा नहीं टूटता है नहीं मरते हो, जिस दिन तुम्हारा डोरा टूट जावेगा उसी दिन मर जाओगे।" उल्लू बसन्त घर गये तो अपनी स्त्री से एक डोरा माँग कर कमर में लपेट लिया। जब पड़ोसी अपनी खुरपी माँगने आया तो उसकी स्त्री ने कहा—"कहाँ है खुरपी जो मैं ने घास छीलने को दी थी?" उल्लू बसन्त ने कहा—"वह तो मैं जंगल में फेंक आया।" स्त्री ने कहा—"अब पड़ोसी मांगने आया है उसे क्या दूँ? और घास भी तो नहीं लाये आज खाओगे क्या? जाओ कहीं से कुछ खाने को लाओ।" उल्लू बसन्त ने कहा—"तुम्हीं जाकर लाओ न।" दोनों में झगड़ा होने लगा। एक झटके में उल्लू बसन्त की कमर का डोरा टूट गया। उल्लू बसन्त ने कहा—"चल ससुरी, अब तो तू राँड़ हुई, मैं तो मर गया, अब देख कौन तुझे खिलाता है?" उल्लू बसन्त टाँग फैला कर लेट गया और चिल्लाने लगा—"अरे दौड़ो परिवार के लोगो! मैं मर गया हूँ, मेरे लिये कफ़न लाओ।" सभों ने समझ लिया कि वही उल्लू बसन्त है चिल्लाता है। कोई भी पास न आया। उल्लू बसन्त ने फिर कहा—"परिवार के लोगों की कौन कहे, गाँव वाले भी साले नहीं सुनते मैं कबसे मरा पड़ा हूँ कोई चूँ तक नहीं करता है। अच्छा अब मैं स्वयं बाज़ार से कफ़न लाता हूँ।" उल्लू बसन्त उठकर बजाज़ की दूकान पर गया और उससे कहा—"लालाजी मैं मर गया हूँ। मुझे कफ़न दो जिसमें मैं दफ़न हो जाऊँ।" लालाजी ने कहा—"तुम तो दफ़न हो जाओगे, मेरा दाम कौन देगा।" उल्लू बसन्त ने कहा—"क्या मैं दफ़न होकर

फिर न आऊँगा।" लालाजी ने जवाब दिया-"मर कर कोई नहीं आता।" उल्लू बसन्त ने कहा-"तो फिर मैं बिना कफ़न के ही दफ़न हो जाऊँगा।" वह उल्लू क़ब्रिस्तान में जाकर, क़ब्र खोदकर उसमें लेट गया और समझा कि मैं दफ़न हो गया। संयोग से एक आदमी अपने कन्धे पर अपने लड़के को, और पीठ पर एक गठरी लिये जा रहा था। उल्लू बसन्त ने सोचा कि इसके पास रोटी अवश्य होगी अतः उसने कहा-"अरे रास्ता चलने वाले आदमी! मुझे बड़ी भूख लगी है, थोड़ी रोटी दे दे।" पहले तो वह डरा परन्तु फिर उस उल्लू को देख कर बोला-"चलो मेरा लड़का लेकर गाँव में पहुँचा दो तो मैं तुमको रोटी दूँगा।" उल्लू बसन्त क़ब्र से निकल कर लड़के को लेकर कुछ दूर गया और कहने लगा-"सब तो कहते थे कि मरने पर चैन मिलता है परन्तु नहीं, मरने पर भी तो मजूरी करनी पड़ती है। अगर मैं घर ही में मजूरी करता तो भी रोटी मिल जाती, किसी ने ठीक कहा है:—

> अब तो घबरा के यह कहते हैं कि मर जायेंगे।
> मर के भी चैन न पाया तो किधर जायेंगे॥

लो भैया, तुम अपना लड़का मैं बाज़ आया ऐसा मरने से। अब तक जो मरा सो मरा अब कभी न मरूँगा।"

१५६-लोकाचार न जानने वाले

पंडितों की दुर्दशा।

किसी शहर में चार ब्राह्मण रहते थे उनमें परस्पर बड़ी मित्रता थी। एक दिन उन चारों ने सोचा कि कहीं विदेश में चलकर विद्या सीखनी चाहिये। दूसरे दिन चारों ब्राह्मण विद्योपार्जन के निमित्त कन्नौज को गये और वहाँ विद्यालय में जाकर पढ़ने लगे। बारह वर्ष तक निरन्तर परिश्रम करके उन्हों ने शास्त्रों का अध्ययन किया। एक दिन एक ने कहा—"भाई, अब हम लोग सभी शास्त्रों को पढ़ चुके, पंडित जी को गुरु दक्षिणा देकर हम लोगों को घर चलना चाहिये।" अस्तु पंडित जी को सन्तुष्ट कर उनकी आज्ञा लेकर अपनी २ पुस्तकें बाँध सब घर को चले। कुछ दूर आने पर उनको एक जगह से दो रास्ते निकले हुये मिले, सब वहीं बैठे गये। एक ने पूछा—"किस रास्ते से चलें?" इसी अवसर में कोई बनिया का लड़का मर गया था उसकी दाह क्रिया करने महाजन लोग उधर ही से जा रहे थे। उन चारों ब्राह्मणों में से एक ने पोथी खोली और कहाः—

"महाजनो येन गतः स पन्थाः"

इसका यह अर्थ लगाकर कि 'महाजन लोग जिस रास्ते से जाँय वही रास्ता है' सब के सब महाजनों के साथ हो लिये। श्मशान में पहुँचे तो क्या देखते हैं कि एक गधा खड़ा है। अब दूसरे ने पोथी खोली और कहाः—

"उत्सवे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रु संकटे ।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः ॥

अर्थात् उत्सव, व्यसन प्राप्ति, दुर्भिक्ष, शत्रुशंकट, राजद्वार और श्मशान में जो साथ दे वही बन्धु है अतएव यही सच्चा बन्धु है। " फिर क्या था बन्धु का आदर करना ही चाहिये, कोई गले लग रहा है कोई पैर दाब रहा है। थोड़ी देर पीछे एक ऊँट आता हुआ दिखलाई दिया। उन्हों ने कहा—" यह क्या है ?" तब तीसरे ने पोथी खोली और कहाः—

धर्मस्य त्वरिता गतिः ।

अर्थात् धर्म की शीघ्र गति होती है, यह बहुत जल्दी २ चल रहा है अतएव अवश्य ही यह धर्म है। चौथे ने कहा—" नीति कहती हैः—

इष्टं धर्मेण योजयेत् ।

अर्थात् इष्ट को धर्म के साथ संयुक्त करना चाहिये। " यह सोच कर सभों ने उस गधे को ऊँट की गर्दन में बाँध दिया। किसी आदमी ने धोबी से जाकर सारा हाल कह सुनाया। वह क्रोध में भरा हुआ पंडितों को इस करतूत का मजा चखाने को आया परन्तु तब तक वे चारो भाग गये थे। अभी चारो ब्राह्मण कुछ ही दूर गये थे कि रास्ते में एक नदी पड़ी उसमें एक ढाक के पत्ते को बहता देखकर एक ने कहाः—

"आगमिष्यति यत्पत्रं तदस्मांस्तारयिष्यति ।

अर्थात् जो यह पत्ता आ रहा है वह हम सभों को पार लगा देगा।" यह कह कर वह उसी पत्ते के ऊपर कूद पड़ा और लगा बहने। तब दूसरे पंडित ने बाल पकड़ कर कहाः—

" सर्वं नाशे समुत्पन्ने अर्द्धं त्यजति पंडितः ।
अर्द्धेन कुरुते कार्यं सर्वं नाशो हि दुःसहः ॥

अर्थात् सब नष्ट होते देख पंडित लोग आधा छोड़ देते हैं और आधे से ही अपना काम करते हैं क्योंकि सर्व नाश नहीं सहा जाता।" यह कह कर उसका शिर काट लिया। अब रह गये तीन। वे तीनों फिर आगे बढ़े, किसी गाँव में पहुँचे। गाँव वालों ने उनको निमंत्रण दिया। एक एक पंडित एक एक किसान के घर पर गये। एक ने सूत्रघृत खाँड़ से युक्त भोजन दिया, तब विचार कर पंडित नें कहा—"यद्दीर्घ सूत्री विनश्यति (दीर्घसूत्री नष्ट होता है)" ऐसा कह कर भोजन छोड़ दिया। दूसरे ने थाल में फैली हुई मिठाई दी, तब उसने कहा—"अतिविस्तार विस्तीर्णं तद्भवेन्न चिरायुषम् (बहुत बिस्तार वाली वस्तु चिरायु नहीं होती) वह भी भोजन छोड़ कर चला गया। तीसरे ने बरा भोजन करने को दिया, तब उस पंडित ने कहा—"छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति (छेद वाली चीज़ अनर्थकारी होती है)" यह सोच कर उस पंडित ने भी भोजन छोड़ दिया। इस प्रकार तीनों पंडित भूखे ही अपने घर चले गये।

अपि शास्त्रेषु कुशला लोकाचार विवर्जिताः।
सर्वें ते हास्यतां यान्ति यथा ते मूर्ख पंडिताः ॥

—*—

१५७-पढ़े तो हैं पर गुने नहीं।

एक ज्योतिषी ने अपने लड़के को ज्योतिष अच्छी प्रकार

पढ़ाया। जब वह सब विद्या सीख चुका तो वह किसी धनी के पास पहुँचा। वहाँ उसने अपने को ज्तोतिषी बताकर परीक्षा लेने को कहा उस धनी ने अपने हाथ में एक अँगूठी लेकर कहा—"बताओ मेरे हाथ में क्या वस्तु है?" उसने गणित करके बताया "आप के हाथ में जो वस्तु है वह गोलाकार है उसमें धातु भी है और उसमें छेद भी है तथा उसके साथ पाषाण भी है।" यहाँ तक तो उसका कहना ठीक था। उसने कभी अँगूठी नही देखी थी, अपने घर में चक्की देखी थी, इसलिए वह बोल उठा—"आप के हाथ में चक्की का पाट है।" पंडित होने पर भी उसकी बुद्धि में यह नहीं आया कि चक्की का पाट मुट्ठी में नहीं आ सकता वह धनी बोला कि आप पढ़े तो हैं पर गुने नहीं हैं।

केवल विद्या से ही काम नहीं चलता लौकिक व्यवहारों का जानना भी परमावश्यक है।

१५८-पढ़े लिखे मूर्ख।

एक वैद्य, एक ज्योतिषी, एक नैयायिक और एक वैयाकरणी ये चारो धन कमाने के लिये विदेश को निकले। चारो अपने अपने विषय के विद्वान् थे परन्तु बुद्धि के बिल्कुल कोरे थे। कुछ दूर जाकर किसी राजा की राजधानी के निकट ठहरे। सभों ने निश्चय किया कि "भाई, अच्छे मुहूर्त में नगर प्रवेश करना उचित है जिससे अधिक धन प्राप्त हो।" मुहूर्त

पूछने के लिये दूर जाने की आवश्यकता ही नहीं ज्योतिषी जी साथ ही थे। शेष तीनों ने ज्योतिषी जी से मुहूर्त पूछा। ज्योतिषी जी ने पत्रा निकाल हाथ पर मीन मेष और नक्षत्रों का हिसाब लगाकर बोले—"आज बारह बजे रात को सर्वार्थ सिद्धि योग है उसी समय नगर प्रवेश करना चाहिये, अवश्य कार्य सिद्ध होगा।" अब यह सम्मति हुई कि जब १२ बजे चलना होगा तो कुछ भोजन का भी प्रबन्ध कर लेना उचित होगा अतएव सब की राय हुई कि वैद्य जी को सामग्री खरीदने को भेजना चाहिये क्योंकि इनको सब वस्तुओं के गुण दोष ज्ञात हैं ऋतु काल का विचार कर अच्छी वस्तु लायेंगे और साथ में नैयायिक जी का भी जाना नितान्त आवश्यक ठहरा क्योंकि यह सोचा गया था कि ये दोनों परस्पर तर्क वितर्क द्वारा भोजन का ठीक निर्णय कर लेंगे। दोनों भोजन की सामग्री लेने चले। वैद्य जी सोचने लगे अमुक वस्तु कफ कारक है, अमुक वात वर्द्धक है और अमुक पित्त वर्द्धक। फिर ध्यान में यह आया कि "सर्व रोग हरो निम्बः" नीम सब रोगों को दूर करने वाली है यह विचार कर झट बन्दरों की नाईं एक नीम के पेड़ पर चढ़ गये और एक ऊँट के चारे के बराबर पत्ते गिराकर नैयायिकजी से कहा—"मैं तब तक पत्तों को समेटता हूँ आप लपक के घी लेते आइये।" नैयायिक जी ने दूकान पर घी लिया और लेकर चले आते थे कि अचानक दिल में यह सोचा—"घृताधारं पात्रं यदि वा पात्राधारं घृतं" घी पात्र के आधार से है अथवा पात्र का आधार घी है। फिर सोचा—"प्रत्यक्षस्य किं प्रमाणम्" जो वस्तु प्रत्यक्ष हो उसके लिये प्रमाण की क्या आवश्यकता, अनुभव

कर लें" यह सोचकर घी का बर्तन औंधा कर दिया। सारा का सारा घी धूल में मिल गया। हाथ झुलाते वैद्य जी के पास आये। वैद्य जी ने पूछा—"महाशय जी घी ?" उन्होंने कोरा पात्र दिखाकर सब कथा सुना दी। वैद्य जी ने पत्तों के दो गट्ठर बनाये, एक एक गट्ठर शिरपर रख कर डेरे पर पहुँचे। नीम के पत्तों का गट्ठर उतार कर ज़मीन पर दे मारा और पैर पोछ कर आसन पर बैठ गया। अब भोजन पकाने का काम वैयाकरिणी जी को सौंपा गया। उन्होंने झट कुम्हार के घर से दो मिट्टी के बर्तन लेकर पानी डालकर चूल्हे पर चढ़ा दिया। पत्तों को धोकर फिर कतर कर उनमें छोड़ दिया। थोड़ी ही देर में पत्ते 'बुद बुद बुद' चुरने लगे। वैयाकरिणी जी ने डाँट कर कहा—"अशुद्धं न वक्तव्यं अशुद्धं न वक्तव्यं।" परन्तु कोई मनुष्य हो तो माने। नीम के पत्ते किसकी सुनते। दो मिनट में और जोर से बुद बुद बुद करने लगे। वैयाकरिणी जी ने फिर कहा-"अशुद्धं किं वक्तव्यं।" कौन सुनता है। वैयाकरिणी जी और न सहन कर सके। घड़ों को ऐसा दे मारा कि पटाक करके रह गये। चारो पेट बाँध कर पड़ रहे। १२ बजतेही उठ खड़े हुये। अब राज दर्बार में जाने का समय हो गया। राज-भवन के द्वार पर जाकर देखा किवाड़ बन्द पाये परन्तु मूहूर्त कैसे टाल सकते थे, किवाड़ तोड़कर भीतर जाना चाहते थे कि सन्तरी ने आकर चारो को पकड़ लिया। हाथ में हथकड़ी और पाँव में बेड़ी पहिने दूसरे दिन न्यायालय में पेश किये गये। चारो को कारागार (जेल) की सजा मिली ॥

विना बुद्धि के विद्या किसी काम नहीं आ सकती, कहा भी है:—
बुद्धयैव विद्या सफला फलप्रदा, अबुद्धि विद्या विफला फलप्रदा

यथापि मूढ़ाश्चतुरोऽपि संगता, गतः प्रदेशं त्वधना पुरावपि।

बुद्धि ही से विद्या सुफल होती है बिना बुद्धि के विद्या व्यर्थ ही जाती है। जैसे इन चार बुद्धि रहित पंडितों की विदेश में दुर्दशा हुई।

—*—

१५९-विद्या दम्भ।

एक मियाँ ने जो कि बिल्कुल मूर्ख थे कहीं से दो शब्द फ़ारसी के सीख लिये थे-दीदम बले नगोयम् (इनका अर्थ यह है कि मैंने देखा है परन्तु बताऊँगा नहीं)। जब कभी किसी से कुछ कहना होता तो यही कह देते-दीदम बले नगोयम्। लोग समझते थे कि यह शख्स बहुत फ़ारसी जानता है। एक दिन एक मुग़ल का ऊँट खो गया। वह अपना ऊँट खोज रहा था। उधर से मियाँ साहब भी जा निकले। मुग़ल ने पूछा—"शुतरम दीदी" अर्थात् क्या मेरा ऊँट तूने देखा है? मियाँ ने अपनी चाल पर कह दिया—"दीदम बले नगोयम् (देखा है लेकिन न बताऊँगा)" बेचारे मुग़ल ने बहुत मन्नत की कि बता दीजिये। मियाँ साहब वही कहते जाते-दीदम बले नगोयम्। मुग़ल ने सोचा कि यह बदमाश कहता है कि "मैंने देखा है परन्तु बताऊँगा नहीं" अतएव उसने जूता उतार कर मियाँ के सर पर रशीद किये। मियाँ साहब चिल्लाते जाते और कहते जाते-दीदम बले नगोयम्। मुग़लने समझ लिया कि इसको केवल दो ही शब्द आता है इस लिये उसको छोड़ दिया।

विद्या दम्भ क्षणस्थायी धन दम्भ दिन त्रयम् ।
ऐब यह है कि करो ऐब हुनर दिखलाओ ।
वरना याँ ऐब तो हर फर्दो बशर करते हैं ॥

—*—

१६७-श्राद्ध करना तो सहज है परन्तु सीधा देना कठिन है ।

एक अहीर का बाप मर गया। उसने अपने बाप का श्राद्ध करनेके लिये पंडित को बुलाया। पंडित ने कहा-"चौधरी ! हम जैसे कहें वैसे ही तुम करना।" चौधरी ने कहा-"अच्छा महाराज !" पंडित जी श्राद्ध कराने लगे। चौधरी से कहा-"लो हाथ में जल अक्षत।" चौधरी ने भी कहा—"लो हाथ में जल अक्षत।" पंडित ने कहा—"तुम कहाँ के मूर्ख हो।" चौधरी ने भी कहा-"तुम कहाँ के मूर्ख हो।" पंडित ने क्रोध में आकर चौधरी के एक थप्पड़ जमा दिया और कहा—"बदमाशी करते हो।" चौधरी ने उठ कर पंडित को थप्पड़ जमाना शुरू किया। अब दोनोंमें घण्टों मार होती रही। अन्त में किसी प्रकार पंडित अपनी जान बचा कर घर चले। वहाँ उनकी ब्राह्मणी राह देख रही थी कि आज पंडित श्राद्ध कराने गये हैं खूब दक्षिणा मिलेगी जब पंडित घर पर पहुँचे तो उनकी दशा देख कर ब्राह्मणी सन्न हो गई और उसने चौधरी से इसका बदला लेने की ठानी। इधर चौधरी जी घर गये तो चौधरानी ने कहा-"श्राद्ध तो कर आये परन्तु सीधा तो यहीं धरा

रह गया !" चौधरी ने कहा--"श्राद्ध तो घण्टों होता रहा परन्तु सीधा देना भूल गया। अच्छा अब तुम जाकर पंडित के घर दे आओ।" चौधरानी सीधा लेकर चली। इधर ब्राह्मणी क्रोध में भरी ही थी। जैसे ही चौधरानी सीधा लेकर ब्राह्मण के घर पहुँची ब्राह्मणी ने चौधरानी को मारना आरम्भ किया। चौधरानी बेचारी किसी प्रकार भाग कर अपने घर आई। चौधरी ने पूछा--"सीधा दे आईं ?" चौधरानी ने कहा—"श्राद्ध करना तो सहज है परन्तु सीधा देना कठिन है। तुम सीधा देने गये होते तो समझ पड़ता।"

—— * ——

१६१-गीता की पोथी।

एक संन्यासी बाबा निरे मूर्ख थे कदाचित् उन संन्यासियों में से थे जिनके विषय में यह लोकोक्ति प्रसिद्ध है कि—

नारि मुई घर सम्पति नासी * मूँड़ मुड़ाय भये संन्यासी ॥

परन्तु बाबा जी ने भगवद्गीता का माहात्म्य सुन रक्खा था। एक दिन कोई भला आदमी अपनी गाड़ी पर सवार होकर सैर करने को जा रहा था, बाबा जी उसके आगे हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। उसने कहा-" महाराज कहिये आप क्या चाहते हैं ?" बाबा जी ने उत्तर दिया—" हम को गीता की एक पोथी मोल ले दो।" भले आदमी ने अपने नौकर को रुपया देकर कहा—"जाओ बाज़ार से बाबा के लिये एक गीता की पोथी ला दो।" महात्मा जी को पोथी मिल गयी। पोथी छोटे साइज़

(आकार) की थी और उसमें रेशमी लाल जिल्द बँधी थी। बाबा जी ने पोथी को लेकर उसे चूम कर कहने लगे " मेरी गीता, उत्तम, गीता मेरी श्री मद्भगवद्गीता।" बाबा जी ने यह सोचकर कि खुले रहने से इसकी जिल्द ख़राब हो जायगी उसको नये कपड़े में बाँध कर रख दिया। रात को एक चूहे ने बाबा जी का बस्ता काट दिया। बाबा जी ने दूसरे दिन बहुत ही बन्दोबस्त से पोथी रक्खी परन्तु फिर भी चूहे ने कुतर डाली। बाबा जी ने लोगों से पूछा—" भाई मेरी गीता की पोथी चूहे कुतर जाते हैं क्या उपाय करू।" लोगों ने कहा—" बाबा जी, आप एक बिल्ली पालिये, वह चूहों को मार कर खा जायगी तो आप की पोथी बच जायगी।" बाबा जी ने एक बिल्ली पाली। एक दिन बिल्ली ने एकाध चूहे मारे दूसरे दिन से सुस्त पड़ी रहने लगी। तब बाबा जी ने लोगों से फिर पूछा—" भाई, बिल्ली तो अब चूहे नहीं मारती।" लोगों ने कहा-" आप उसे कुछ खाने को भी देते हैं? कैसे मारे, वह तो भूख से स्वयं मर रही है। आप ऐसा कीजिये कि एक गाय पालिये। गाय का दूध पीकर बिल्ली मोटी हो जायगा और चूहों को मारेगी।" बाबा जी ने एक गाय भी, पाल ली। परन्तु गाय ने एक दिन तो दूध दिया, दूसरे दिन से कम दूध देने लगी और तीन चार दिन में दूध देना ही बन्द कर दिया। बाबा जी ने फिर लोगों से कहा—" भाई गाय तो दूध ही नहीं देती?" लोगों ने कहा—" आप उसे कुछ खाने को भी देते हैं कि गाय दूध ही दे। आप एक आदमी ऐसा रखिये, जो हरी हरी घास खोद कर गाय के लिये लाये। गाय घास खाकर दूध देगी, दूध पीकर बिल्ली चूहों को तोड़ेगी और आपकी पोथी

बचेगी।" दूसरे दिन एक भिखमंगी स्त्री से बाबा जी ने कहा—"यदि तू मेरी गाय के लिये हरी हरी घास ला दिया करे तो मैं तेरे खाने का प्रबन्ध कर दिया करूँगा। उसने स्वीकार किया। नित्य वह घास लाती। घास खाकर गाय मोटी ताज़ी हो गई, बिल्ली भी दूध पाने लगी। जो दूध बिल्ली से बचता बाबा जी और वह स्त्री पीती। कुछ दिन के पश्चात् बाबा जी ने उस स्त्री से सम्बन्ध कर लिया। उसके एक लड़का और एक लड़की उत्पन्न हुई। एक दिन बाबा जी एक कन्धे पर लड़का, दूसरे पर लड़की, बगल में पोथी, पीछे स्त्री, उसके पीछे गाय और सबके पीछे वही बिल्ली; इस प्रकार अपने सारे सामान के साथ चले जा रहे थे कि रास्ते में वही भला आदमी मिल गया जिसने बाबा जी को गीता की पोथी मोल ले दी थी। बाबा जी को इस प्रकार जाते देखकर उसने पूछा—"कहिये बाबा जी, आपने कितनी गीता पढ़ी?" बाबा जी ने उत्तर दिया—"केवल पाँच अध्याय।" लड़के की ओर संकेत करके यह एक अध्याय, लड़की की ओर संकेत करके यह दूसरा अध्याय, पीछे स्त्री की ओर देख कर यह तीसरा अध्याय, गाय को दिखा कर यह चौथा अध्याय और बिल्ली की ओर संकेत करके पाँचवाँ अध्याय।" भला आदमी हँस कर चला गया।

मूरख को पोथी दई, बाँचन को गुन गाथ।
जैसे निर्मल आरसी, दई अंध के हाथ॥

———o———

१६२-असम्बद्ध बार्ता।

एक वैद्य ने अपने शिष्य को वैद्यक खूब अच्छी तरह से पढ़ा दी। एक दिन वैद्यराज रोगी को देखने गये और अपने शिष्य को भी साथ लेते गये। उन्हों ने रोगी की नाड़ी देख कर कहा—"इसको सर्दी लग गयी है।" उपरान्त अपने शिष्य को भी नाड़ी दिखाई। उसने भी वैसा ही कहा फिर वैद्यराज बोले इसने गँड़ेरियाँ अधिक खाई हैं इसीसे सर्दी हुई है। रोगी ने मान लिया। घर आकर शिष्य ने कहा—"आपने मुझको सब विद्या नहीं पढ़ाई। कुछ अपने हाथ में रखली है। नहीं तो आपने कैसे कहा कि रोगी ने गँड़ेरियाँ खाईं ?" गुरु ने उत्तर दिया-"यह सब बातें चालाकी और ऊपरी व्यवहार से जानी जाती हैं। शास्त्रों में नहीं लिखी रहतीं। उस रोगी के घर में ईख के छिलके और गँड़ेरी की सीठी पड़ी थी। वही देख कर मैंने अनुमान से कह दिया था। शिष्य को यह अभिमान हुआ कि यह काम तो मैं भी कर सकता हूँ। इसमें विद्या का विशेष प्रयोजन नहीं है। एक दिन वह किसी रोगी को देखने गया। नाड़ी देख कर उसने कहा-"तुह्मारी नाड़ी में भारीपन है। तुमने कोई भारी चीज़ खाई है। चारो ओर देखा तो उसे कोने में घोड़े का साज रक्खा हुआ देख पड़ा। उस जगह घोड़े को न देख कर यह समझा कि वह घोड़े को खा गया है। इसलिए झट बोल उठा "मैं जानता हूँ कि तुमने घोड़ा खाया है तुह्मारी नाड़ी में घोड़ा उछल रहा है।" यह सुन कर रोगी ने उसको अपने घर से बाहर निकलवा दिया।

आदमीयत और शै है इल्म है कुछ और चीज़।
कितना तोते को पढ़ाया फिर भी हैवाँ ही रहा॥

——*——

१६३-मूरख को उपदेशिबो, ज्ञान गाँठ को जाय।

एक पण्डित जी अपने लड़के को धर्मशास्त्र पढ़ा रहे थे कि—

मातृवत् परदारेषु, परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः॥

पिता—पढ़ो बेटा, मातृवत् परदारेषु।
पुत्र—भला इसका अर्थ क्या हुआ?
पिता—पराई स्त्री को माता के समान समझना चाहिये।
पुत्र—हाँ तब तो मेरी स्त्री भी आप की माता होगी?
पिता—हट मूर्ख, ऐसी बात मत कह। पढ़-पर द्रव्येषु लोष्ठवत्।
पुत्र—क्या तात्पर्य?
पिता—पराई वस्तु मिट्टी के ढेले के समान समझनी चाहिये।

पुत्र—यह तो आपने अच्छी बात बताई। अब हलवाई को मिठाई का दाम क्यों देने लगा क्योंकि उसकी मिठाई भी मिट्टी के ढेले के समान है।

पिता—छिः मूर्ख, ज़रा समझ कर पढ़-आत्मवत् सर्व भूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।

पुत्र—इसका क्या अर्थ हुआ?

पिता—पण्डित वह है जो अपने समान सब को देखे।

पुत्र—ठीक हा है आज से पराई वस्तु और पराई स्त्री को भी अपनी ही समझेंगे।

पिता—धिक मूर्ख, तेरी बुद्धि क्या चरने गई है?

पुत्र—जाओ हटो हम नहीं पढ़ेंगे।

मूरख को उपदेशिबो, ज्ञान गाँठ को जाय।
कोयला सेत न होत है, सौ मन साबुन लाय॥
फूलै फलै न वेत, यदपि सुधा वरषहिं जलद।
मूरख हृदै न चेत, जो गुरु मिलहिं विरञ्चि सम॥

—*—

१६४-बेवकूफ और फजीहत।

एक आदमी का नाम वेवकूफ़ और उसकी स्त्री का नाम फ़ज़ीहत था। एक दिन वेवकूफ़ की स्त्री उससे झगड़ा करके कहीं चली गई। वेवकूफ़ अपनी स्त्री की खोज में जंगल की ओर चला। एक आदमी ने उससे पूछा—"तुम किसको खोजते फिरते हो?" वेवकूफ़ ने कहा—"अपनी स्त्री को।" उसने पूछा—"तुम्हारी स्त्री का क्या नाम है।" वेवकूफ़ ने उत्तर दिया—"फज़ीहत।" आदमी ने कहा—"और तुम्हारा नाम?" उत्तर दिया—"वेवकूफ़।" आदमी ने कहा—"तब तुम क्यों एक फ़ज़ीहत के पीछे हैरान

हो, बेवकूफ़ों को फ़ज़ीहत की क्या कमी। तुम जहाँ कहीं जाओगे तुमको "फ़ज़ीहत ही फ़ज़ीहत मिलेगी।"

—*—

१६५-मूर्खों के समाज में पंडितों की दशा।

एक गुरुजी अपने चेलों के गाँव में गये। उस गाँव में उनके दो चेले थे। दोनों ने गुरु का आना सुन कर उनकी सेवा करने का बिचार किया। एक गुरु का बायाँ पैर धोने लगा और दूसरा दाहिना। दोनों चेलों में परस्पर द्वेष था। वे दोनों नित्य गुरु के वही पैर धोते जो पहिले दिन धोये थे और दूसरे को छूते तक न। एक दिन दाहिना पैर धोने वाला चेला किसी काम से नहीं आया। गुरु ने दूसरे चेले से कहा—"आज दाहिना पैर धोने वाला नहीं है तुम्हीं दोनों पैर धो दो।" यह बात सुनकर वह बोला—"गुरु जी, वह तो मेरे प्रतिपक्षी का पैर है मैं उसे कभी न धोऊँगा।" जब गुरु जी ने बहुत हठ किया तो उस मूर्ख ने बिचारा कि आज अपने प्रतिपक्षी से बदला लेने का अच्छा अवसर है। तुरन्त दाहिने पैर पर एक पत्थर दे मारा जिससे गुरु जी का वह पैर टूट गया। गुरु जी ने यह समझ कर कि अब इसको दण्ड देने से क्या होगा कुछ न बोले। दूसरे दिन पहिला चेला लौट कर आया तो गुरु जी के पैर की दुर्दशा देख कर क्रोध से बोला—"उस दुष्ट ने द्वेष से मेरे हिस्से का पाँव तोड़

दिया है तो मैं उसके हिस्से का पैर क्यों न तोड़ डालूँ।" यह कह कर उसने गुरु जी का दूसरा पैर भी तोड़ डाला। गुरु जी बेचारे ऐसे मूर्खों को चेला बना ने पर पश्चाताप करते हुये पालकी में बैठ कर किसी प्रकार अपने घर लौट आये।

—*—

१६६-आज कल के भोजन

भट्ट ब्राह्मण।

आजकल तो ब्राह्मणों का यह हाल है कि यदि सुन पावें कि कल भोजन करने के लिये निमंत्रण आया है तो एक दिन पहिले ही से भोजन छोड़ दें जिससे कल अधिक भोजन कर सकें। यदि एक स्थान पर भोजन करने के पश्चात् किसी दूसरे स्थान का निमंत्रण आ जाय तो चाहे पेट फूट जाय परन्तु निमंत्रण अवश्य स्वीकार कर लें। एक बार किसी ब्राह्मण के यहाँ निमंत्रण आया। पुत्र ने पिता से कहा:-

"ऊर्ध्वं गच्छति डकारा, अधो वायुर्न गच्छति।
निमंत्रणमागतं द्वारे, किं करोमि पितामह॥

अर्थात्: बुरी डकारें आ रही हैं, उधर अधो वायु भी नहीं निकल रही है, निमंत्रण द्वार पर आया है, पिता जी क्या करना चाहिये ?" पिता ने उत्तर दिया।

बालकं वचनं श्रुत्वा, निमंत्रणं मानते ध्रुवम्।
मृत्युर्जन्म पुनरेव परान्नञ्च दुर्लभम्॥

अर्थात्, बेटा सुन, निमंत्रण अवश्य स्वीकार करले, कारण कि मरने पर तो जन्म फिर भी मिल जायगा परन्तु पराया अन्न संसार में दुर्लभ है।

—*—

१६७–आजकल के गुरु।

किसी ग्राम में एक पंडित जी रहते थे। एक दिन उनकी स्त्री ने कहा-"घर में आटा पीसने की चक्की नहीं है, कहीं से लाओ।" पंडित जी ने कहा-"कल ला दूंगा।" दूसरे दिन पंडित जी चक्की की खोज में निकले। कुछ दूर जाकर देखा कि एक बीन के घर में चक्की है, पंडित जी ने बीन से कहा-"तुम गुरुमुख हुये हो कि नहीं?" बीन ने कहा-"महाराज मैं तो जानता ही नहीं कि गुरुमुख होना किसको कहते हैं।" पंडित जी ने कहा-"हिन्दू हो कर जो गुरुमुख नहीं है वह चाण्डाल सदृश है मरने पर वह नर्कगामी होता है।" बीन ने कहा-"महाराज, यदि ऐसी बात है तो कृपा करके मुझे भी गुरुमुख कर दीजिए।" पंडित जी ने एक लोटे में जल मँगा कर आचमन कराकर उसके कान में मंत्र सुना दिया और गुरु दक्षिणा में वही चक्की लेकर अपने घर लौट आये। शाम को जब आटा पीसने की आवश्यकता हुई तो बीन की स्त्री ने बीन से पूछा-"आज चक्की नहीं दिखाई देती, क्या हो गई।" बीन ने कहा-"मैंने आज मंत्र लिया है, वही चक्की गुरुदक्षिणा में अमुक पंडित जी को दे दी है।" स्त्री ने कहा-"मंत्र जाये भाड़ में, बताइये अब आटा पीस-

ने कहाँ जाऊँ ?" बीन बेचारा चुप रह गया, स्त्री तुरन्त पंडित जी के घर गई और पंडित जी से कहा-"आपन मंत्रवा रौआँ फेरि लेईं अउर हमार यंत्रवा दै देईं, हमार अकाज होइ रहल बा।" विवश होकर पंडित जी को चक्की देनी ही पड़ी।

१६८-आजकल की गुरुसेवा।

एक मौलवी साहेब कुछ लड़कों को पढ़ाया करते थे और प्रत्येक लड़के से रोज़ कुछ न कुछ माँगा करते थे। मौलवी साहेब के विद्यार्थियों में एक साहूकार का लड़का भी पढ़ता था। उससे भी मौलवी साहेब माँगा करते परन्तु वह लड़का जब अपनी माँ से माँगता तो कुछ न पाता। एक दिन उसकी माँ ने खीर पकाई। जब खीर पक गई तो उसकी माँ किसी कार्यवश कहीं चली गयी। कुत्ते ने खीर में मुँह डाल दिया। आज उस लड़के की माँ ने कहा—"लो बेटा यह खीर मौलवी साहेब को दे आओ।" लड़का बहुत प्रसन्न हुआ। एक मिट्टी के बर्तन में मौलवी साहेब को खीर ले आया। मौलवी साहेब ने खीर खाई तो वह बहुत मीठी थी। उन्होंने लड़के से कहा—"क्या तेरी माँ मुझको बहुत चाहती है कि ऐसी बढ़िया खीर मेरे लिये भेजी।" लड़के ने कहा-" नहीं जनाब, आज कुत्ते ने खीर में मुँह डाल दिया था इसी लिये माँ ने कहा था कि यह खीर अपने मौलवी साहेब को दे आना।" यह सुन कर मौलवी साहेब बहुत बिगड़े और मिट्टी का बर्तन बड़े जोर से ज़मीन पर दे मारा। बर्त्तन फूट गया। लड़का रोने

लगा। मौलवी साहेब ने पूछा-"अबे रोता क्यों है ?" लड़के ने कहा-"माँ मुझको मारेगी।" मौलवी साहेब ने कहा माँ क्यों मारेगी, मैं तुझे दूसरा बर्तन मँगा दूँगा।" लड़के ने कहा-"आप क्या मँगा देंगे, मेरा छोटा भाई उसी में पाखाने जाया करता था।" मौलवी साहब सन्न हो गये।

भाइयो, आजकल ऐसी ही गुरुसेवा की जाती है। जो रुपया खोटा हो उसे भागवत पर चढ़ाते हैं। जो गाय मर रही हो ब्राह्मण को दान देते हैं "मुई बछिया बाभन के नाम।"

—*—
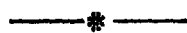
१६९-आजकल के शिष्य।

(स्त्री के शिष्य)

एक ब्राह्मण एक बज़ाज़ का गुरु था। बज़ाज़ बड़ा कंजूस था एक दिन ब्राह्मण को पोथी बाँधने के लिये एक कपड़े के टुकड़े की आवश्यकता हुई। ब्राह्मण ने अपने शिष्य से कपड़े का टुकड़ा माँगा। बज़ाज़ ने कहा-"यदि आपने पहिले कहा होता तो कुछ प्रबन्ध भी हो जाता इस समय तो नहीं हो सकता, अच्छा फिर कभी आकर स्मरण करा दीजियेगा।" ब्राह्मण निराश होकर चला गया। बज़ाज की स्त्री भीतर से सब सुन रही थी। उसने ब्राह्मण को बुलवा भेजा। जब ब्राह्मण आया तो उसने कहा—"आप घर के मालिक से क्या माँगते थे। गुरु जी ने सब कह सुनाया। स्त्री ने कहा-"महराज, आज आप जाइये कल प्रातःकाल आप

को टुकड़ा मिल जायगा।" जब बज़ाज १० बजे रात को दूकान बढ़ाकर घर में गया तो उसकी स्त्री ने कहा-"क्या आपने दूकान बढ़ा दी ?" बज़ाज ने कहा-"हाँ, बढ़ा तो दिया, क्यों ?" स्त्री ने कहा-"अभी दूकान पर जाकर अच्छे से अच्छे कपड़ों के दो टुकड़े लाइये।" बज़ाज ने कहा "जल्दी क्या है, कल प्रातःकाल मिल जायगा।" स्त्री बोली-"मुझे अभी इसी समय आवश्यकता है, देर न कीजिये। इसी समय जाइये।" बज़ाज़ अब करे तो क्या करे। धर्म का गुरु ब्राह्मण होता तो हीला करने से मान जाता परन्तु अब को तो बड़े ज़बरदस्त गुरु (स्त्री) से पाला पड़ा था। न जाता तो डर था कि स्त्री कहीं बरस न पड़े। निदान बज़ाज़ आधी रात को गया और कपड़े लाया। स्त्री ने प्रातःकाल गुरु के पास कपड़ा भेजकर कहला दिया कि जब कभी किसी वस्तु की आवश्यकता पड़े मुझ से माँग लीजियेगा।

आप ने देखा आजकल के मनुष्य धर्म के गुरु के चेले नहीं हैं किन्तु बड़े ज़बरदस्त गुरु (जोरू) के चेले हैं।

—*—

१७०-गुरु और मंत्र।

किसी जहाज के मस्तूल पर एक चिड़िया बैठा दी गई थी। जहाज समुद्र में जा रहा था। चारों ओर दुर्गम समुद्र ही समुद्र था। चिड़िया को और कोई स्थान न दिखाई देता था जिस पर वह बैठती। चिड़िया अपने मन में सोचने लगी कि इस मस्तूल पर मैं दिन क्यों कर काटूँगी। कहीं हरा पेड़ मिलता तो उस

पर बसेरा करती, मैं अवश्य कोई हरा वृक्ष अपने लिये खोजूँगी। यह बिचार कर वह चिड़िया उड़ी। कोसों पूर्व की ओर चली गई कहीं वृक्ष का पता न लगा। फिर उत्तर की ओर कोसों गई सिवा पानी के और कुछ न दिखाई दिया। इसी प्रकार पश्चिम और दक्षिण की ओर कोसों उड़ी परन्तु पानी के सिवा कुछ दृष्टि में न आया। अन्त में जब वह उड़ते-उड़ते थक गई तो फिर मस्तूल पर जा बैठी और कहने लगी कि अब मैं इसी मस्तूल पर रहूँगी कारण कि अन्य कोई स्थान मेरे रहने के लिये नहीं है। उस दिन से वह शान्त हो गई और सुख से अपने दिन काटने लगी।

इसका दार्ष्टान्त यों है कि गुरु ने जीवात्मा रूपी चिड़िया को मंत्ररूप मस्तूल पर बैठा कर कहा था कि यही तुह्मारे संसार सागर में रहने की जगह है जब तक जीवात्मा हरे वृक्षों की खोज में उड़ता रहा चैन न पाया। जब यह बिचार दृढ़ कर लिया कि मुझको बचाने के लिए इसके परे और कुछ नहीं है तब उसको शान्ति का अनुभव हुआ।

—*—

१७१—बिना आचरण के लोग पीछे नहीं चलते।

किसी आदमी का लड़का बहुत बीमार था। वह अपने लड़के को लेकर एक तटस्थ साधु के पास गया। साधु ने लड़के

को देख कर कहा—" अच्छा, आज जाओ, कल आना तो औषधि बताऊँगा।" वह आदमी चला गया। दूसरे दिन जब फिर महात्मा के पास गया तो महात्मा ने कहा—"लड़के को मीठा खाने को न देना, वह स्वयं अच्छा हो जायगा।" उस आदमी ने कहा—" तो महाराज यह बात आप कल ही बता देते।" साधु ने कहा—"निस्सन्देह मैं यह बात कल ही बता सकता था परन्तु कल मेरे पास मिश्री रक्खी थी। उसको देख कर कदाचित् लड़का सोचता कि बाबा जी कपटी हैं। स्वयं तो मिश्री खाते हैं और मुझको मना करते हैं, इस प्रकार मेरे कहने का कुछ भी प्रभाव न पड़ता।"

कहता तो बहुते मिले, गहता मिला न कोय।
सो कहता वह जान दे, जो गहता न होय॥

———*———

१७२—आचरणहीन उपदेशक।

चार मियाँ नमाज़ पढ़ रहे थे। उनमें से एक नमाज़ पढ़ते समय कुछ बोल उठा। दूसरे ने बिगड़ कर कहा—"क्यों रे बेवकूफ़! नमाज़ पढ़ते कहीं बोला जाता है? तेरी नमाज़ तो खता (भंग) हो गई।" तीसरे ने दूसरे को ढकेल कर कहा—" अरे मियाँ होश सम्हालो तुम भी तो बोल रहे हो न? तुम्हारी ही नमाज़ कहाँ पूरी उतरी।" इस प्रकार तीसरे को बोलते देख चौथे से भी न रहा गया उसने तीसरे मियाँ से कहा—" आप बहुत नसीहत देने चले हैं दूसरों को तो सिखाते हैं आप खुद गुफ्तगू

(बात चीत) कर रहे हैं।" एक पाँचवाँ आदमी पास खड़ा हुआ सारा हाल देख रहा था, उसने कहा—"तुम चारों की नमाज़ भंग हो गई सभी ने बारी बारी बोल दिया। आजकल के उपदेश ऐसे ही हैं स्वयं तो उस बात पर आचरण नहीं करते औरों को सिखाते फिरते हैं। ठीक है:—

पर उपदेश कुशल बहुतेरे * जे आचरहिं ते नर न घनेरे ॥
निज आचरण सुधारत नाहीं * औरन उपदेशत न लजाहीं ॥

—*—

१७३-व्याख्याता और श्रोता।

प्राचीन समय में ग्रीस देश में डिमेड्स नाम का एक प्रसिद्ध व्याख्याता हो गया है। एक दिन वह एक सभा में व्याख्यान दे रहा था परन्तु उसके व्याख्यान की ओर किसी भी सुनने वाले का ध्यान न था। उसने श्रोताओं का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के अनेक प्रयत्न किये परन्तु सब व्यर्थ हुये; क्योंकि उन श्रोताओं का ध्यान, पास ही कुछ लड़के एक खेल खेल रहे थे, उस ओर था। अन्त में उसने सब श्रोताओं को सम्बोधन करके एक कहानी कहना आरम्भ किया—"एक समय वृहस्पति मक्खी और चिड़िया साथ साथ घूमने को निकले। इतना सुनते ही सब श्रोताओं का ध्यान उस ओर हो गया और सब बड़ी उत्सुकता से सुनने लगे। व्याख्याता ने फिर कहा—"घूमते घूमते तीनों जने एक नदी के किनारे पहुँचे। मक्खी तैर कर उस पार चली गई।" इतना कह कर उसने फिर अपना पहिले का

भाषण आरम्भ किया, इतने में ही सब श्रोतागण एक दम घबरा कर जोर से बोले-"अरे वृहस्पति का क्या हुआ, वे नदी कैसे पार हुये ?" इस पर व्याख्याता ने उत्तर दिया—"वृहस्पति नदी पार ही नहीं हुये, वे अभी तक इसी पार खड़े हैं और कहने लगे कि मूर्ख मनुष्य जब गप्पाष्टक छोड़ कर महत्व पूर्ण व्याख्यान सुनने लगेंगे तभी हम नदी के पार होंगे।" फिर सब लोग व्याख्यान सुनने लगे।

महत्व पूर्ण विषयों को सुनने की अपेक्षा सामान्य लोगों का ध्यान मनोरञ्जक बातों की ही ओर अधिक तर लगता है।

—*—

१७४—अयोग्य श्रोता (१)

किसी स्थान पर एक पंडित जी कथा कह रहे थे। उन्हों ने कहा—"मुखादग्निरजायत अर्थात् ब्रह्मके मुख से अग्नि उत्पन्न होती है।" श्रोताओं में एक लाला साहब भी थे। आप जानते हैं कि कायस्थ लोग बड़े होशियार होते हैं उन्हों ने समझा ब्राह्मण के मुँह से आग निकलती है। किसी दिन लाला जी कहीं न्योते जाने लगे सीधा सत्तू तो सब बाँधा परन्तु तम्बाकू पीने के लिये दियासलाई यह सोच कर न ली कि कहीं न कहीं ब्राह्मण मिल ही जायगा बस उसके मुँह से आग मिल जायगी जब कुछ दिन चढ़ आया तो दाना पानी करने के लिये एक इँदारे पर उतरे उस पर एक ब्राह्मण स्नान कर रहा था। लाला

जी ने कहा—"आप कौन हैं ?" ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि "हम ब्राह्मण हैं।" लालाजी ने सोचा कि अब तो तम्बाकू का भी बन्दोबस्त (प्रबन्ध) हो गया। जब लाला जी स्नान करके कुछ जलपान कर चुके तो तम्बाकू पीने की आवश्यकता हुई। जब तक लाला जी नहाते धोते रहे वह ब्राह्मण वहीं एक पेड़ के नीचे सो गया। लाला जी ने इधर उधर देख कर झट एक कण्डा उठाया और ब्राह्मण के मुँह के पास करके फूँकने लगे, परन्तु आग न जली। लाला जी ने कण्डे को ब्राह्मण के मुँह में ठूँसना आरम्भ किया ब्राह्मण जाग पड़ा। ब्राह्मण ने कहा—"भाई, यह क्या कर रहे हो ?" लाला जी ने कहा—"मैंने कथा में सुना था कि ब्राह्मण के मुख से अग्नि उत्पन्न होती है सो तम्बाकू पीने के लिये आग ले रहे हैं।" ब्राह्मण देवता भी थे पूरे पण्डित, उन्होंने झट अपना सोंटा उठा लाला जी की खोपड़ी रंग दी। लाला जी घबरा कर कहने लगे-"हैं हैं यह क्या ?" पंडित जी ने कहा मेरे यहाँ ब्रह्मभोज है चटनी के लिये कैथा फोड़ रहे हैं आप कायस्थ हैं न ?"

१७५-अयोग्य श्रोता (२)

एक व्यास जी कथा कह रहे थे। व्यास जी ने कहा—"जो है सो श्रोता चार प्रकार के होत हैं- गपुआ श्रोता, तकुआ श्रोता, लखुआ श्रोता, और भकुआ श्रोता। गपुआ श्रोता वह होत हैं जो कथा में बैठे २ गप्प लड़ावत हैं। तकुआ श्रोता वह कहलावत हैं जो यह ताकत हैं कि अच्छी कथा आवे तो सुनें। लखु-

आ श्रोता वह होत हैं जो अरथ लखा करत हैं और भकुआ श्रोता वह हैं जो कथा में सोवत हैं।" जब कथा समाप्त हो गई तो एक श्रोता ने कहा—"व्यास जी महाराज, भला राम राक्षस थे कि रावण?" व्यास जी ने कहा—"जो है सो बचा न राम राक्षस थे न रावण राक्षस तो हम थे जो ऐसे श्रोतों को कथा सुनाते थे।"

मुक्ता फलैः किं मृग पक्षिणाञ्च, मिष्टान्न पानं किमुगर्दभानाम्।
अन्धस्य दीपो, बधिरस्य गानं, मूर्खस्य किं शास्त्र कथा प्रसंगः॥

—*—

१७६-तीन प्रकार के घोड़े।

एक पंडित जी कथा बाँचते थे। उनसे किसी ने पूछा—"पंडित जी घोड़े कितने प्रकार के होते हैं?" पंडित जीने कहा—'तीन प्रकार के; एक तो लद्दू टट्टू, जिन पर सदा ही बोझा लादा जाता है और वे बोझा ही ढोते २ मर जाते हैं। दूसरे रिसाले के घोड़े जो कि बाजे की आवाज के साथ सदा कवायद परेड किया करते हैं, उनका जीवन दौड़ते ही बीत जाता है। तीसरे तोपखाने के घोड़े, जो हजारों गोलों के चलने पर भी अपने कान नहीं उठाते क्योंकि उनको विश्वास हो चुका है कि यह गोले तो यों ही चला करते हैं, इनके चलने से मेरी कुछ भी हानि नहीं है।" फिर प्रश्न करने वाले ने पूछा—"पंडित जी वह घोड़े होते कहाँ हैं?" पंडित जी ने कहा—"सभी जगह, यहीं श्रोताओं में सब मौजूद हैं।" प्रश्नकर्ता ने कहा—"महाराज! यह सब तो आदमी हैं, कुछ घोड़े और चौपाये नहीं हैं।" पंडित जी ने कहा—"देखो हम

समझाये देते हैं-"लद्दू टट्टू तो वह मनुष्य हैं जो रात दिन स्त्री पुत्रों के बोझ को ढोते रहते हैं और यही करते २ मर जाते हैं। रिसाले के घोड़े वह हैं जो नित्यही कर्म रूपी कवायद करते करते अपना जीवन व्यतीत कर देते हैं। तीसरे तोप के घोड़े वह मनुष्य हैं जो सांसारिक कितने ही गोलों के चलने पर अटल रहकर सदा ही सत्पथ पर चले जाते हैं।"

—*—

१७७-पल्लड़ झाड़।

एक लाला जी नित्य ही कथा सुनने जाया करते थे। एक दिन उनका छोटा लड़का भी उनके साथ कथा सुनने गया। उस दिन की कथा में एक बात यह भी आई कि जो मनुष्य पानी पीती या खाती हुई गाय को भगाता है वह चाण्डाल है। दूसरे दिन वही लड़का अपनी दूकान पर बैठा था, एक गाय आकर उसकी दूकान में अनाज खाने लगी। लड़के ने कथा तो सुनी ही थी सोचा कि गाय को हाँकना पाप होगा इसलिये उसे खाने दिया। गाय अनाज खा कर चली गई। जब लाला जी कथा से लौट कर आये तो दूकान पर दाना इधर उधर पड़ा देख कर लड़के से पूछा-"यह अनाज क्यों इधर उधर पड़ा है?" लड़के ने कहा-"एक गाय खा रही थी। मैंने कथा में सुना था कि खाती हुई गाय को हाँकने वाला चाण्डाल सदृश है इस लिए मैंने गाय को अनाज खाने दिया और हाँका नहीं।" लालाजी ने बिगड़ कर कहा-"छिः मूर्ख! यदि हम आज तक तेरी ही तरह

कथा सुनते होते तो घर कैसे रहता। जो कोई कथा सुनने जाता है क्या वह कथा बाँध कर लिये आता है? तू तो कथा बाँध लाया है। कथा इस प्रकार सुनी जाती है कि जब कथा सुनने गये तो चादर का एक कोना फैला दिया, चलते समय वहीं झाड़ कर कह दिया कि पंडित जी! यह लो अपनी कथा!"

आजकल ऐसे ही पल्लड़ झाड़ वाले श्रोता दिखाई देते हैं जो कथा सुनने को तो सुन लेते हैं परन्तु उस पर आचरण नहीं करते। भला ऐसी कोरी कथा सुनने से क्या लाभ?

—*—

१७८-भेषधारी।

एक बिल्ली ने एक घड़े में लोभ से मुँह डाला। संयोग से घड़े में उसका शिर फँस गया, किसी तरह घड़ा तो फूट गया लेकिन घड़े का मुँह बिल्ली की गर्दन ही में लगा रह गया। एक दिन वह बिल्ली चूहों से कहने लगी—"तुम लोग हम को क्यों डरते हो, अब तो हमने माँस खाना छोड़ दिया; मैं केदारनाथ का दर्शन करने गई थी, यह देखो केदार कंकण कंठ में पहिन रखा है, अब तो मैं भगवत् भजन में ही लवलीन रहती हूं और किसी जीव को सताना पाप समझती हूँ।" पहिले तो चूहे डरे परन्तु जब वे उसके निकट आते तो बिल्ली शान्त चित्त होकर बैठी रहती, कुछ भी न बोलती, यहाँ तक कि चूहे उसकी पीठ पर भी चढ़ जाते और बिल्ली चुपचाप बैठी रहती। परन्तु बिल्ली ऐसी चालाकी करती कि चूहों को कुछ भी ज्ञात न होता। जब सब

चूहे जाने लगते तो सब से पीछे के चूहे को बिल्ली पकड़ कर खा जाती। कुछ दिन चूहों को न समझ पड़ा परन्तु उनकी संख्या दिनों दिन घटने लगी। एक दिन एक बुड्ढे चूहे ने एक बाँड़े चूहे से कहा—"आप हम लोगों के हित के लिये आज सब से पीछे रहिये।" समझाने बुझाने पर बाँड़ा चूहा राजी हो गया। उस दिन सब से पीछे बँड़ऊ थे, बिल्ली ने उन्हीं पर अपना हाथ साफ किया। जब बँड़ऊ को चूहों ने न देखा तो बिल्ली की चालाकी समझ गये और बिल्ली से कहाः—

केदार कंकणं कण्ठे तीर्थवासी महा तपः
सहस्र मध्य शतं हन्ति बण्ड पुच्छं न दृश्यते।

अर्थात—केदार कंकण कण्ठ में पहिनने वाले, तीर्थवासी तपस्वी ने हजार में से सौ को मार डाला, इसका प्रमाण यह है कि आज बँड़ऊ दृष्टि नहीं आते।

तुलसीदास जी ने कहा हैः—

करि सुभेष जग बंचक जेऊ ❋ भेष प्रताप पूजियत तेऊ॥
उघरे अन्त न होय निबाहू ❋ कालनेमि जिमि रावण राहू॥

———*———

१७९-लम्पट।

एक पादरी साहब एक मछली वाले की दूकान के पास खड़े होकर ईसाई मत पर व्याख्यान दे रहे थे और कह रहे थे कि महात्मा मसीह के पास ईश्वर वाक्य उतरा करते थे। कुछ देर पश्चात् जब व्याख्यान समाप्त हुआ तो घात पाकर एक मछली

उठा कर अपने पाकिट (जेब) में रख ली परन्तु मछली बड़ी थी इस कारण दिखलाई पड़ती थी। जब दूकान वाले ने मछली कम पाई तो समझा कि यह पादरी साहब ही की कि करतूत है तुरन्त दौड़ कर पादरी साहब से बोला—"सुनिये साहब, आपके उपदेश का तो बहुत शीघ्र मुझ पर प्रभाव पड़ा। ईश्वर वाक्य भी उतरा है। पहला वाक्य यह है कि—

या तो मछली छोटी चुरावै, या तो पाकिट बड़ी रखावैं।

ऐसा कह कर पाकिट से मछली खींच ली। पादरी साहब खिसिया कर रह गये। भला ऐसे लम्पटों के उपदेश से क्या देश का हित होगा।

—*—
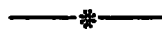
१८०--शेखचिल्ली।

शेखचिल्ली नाम का एक आदमी रेलवे स्टेशन पर कुली का काम करता था। एक दिन एक बाबू साहब ने शेखचिल्ली से कहा—"क्यों रे, यह घी का घड़ा उस मुहल्ले में पहुँचा देगा?" शेखचिल्ली ने कहा—"हुजूर, मेरा काम ही क्या? क्या मिलेगा?" बाबू साहब ने कहा-"दो आना" शेखचिल्ली ने घड़ा उठा लिया। आगे २ बाबू जी चले पीछे २ शेखचिल्ली। शेखचिल्ली मन में सोचने लगा, आज दो आने मिलेंगे, दो आने की लूँगा मुर्गी! मुर्गी बहुत से अण्डे बच्चे देगी उस को बेचकर बकरी लूँगा। बकरी के बच्चे वगैरह बेचकर गाय लूँगा। गाय

के बछड़े वग़ैरह बेचकर भैंस लूँगा । फिर भैंस में खूब लाभ होगा तो घर बनाऊँगा । घर बनवाने के बाद अपना विवाह करूँगा, कुछ दिन में मेरे लड़के बच्चे होंगे । जब बच्चा आकर कहेगा—"चलो मियाँ खाना खालो, अम्मा बुलाती हैं ।" तो मैं शिर हिलाकर कहूँगा "अभी मैं न खाऊँगा"। शिर का हिलना था कि घी का घड़ा धड़ाम से ज़मीन पर आ गिरा और फूट गया । बाबू साहब ने पीछे की ओर देखकर कहा—"एँ यह क्या ? बेवक़ूफ़ कहीं का घड़ा फोड़ डाला ?"। शेखचिल्ली कहा-"साहब, आप का तो एक घड़े घी ही का नुकसान हुआ यहाँ तो बसा बसाया घर ही उजड़ गया ।" बाबू साहब ने दो हण्टर मारा, शेखचिल्ली चिल्लाता हुआ भाग गया ।

जो लोग मन ही मन हवाई क़िले उठाया करते हैं उनकी यही दशा होती है ।

—*—

१८१-लाल बुझक्कड़ ।

किसी गाँव में लाल बुझक्कड़ रहते थे उसी गाँव से होकर एक हाथी निकल गया उसके पैरों के चिन्ह पृथ्वी पर धूल में बन गये । गाँव के लोगों ने उस चिन्ह को देख कर बहुत सोचा कि यह क्या है परन्तु किसी की भी समझ में न आया । सब ने कहा—"लाल बुझक्कड़ को बुलाना चाहिये वही बतावेगा कि यह क्या है ।" एक पुरुष दौड़ा दौड़ा गया और लाल बुझक्कड़ को बुला लाया जब लाल बुझक्कड़ वहाँ पहुचे तो सब ने

पूछा—"बताइये गुरुजी यह किस का चिन्ह है?" लाल बुझक्कड़ खूब हँसे। लोगों ने पूछा—"आप हँसे क्यों?" लाल बुझक्कड़ ने कहा—"हम हँसे इसलिये कि तुम लोग हमारे शिष्य होकर ऐसी साधारण बात नहीं जान सकते।" फिर लाल बुझक्कड़ रोने लगे। सब ने पूछा—"आप रोये क्यों?" लाल बुझक्कड़ ने कहा—"रोये इस कारण कि मेरे पश्चात् तुम लोगों को कौन ऐसी बातें बतायेगा।" अच्छा अब सुनो यह किस जन्तु का चिन्ह है:—

बूझैं लाल बुझक्कड़, और न बूझै कोय।
पैर पसेरी बाँधि के, हरिन न कूदा होय॥

सब गाँव वालों ने कहा—"बहुत ठीक, गुरुजी!"

कुछ दिन पीछे एक मनुष्य उसी गाँव से गाड़ी पर एक कोल्हू लादे लिये जा रहा था। कोल्हू बहुत भारी था, बैल एक ही था खींच न सकता था। गाड़ीवान ने वहीं गाड़ी खड़ी करदी और दूसरा बैल लेने के लिये दूसरे गाँव में चला गया। लाल बुझक्कड़ के गाँव वालों ने कभी कोल्हू न देखा था। किसी की समझ में न आया कि यह क्या है। निदान लाल बुझक्कड़ बुलाये गये। आते ही उन्हों ने कहा—"अखवा!

बूझै लाल बुझक्कड़ और न काहू जानी।
पुरानी होकर गई ये खुदा की सुरमा दानी॥

गाँव वालों ने कहा—"धन्य हो गुरुजी, बहुत ठीक!"

१८२-देख तिरिया की चाले, शिर मुड़ा मुँह काले।

किसी समय एक पुरुष और स्त्री में इस बात का विवाद हुआ कि स्त्री और पुरुष दोनों में कौन बुद्धिमान और चालाक है। स्त्री अपनी जाति की प्रशंसा करती थी और पुरुष अपने को श्रेष्ठ बताता था। एक दिन स्त्री बीमारी का बहाना कर के लेट रही। उसके स्वामी ने बहुत दवा की परन्तु कुछ भी आराम न हुआ। एक दिन स्त्री ने अपने पति से कहा—"यदि अपनी माँ को शिर मुड़ा कर गधे पर चढ़ाकर मेरे सामने ले आओ तो मैं अच्छी हो जाऊँ।" वह समझ गया कि यह मुझसे चालाकी करना चाहती है। इस लिये उसने अपनी ससुराल जाकर अपनी सास से कहा—"तुम्हारी लड़की मरणासन्न है, यदि तुम शिर मुड़ा कर गधे पर सवार हो कर उसके सामने चलो तो वह बच सकती हैं अन्यथा कोई दूसरा उपाय नहीं है।" माँ को लड़की की माया बहुत होती है उसने शिर मुड़वा लिया और गधे पर सवार हो कर लड़की के द्वार पर आ गई। उस पुरुष ने अपनी स्त्री से कहा—"यह देखो, माँ आ गई।" उस स्त्री ने अपनी सास समझ हँस कर कहा—"

देख तिरिया की चाले।
सिर मुण्डा मुँह काले॥

इसके उत्तर में पुरुष ने कहा—

"देख मर्दों की फेरी।
माँ तेरी कि मेरी ?"

यह सुन कर और अपनी माँ को यह दुर्दशा देख कर स्त्री लज्जित हो गई ॥

चालाक मनुष्य से चालाकी नहीं चलती।

—*—

१८३-बामन बचन परमान।

एक ब्राह्मण एक जाट को गंगा जी के किनारे श्राद्ध करा रहे थे चन्दन न था अतएव ब्राह्मण ने गंगा जी की बालू का टीका जाट के मस्तक पर लगा दिया। जाट ने कहा—"यह क्या ? आपको चन्दन का टीका देना चाहिये था।" ब्राह्मण ने कहा-"यजमान की जै रहे। बामन बचन परमान, गंगाजी की रेणुका तू चन्दन करके जान।" जाट चुप हो रहा। जब दक्षिणा देने का समय आया और ब्राह्मण ने गोदान का संकल्प करने को जाट से कहा तो उसने एक मुट्ठी बालू लेकर देना चाहा। ब्राह्मण ने कहा—"यजमान यह क्या ? तुमको गऊ या उसका उचित दाम देना चाहिये।" जाट ने कहा—"जाट बचन परमान, गंगा जी की रेणुका, तू कपिला करके जान।" ब्राह्मण देवता खिसिया कर रह गये।

हे तीर्थ गुरुओ! सोच लो कैसा तुम्हारा नाम है।
यजमान का उद्धार करना ही तुम्हारा काम है।

पर आज आत्म सुधार के भी दीखते लक्षण कहाँ।
चेतो उठो, फिर तुम हमारे कर्णधार बनो यहाँ॥

—*—

१८४-यहाँ कोई नैयायिक तो नहीं है ?

कुछ आदमी नाव पर दरिया पार कर रहे थे। सब ने परस्पर मिल कर यह सलाह की कि मन बहलाने के लिए कोई कहानी कहनी चाहिये। एक ने कहा-"यदि यहाँ कोई नैयायिक न हो तो मैं एक कहानी कहूँ। सबों ने कहा—"कहो यहाँ कोई नैयायिक नहीं है।" उसने कहानी आरम्भ की—"एक मिट्टी के ढ़ेले और एक पीपल के पत्ते में बड़ी मित्रता थी। जब पानी बरसने लगता तो पत्ता ढ़ेले को ढ़ँक लेता था और जब हवा चलने लगती तो ढ़ेला पत्ते के ऊपर बैठ जाता था। इस प्रकार दोनों एक दूसरे की सहायता करते थे।" सुनने वालों में से एक आदमी ने कहा-"और जब पानी और हवा साथ साथ होते तो क्या होता था।" कहानी कहने वाले ने कहा—"निकले न एक नैयायिक इसी लिए तो मैंने पहिले ही कहा था कि यहाँ कोई नैयायिक तो नहीं है।"

हर बात में न्याय या झूठे तर्क से काम नहीं चलता।

—*—

१८५-मेरा बैल न्याय नहीं पढ़ा है।

एक पंडित ने जो न्याय शास्त्र के ज्ञाता थे एक तेली से पूछा—"तुम ने अपने कोल्हू के बैल के गले में घण्टी क्यों बाँध रक्खी है ?" उसने उत्तर दिया—"जब हम काम पर नहीं भी होते तो घण्टी के शब्द से यह ज्ञात हो जाता है कि बैल खड़ा है या अपना काम कर रहा है।" नैयायिक ने कहा—"यदि बैल खड़ा होकर अपनी गर्दन हिलाया करे तो घण्टी तो बजती रहेगी, तुमको कैसे मालूम होगा कि बैल खड़ा है ?" तेली ने उत्तर दिया महाराज जी, मेरा बैल न्याय नहीं पढ़ा है। यदि न्याय पढ़ा होता तो हम तेलियों का काम ही न चलता।" पंडित जी खिसियाने से हो गये।

सब बातों में अगर मगर लगाने या झूठी तर्क करने से काम नहीं चल सकता है॥

—*—

१८६-मार के आगे भूत भागे।

एक कर्कशा स्त्री ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो कोई मेरे साथ विवाह करेगा मैं रोज सवेरे उसके शिर पर पाँच जूतियाँ मारूँगी। जूतियों के डर से कोई उसके साथ विवाह नहीं करता था। एक हृष्ट पुष्ट नौजवान ने यह सोच कर कि जब मैं पति व वह स्त्री हो जायगी तो वह मारना छोड़ देगी, उसके साथ विवाह कर

लिया। चार छः दिन के बाद जब उसकी खोपड़ी जूतियों की मार से पिल पिली हो गई तो उसने अपनी स्त्री से विदेश जाने की आज्ञा माँगी। स्त्री ने कहा—"तुम चले जाओगे तो मैं अपना हाथ किस पर साफ करूँगी ?" उनके आँगन में एक ठूठा पेड़ था उसको दिखाकर पति ने कहा—"तुम अपना हाथ इस पेड़ पर साफ़ कर लेना।" वह परदेश चला गया। उस ठूठे पेड़ पर एक भूत रहता था। जब वह कर्कशा नित्य पाँच जूतियाँ पेड़ पर मारती तो उस भूत के चोट लगती। भूत ने मन में सोचा कि किसी प्रकार इसके पति को घर लौटा लाना चाहिये नहीं तो यों ही रोज़ जूतियाँ खानी पड़ेंगी। भूत ने परदेश में जाकर उस आदमी से कहा—"तुम अपने घर लौट चलो।" उसने कहा—"मैं रोजगार के लिये आया हूँ कुछ कमा लूँ तो चलूँ।" भूत ने कहा—"मैं तुमको बहुत सा धन दिला दूँगा। वह इस प्रकार कि मैं राजा की रानी के शिर पर चढ़ूँगा और तुमको छोड़ कर और किसी के भी झाड़ने से न उतरूँगा, तुम बहुत सा रुपया राजा से माँग लेना और घर चले जाना।" ऐसाही हुआ भी। वह आदमी धन लेकर जूतियों की डर से घर तो न गया वरन् वहीं रहने लगा। वह भूत वहां से उतर कर किसी दूसरी रानी के सिर पर जा चढ़ा। वहाँ के राजा ने उस आदमी की प्रशंसा सुनी थी अतएव भूत उतारने के लिये उसी को बुलाया। ज्योंही वह उस रानी के पास गया जिसपर भूत चढ़ा था रानी ने आँखें लाल करके कहा—"क्यों रे दुष्ट ! मैंने तुझे बहुत सा धन भी दिलवा दिया फिर भी तू अभी तक अपने घर नहीं गया ? अब मैं नहीं उतरूँगा।" तब उस मनुष्य ने रानी के कान में भूत से

कहा—"जिस स्त्री की मार के डर से हम तुम भागे भागे फिरते हैं वह हमको तुमको ढूँढ़ने यहां आ रही है। इतना सुनकर भूत ने सोचा कि यदि आज मैं रानी को न छोड़ कर भाग जाऊँगा तो फिर वही जूतियाँ और मेरा शिर होगा, यह सोचकर भूत रानी को छोड़ कर भाग गया।

—————*—————

१८७-अंधेर नगरी अनबूझ राजा, टके सेर भाजी, टके सेर खाजा।

किसी राजा के राज्य में सब वस्तुयें टके सेर बिकती थीं। एक साधु दो चेलों को साथ लिये हुये उसी नगर में पहुँचे। साधु ने नगर वालों से नगर का नाम पूछा। उन्होंने कहा-" अन्धेर नगरी चौपट राजा, टके सेर भाजी, टके सेर खाजा। साधु जी ने सोचा ज़रा नगर की सैर कर लें तो चलेंगे। बज़ाज़ की दूकान पर पूछा—"बच्चा, मारकीन कितने गज।" उसने कहा—" बाबाजी, टके सेर, मलमल टके सेर।" फिर साधु ने तरकारी वाले से पूछा—"भाई पालक कितने सेर?" उसने कहा-"लेलो, टके सेर, गोभी टके सेर।" फिर साधु ने बनिये से पूछा—"लाला जी चावल कितने सेर?" उसने कहा—"भाई, टके सेर, गेहूँ टके सेर मटर टके सेर।" बाबा जी ने अपने दोनों चेलों से कहा—"चलो यहाँ से चलें क्योंकिः—

सेत सेत जहँ एक से, दूध अरु दही कपास।
ताहि राज्य में भूलिहूँ करिय न कबहूँ वास॥

एक चेले ने कहा—"महाराज, आप लोग जाइये, हम तो यहीं मजे से टके सेर मलाई लेकर दोनों समय खायेंगे और डण्ड पेलेंगे।" साधु ने कहा—"अच्छा रहो, परन्तु यदि तुम पर कोई आपत्ति आवे तो मैं अमुक ग्राम में रहूँगा, मुझे बुला लेना।" गुरु जी एक चेले को साथ लेकर चले गये। दूसरा चेला दोनों समय टके सेर मलाई खा खाकर खूब मोटा ताजा हो गया।

जब बरसात आई तो एक तेली की दीवार गिर पड़ी जिसमें एक गड़रिये की भेड़ दब गई। तेली ने राजा के पास नालिश की—"महाराज, गड़रिये की भेड़ ने मेरी दीवार कुचल डाली।" राजा ने गड़रिये से बुलाकर पूछा—"क्यों तेरी भेड़ ने तेली की दीवार कुचली?" गड़रिये ने कहा—"मैं क्या करूँ राज ने दीवार कमजोर बनाई थी, राज का अपराध है मेरा नहीं।" राजा ने राज से पूछा—"तूने दीवार कमजोर क्यों बनाई जिससे भेड़ ने तेली की दीवार कुचल डाली।" राज ने कहा—"गारेवाले ने गारा ढीला कर दिया उसका अपराध है, मेरा नहीं।" अब राजा ने गारा वाले को बुलाकर पूछा—"क्यों रे गारा वाले, तूने गारा क्यों ढीला किया जिससे राज से दीवार कमजोर बनी और भेड़ ने तेली की दीवार कुचल डाली।" गारावाले ने कहा-"महाराज, मैं क्या करूँ, भिश्ती ने पानी अधिक डाल दिया जिससे गारा ढीला हो गया।" भिश्ती का अपराध था न कि मेरा।" फिर राजा ने भिश्ती को बुलाकर पूछा-"क्यों रे भिश्ती, तूने पानी क्यों अधिक डाला जिससे गारावाले से गारा ढीला बना, राजसे दीवार कमजोर बनी और भेड़ ने तेली की दीवार कुचल डाली?" उसने कहा—हुजूर, मशक बनाने वाले ने मशक बड़ा बना दिया।

जिससे उसमें पानी अधिक आ गया और गारा ढीला हो गया। "मशक बनाने वाले का कसूर है न कि मेरा।" राजा ने मशक बनाने वाले को बुला कर पूछा—"क्यों रे मशक बनाने वाले तूने मशक बड़ा क्यों बनाया जिससे भिश्ती से ज्यादा पानी आया और गारा वाले से गारा ढीला बन गया और राज से दीवार कमजोर बन गयी जिससे भेड़ ने तेली की दीवार कुचल डाली ?" उसने कहा—"हुजूर, कोतवाल शहर ने शहर की सफ़ाई नहीं कराई जिससे बीमारी में बड़े बड़े जानवर मरे और मशक बड़ी बन गई, कोतवाल शहर का अपराध है न कि मेरा।" अब कोतवाल शहर को बुला कर राजा ने पूछा—"क्यों जी कोतवाल ! तुमने शहर की सफ़ाई क्यों नहीं कराई जिससे बड़े २ जानवर मरे और मशक वाले से मशक बड़ी बन गई और भिश्ती से पानी अधिक पड़ गया और गारा वाले से गारा ढीला बन गया और राज से दीवार कमजोर बनी और भेड़ ने तेली की दीवार कुचल डाली।" कोतवाल शहर से कुछ उत्तर न बन पड़ा और उसको फाँसी का दण्ड मिला। जब जल्लादों ने फाँसी पर कोतवाल को चढ़ाया तो कोतवाल दुबले पतले थे अतएव फाँसी न लगी। जल्लादों ने राजा से जाकर कहा—"हुजूर ! कोतवाल पतले हैं फाँसी नहीं लगती।" राजा ने कहा—"मैं समझ गया, वह मोटा आदमी मांगती है, जाओ नगर में जो सबसे मोटा आदमी हो उसको पकड़ कर फाँसी पर चढ़ाओ।" जल्लादों को खोजते २ वही चेला मिल गया जो गुरु जी के साथ न जाकर टके सेर की मलाई खा खाकर मोटा हो गया था। जल्लादों ने कहा—"चलो, तुमको फाँसी पर चढ़ावेंगे।" चेले ने घबरा

कर कहा-"मेरा क्या अपराध है ?" जल्लादों ने उत्तर दिया-फाँसी मोटा आदमी माँगती है।" अब तो चेला बहुत घबराया और किसी प्रकार अपने गुरु को बुला भेजा। चेला फाँसी पर ज्यों ही चढ़ाया जा रहा था कि गुरु जी आ गये। चेले से पूछा गया-"किसी से भेंट करना चाहते हो ?"। चेले ने कहा—"गुरुजी से मिलना है।" आज्ञा मिल गई। चेले से गुरुजी ने धीरे से कह दिया कि तुम कहो कि हम फाँसी पर चढ़ेंगे और हम कहें कि हम चढ़ेंगे तो मैं तेरे प्राण बचा दूँ। अब चेला कहने लगा—"मैं फाँसी पर चढ़ूँगा।" गुरु ने कहा—"तुम कैसे चढ़ोगे, मैं चढ़ूँगा" दोनों ने झगड़ा करना आरम्भ कर दिया। राजा तक समाचार पहुँचा। राजा ने कारण पूछा तो गुरु ने कहा—"आज ऐसा मुहूर्त है कि जो कोई फाँसी पर चढ़ेगा वह उस जन्म में समस्त भूमंडल का राजा होगा और अन्त में मुक्ति पायेगा।" राजा ने कहा—"यदि यह बात है तो हटो तुम दोनों, मैं स्वयं फाँसी पर चढ़ूँगा।" राजा स्वयं फाँसी पर चढ़ गया।

भले बुरे जहँ एक से, तहाँ न बसिये जाय।
ज्यों अन्याय पुर में बिके, खर गुड़ एकै भाय॥

—*—
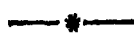
१८८-एक झूठा।

एक आदमी नित्य ही मन्दिर में कथा सुनने को जाता था एक दिन कथा वाचक ने कहा—"

झूठ कबहुँ नहिं बोलिये, झूठ पाप कर मूल।
झूठे की कोऊ जगत में, करै प्रतीति न भूल॥

इस बात को सुन कर वह आदमी तीन चार दिन कथा में नहीं गया। जब पाँचवें दिन फिर कथा में गया तो पंडित ने पूछा—"तुम बीच में कहाँ चले गये थे।" उसने उत्तर दिया-" महाराज मैं झूठ को छोड़ने गया था।" पंडित ने पूछा—"कहाँ छोड़ा और कैसे छोड़ा?"। उस आदमी ने कहा—"महाराज जब मैंने जंगल में जाकर झूठ को छोड़ा तो वह साँप होकर मेरे पीछे दौड़ा तब मैं एक पहाड़ पर चढ़ गया। फिर झूठ हाथी बन कर मेरे पीछे दौड़ा. तब मैं समुद्र में कूद पड़ा, फिर झूठ मछली बन कर समुद्र में भी मेरे पीछे दौड़ा तब मैं समुद्र के उस पार लोकालोक पर्वत पर चढ़ गया और उस ओर कूद पड़ा। वहीं झूठ को छोड़ कर मैं चला आया।" पंडित ने कहा-"अच्छा किया झूठ को छोड़ आये हो जब तुम झूठ को छोड़ आये हो तब तो इतनी झूठ बोलते हो यदि न छोड़ आते तो ईश्वर जाने कितनी झूठ बोलते।"

१८९-असम्भव का सम्भव।

एक आदमी के पास एक घोड़ा था। जब वह खर्चे से तंग आकर परदेश जाने लगा तो उसने अपने पड़ोसी के यहाँ अपना घोड़ा बाँध दिया और उससे कहा-" आप घोड़े को खिलाइये पिलाइयेगा और सवारी कीजियेगा। जब मैं परदेश से लौट कर

आऊँगा तो मेरा घोड़ा दे दीजियेगा।" उसने मान लिया। घोड़ा का मालिक परदेश चला गया। कुछ दिन के पश्चात् जब वह परदेश से लौटा तो उसने अपने पड़ोसी से अपना घोड़ा माँगा। पड़ोसी ने लालच में आकर घोड़ा बेच डाला था। माँगने पर पड़ोसी ने कहा—" उसके तो कोई रोग हो गया था, घोड़ा मर गया। यदि न मानो तो जहाँ वह जंगल में फेंका गया है, हम दिखा दें।" घोड़े का मालिक अपने घोड़े की हड्डी इत्यादि देखने जंगल में गया। पड़ोसी ने जंगलमें पहुँच कर एक बैल की हड्डी दिखा कर कहा—"यह देखो, तुम्हारे घोड़े की हड्डी है।" घोड़े के मालिक ने कहा—" इसके सर पर तो सींग है, यह बैल है न कि घोड़ा।" पड़ोसी ने कहा—" आप के घोड़े को यही तो रोग था कि वह घोड़े से बैल हो गया था।"

—— * ——

१६०-टेढ़ी खीर।

कुछ आदमी बैठे हुये खीर का बखान कर रहे थे, एक अन्धा मनुष्य भी वहीं बैठा था। उनकी बात सुनकर उसके मुँह में पानी भर आया। उसने उन लोगों से पूछा-" भाई, खीर कैसी होती है?" उन लोगों ने उत्तर दिया—"सफेद सफेद।" अन्धा सफेद और काला क्या समझे उ ने फिर पूछा—" सफेद कैसे होता है?" लोगों ने कहा—" जैसे बगुला।" अन्धे ने फिर पूछा—" बगुला कैसे होता है उन लोगों में से एक ने अपने हाथ को बगुले के आकार का बनाकर अन्धे से कहा-देखो, बगुला

ऐसा होता है।" अन्धे ने अपने हाथ से उसका हाथ टटोला और कहा--"ना बाबा, यह तो टेढ़ी खीर है; मैं न खाऊँगा नहीं तो मेरे गले में फँस जायेगी।" सब लोग हँसने लगे।

—— * ——

१६१-आँख के आगे नाक

सूझे क्या ख़ाक।

पुराने काल में किसी आदमी की नाक किसी अपराध के दण्ड में काट ली गई, जब वह नक्टा हो गया तो उसने सोचा कि लोग मुझको देख कर हँसेगे अतएव दो चार को अपना साथी बनाना चाहिये। यह सोच कर वह नकटा नाचने लगा और लोगों से पूछे जाने पर कहने लगा—"मुझको ईश्वर दिखाई देता है।" और लोगों ने कहा—'हमें क्यों नहीं दिखाई देता।" उसने झट जवाब दिया—"आँख के आगे नाक, सूझे क्या ख़ाक। अर्थात् तुमलोगों के तो आँख के आगे नाक है इसलिए ईश्वर नहीं दिखाई देता, नाक कटालो तो देखने का रास्ता साफ़ हो जाये और ईश्वर दिखाई देने लगे।" कई लोग उसके बहकाने में आ गये और अपनी २ नाक कटा डाली। उस आदमी ने सब के कान में कह दिया—"भाई सूझता तो कुछ नहीं है, न ईश्वर दिखाई देता है और न भूत परन्तु अब तो तुह्मारी नाक कट ही गयी, जुड़ेगी नहीं अतएव अब तुम भी कह दो कि ईश्वर दिखाई देता है। ऐसा करने से हमारा झुण्ड बड़ा हो जायगा और

हम पर कोई हँसेगा नहीं।" नये नक कटों ने भी कहना आरम्भ कर दिया कि "हमको ईश्वर सूझता है।" होते होते उनका एक बड़ा भारी झुण्ड हो गया। उस देश के राजा ने नक कटों के सर्दार से कहा—"हम भी ईश्वर को देखना चाहते हैं, क्या उपाय है" नक कटों के सर्दार ने झट वही कह दिया—"आँख के आगे नाक, सूझे क्या खाक?" राजा ने अपनी नाक कटाने का मुहूर्त्त निश्चित किया। राजा का मंत्री बहुत योग्य मनुष्य था। उसने राजा से कहा—"महाराज! पहिले हम अपनी नाक कटा कर देख लें कि ईश्वर दिखाई देता है या नहीं, यदि ईश्वर दिखाई देगा तो आप भी अपनी नाक कटवा लीजिएगा, वरन् कोई आवश्यकता नहीं।" राजा ने उसकी बात मान ली। शुभ मुहूर्त्त में मंत्री ने अपनी नाक कटवाई और नककटों के सर्दार से कहा-"दिखाओ, हमें ईश्वर को।" सर्दार ने वही बात कही जो उसने और नक कटों से कही थी अर्थात्, अब तो आपकी नाक कट ही गयी, जुड़ सकती नहीं, आप भी कह दीजिए कि हमको ईश्वर दिखाई देता है।" परन्तु मंत्री ने राजा से साफ़ साफ़ बतला दिया-"महाराज, ईश्वर तो दिखाई नहीं देता, इन लोगों ने अपना झुण्ड बढ़ाने के लिए यही उपाय निकाला है। आप अपनी नाक कटा कर व्यर्थ में ईश्वर के देखने के प्रलोभन में पड़ कर अपनी सुन्दरता नष्ट न करें।" राजा ने मंत्री की बुद्धि और स्वामि भक्ति की प्रशंसा की और सब नक कटों को कोड़े मार मार कर भगा दिया।

जो धोखे वश किसी दूसरे पन्थ में आ जाता है वह भी उसी पन्थ की संख्या बढ़ाने की कोशिश करता है।

१९२-जबलौं निबही तबलौं खाब

नाहीं तौ अपने घर को जाब !

एक निरक्षर पंडित माला तिलक से सुसज्जित होकर किसी राजा के दरबार में पहुँचा। उसने राजा से प्रार्थना की—" धर्मावतार, मैं एक प्रसिद्ध पंडित हूँ; यहाँ के सब लोग मुझे अच्छी तरह जानते हैं, अतः आपसे प्रार्थना है कि मुझे कोई पुरश्चरण का भाग दें।" राजा ने उससे देवालय में जाप करने को कहा। पंडित को तो कुछ आता जाता था ही नहीं—" जाप जपी भाई जाप जपी " का जप करने लगे। दूसरे दिन उसी प्रकार का फिर कोई पंडित आया और राजा ने उसे भी उसी मन्दिर में भेज दिया वह डर रहा था कि ऐसा न हो वहाँ कोई विज्ञ पंडित हो तो मेरी पोल खुल जाय। वहाँ पहुँच कर पहिले पंडित को भी अपना सा जान कर वह जपने लगा—"तुहूँ जपो सो हमूँ जपी।" एक तीसरे मूर्ख पंडित को भी राजा ने उसी प्रकार मन्दिर में भेजा। तीसरा पंडित भी जाकर " यह अन्धेर कबलौं निबही " का जाप करने लगा। चौथा पंडित भी मन्दिर में जाकर " जब लौं निबहो तबलौं खाब " जपने लगा। अन्त में एक पाँचवाँ पंडित भी जो कि उन्हीं लोगों की नाईं मूर्ख था राजा से जाप की आज्ञा लेकर उसी मन्दिर में जा पहुँचा। वहाँ उसने अपने सरीखे सब को जान तथा एक दूसरे का उत्तर देते समझ कर वह भी चौथे पंडित के उत्तर में " नाहीं तौ अपने घर को जाव " कहने लगा। संयोग वश एक दिन जब राजा उस मन्दिर में

गये तो उन बेचारे पंडितों की पोल खुल गयी। राजा ने थोड़ा २ धन देकर सबको विदा कर दिया।

करि सुवेष जग बञ्चक जेऊ * भेष प्रताप पूजियत तेऊ॥
उघरे अन्त न होय निबाहू * काल नेमि जिमि रावण राहू॥

परन्तु—

कियेहु कुभेष साधु सनमानू * जिमि जग जामवन्त हनूमानू॥

—*—

१६३-छत फोड़कर लक्ष्मी।

किसी आदमी ने यह प्रण किया कि हम काम कुछ न करेंगे जब ईश्वर को देना होगा तो छत को फोड़ कर लक्ष्मी देगा। ऐसी प्रतिज्ञा करके वह घर को बन्द करके लेट रहा। दो तीन दिनों के बाद जब उसे पाख़ाने की हाजत हुई तो गया और दस्त न उतरा तो एक झाड़ी को पकड़ कर ज़ोर किया। ज़ोर पड़ने से वह झाड़ी उखड़ गयी। उस के नीचे दो अशर्फियों के घड़े पड़े थे पर उसने उन्हें न उठाया और प्रतिज्ञा पर दृढ़ रह कर जा लेटा। जब रात को चोर आये और दीवार खोदने लगे तो उनसे कहा—"क्यों व्यर्थ परिश्रम करते हो यदि धन चाहो तो अमुक स्थान से उठा लाओ" जब वे वहाँ गये तो देखते क्या हैं कि उन घड़ों में साँप और बिच्छू भरे पड़े हैं क्योंकि वह धन उनके भाग्य का न था चोरों ने क्रोधित होकर उस साँप और बिच्छू भरे घड़े को छत काटकर उस आदमी के ऊपर डाल दिया। उसके भाग्य का वह धन था इस लिए गिरते ही अशर्फियाँ हो

गईं, तब उस आदमी ने अपनी प्रतिज्ञानुसार धन पाकर अपने घर में रख लिया।

जब ईश्वर देता है तो सब प्रकार से देता है ॥

—*—

१६४- मोर दलिद्दर कामे आयो।

किसी गाँव में एक ब्राह्मण रहता था जो अपने आलस्य के कारण दरिद्र था। वह कभी कुछ काम न करता था। उसके घर में एक मूसल को छोड़ कर और कुछ न था। जब कभी किसी वस्तु की आवश्यकता पड़ती तो पड़ोसियों से माँग कर अपना काम चलाना ही उसका काम था। एक दिन गाँव में आग लग गयी। सब लोग अपना सामान बचाने और आग बुझाने की धुन में थे। वह दरिद्र ब्राह्मण अपना मूसल लेकर नाचने लगा और कहने लगा—"मोर दलिद्दर कामे आयो, मोर दलिद्दर कामें आयो।" लोगों ने कहा—"यह क्या ?" उसने उत्तर दिया—"यदि मैं भी तुम लोगों की तरह बहुत सा सामान रखता तो आज व्याकुल होना पड़ता। मेरा दरिद्र आज काम में आया, मैं चैन से नाच रहा हूँ तुम लोग हाय २ कर रहे हो।"

पाठको सोचिये, पाखाने की डर से भोजन भी न करना, जल जाने या चोरी जाने की डर से घर में कुछ सामान ही न रखना यह मूर्खता—बल्कि वज्र मूर्खता नहीं तो क्या है।

—*—

१६५-वाह जी खूब समझे। (१)

एक मौलवी साहब एक मुसल्मानों के गाँव में गये। रोजे लगने को दो ही तीन दिन बाक़ी थे। मौलवी साहब ने गाँव वालों से पूछा—"तुम लोग रोजे रखते हो, नमाज़ पढ़ते हो?" गाँव वालों ने जवाब दिया—"हम लोग तो जानते ही नहीं रोजे कितने हैं और कब आते हैं। नमाज़ क्या है?"। मौलवी साहब ने कहा—"रोजे तीस हैं और चाँद निकलने पर आते हैं। नमाज़ दिन में पाँच बार होती है।" मौलवी साहब तो इतनी बताकर चले गये। दो तीन दिन बाद जब चाँद निकला तो गाँव के कोई सौ मुसलमान लाठी लेकर रोज़े ढूँढ़ने निकले। संयोग से ऊँटों का एक क़ाफ़िला आ रहा था जिसमें ३० ही ऊँट थे। गाँव वालों ने समझा यही रोज़े हैं। क़ाफ़िले वालों से कहा—"सुनो भाई, मौलवी साहब ने हम लोगों को रोज़े रखने को कहा है इसलिये अपने सब रोज़े हमको दे दो हम रखेंगे।" पहिले तो काफिले वालों ने उनका मतलब ही न समझा, जब मालूम हुआ कि यह लोग ऊँट को रोज़ा समझ रहे हैं तो उन्होंने देने से इन्कार किया। गाँव वालों ने अपनी २ लाठियाँ सम्भालीं और लगी होने मार पीट। कुछ आदमी मरे कुछ घायल हुये परन्तु रोजे गाँव वालों के ही हाथ लगे। उन लोगों ने ऊँटों को एक मकान में बन्द कर दिया। ऊँटों के दो बच्चे भी वहीं पैदा हुये। एक दिन वही मौलवी साहब फिर उसी गाँव में आ पहुँचे और गाँव वालों से पूछा—"क्यों जी तुम लोग रोजे रखते हो, नमाज पढ़ते हो?" गाँव वालों ने कहा—"बड़ी मुश्किल से रोजे

तो हम लोगों ने रख लिये परन्तु हमारा नुक़सान बहुत हुआ, कई आदमी मरे और कई आदमी घायल हुये। खैर रोजे तो रक्खे परन्तु नमाज हम से न रक्खी जायगी। मौलवी साहब ने कहा—"अच्छा हमको दिखाओ देखें हम तुम्हारे रोजे।" गाँव वालों ने मौलवी साहब को उस मकान के पास जहाँ ऊँट बँधे थे खड़ा कर दिया। मौलवी साहब तो लाहौल बिला कह कर भागने लगे। गाँव वालों ने कहा-"मौलवी साहब! भागिये नहीं, हमने लाहौल और बिल्ला दोनों बच्चों को भी रख लिया है। बेचारे मौलवी साहब तो ऐसे भगे जैसे ककड़ी के खेत से सियार भागते हैं।

शराफ़त को सरे आफ़त, दुआ को हम दग़ा समझे।
पड़े इस अक़्ल पर पत्थर अगर समझे तो क्या समझे।

दो० मूरख को उपदेशिबो, ज्ञान गाँठ को जाय।
कोयला सेत न होत है, सौ मन साबुन लाय॥

—*—

१९६-वाह जी खूब समझे। [२]

एक नगर में एक धनी बनिया रहता था। जब उसके मरने की अन्तिम घड़ी निकट आगई तो उसने अपने एक मात्र पुत्र को बुलाकर कहा-"बेटा, अब तो मैं जाता हूँ जितनी सम्पत्ति है सब तुम्हारी है। आज से तुमको सब सँभालना है इस लिये मेरी तीन बातों का सदा ध्यान रखना यही मेरी अन्तिम वसीयत है:-

(१) साया साया आना, साया साया जाना।
(२) सदा मीठा खाना।

(३) किसी को कुछ देकर माँगना नहीं।

बनिये के मरने पर लड़के ने अन्तेष्ठि की। दो तीन दिन घरसे बाहर न निकला एक दिन नौकरों को बुलाकर कहा—"दूकान से घर तक टीन छवा दो।" नौकरों ने वैसाही किया। बनिये का लड़का टीन के नीचे २ साया साया दूकान पर आने जाने लगा और रोज मिठाई ही खाने लगा। जिस को ऋण देता उससे कभी न माँगता। फल यह हुआ कि मिठाई खाते २ उसका स्वास्थ्य भी बिगड़ गया और ऋण देकर न माँगने से सब धन भी गायब हो गया। लड़के की बहुत शोचनीय दशा हो गई। एक दिन एक महात्मा उधर आ निकले उन्हों ने लड़के की दशा देखकर उसका कारण पूछा। बनिये के लड़के ने कहा—"मेरे पिता ने मरते समय तीन शिक्षायें दी थीं उन्हीं का पालन करने से मेरी यह दुर्दशा हुई।" यह कह कर लड़के ने सब हाल बता दिया। महात्मा ने कहा—"वाह जी! खूब समझे। यदि उन शिक्षाओं का ठीक अर्थ समझते तो ऐसा कभी न होता। अच्छा सुनो उनका मतलब यह था:—

(१) साया साया जाना, साया साया आना—अर्थात् तड़के उठकर दूकान पर जाना और शाम को आना।

(२) सदा मीठा ही खाना—अर्थात् सदा सन्तोष रूपी मीठा खाना।

(३) किसी को देकर माँगना नहीं—अर्थात् जिसको ऋण देना उसकी कोई वस्तु बन्धक रख लेना जिससे माँगने की आवश्यकता न पड़े वह स्वयं रुपया दे जाये।

इस अर्थ पर चलने से वह फिर वैसा ही सुखी हो गया।

तात्पर्य यह है कि हम लोग कभी कभी बड़ों की शिक्षा का ठीक अर्थ न समझ कर उन्हें बुरा बताते हैं और लाभ के बदले हानि उठाते हैं ॥

—०—

१९७-चोर का दिल

एक बार किसी रईस के लड़के ने पाखाना फिरते समय अपने सामने एक पका बेर देखा उसने उसे उठाकर खा लिया। पाखाने फिर कर हाथ मुँह धो कुल्ला इत्यादि कर रण्डी का नाच देखने गया। रण्डी जब नाचते २ उसके सामने आई तो यह तान छेड़ीः—

मैं तो जान गइउँ रे, मैं तो जान गयउँ रे।

इसको सुन कर रईस के लड़के ने समझा कि "शायद मेरे पाखाने के वक्त बेर खाने की बात इसको ज्ञात हो गई। ऐसा न हो किसी से कह दे तो मेरी हँसी हो।" यह सोच कर उसनें अपनी अँगूठी उतार कर उस रण्डी को दे दी। रण्डी को उस बेर का क्या हाल मालूम, उसने समझा यह लटका लाला जी ने बहुत पसन्द किया, इसलिये फिर आरम्भ कियाः—

मैं तो कह दूँगी, मैं तो कह दूँगी।

इस वाक्य को सुन कर रईस के लड़के को पूरा बिश्वास हो गया कि इसे अवश्य ही बेर का वृत्तान्त ज्ञात है अतः उसने अपना नया दुशाला उतार कर बाई जी को ओढ़ा दिया कि वह प्रसन्न होकर

किसी से यह बात न कहे। रण्डी ने समझा अवश्य ही ऐसी तानें लाला जी को पसन्द हैं नहीं तो इनाम पर इनाम देने के क्या मानी ? अतएव तीसरी बार फिर वैसे ही तान छेड़ीः—

समय आ गया रे, अब मैं कहती हूँ ।

अब रईस के लड़के ने सोचा सब कुछ दे देने पर भी हरामज़ादी नहीं मानती कहती है "अब मैं कहती हूँ" इसलिये तमक कर कहा—"क्या कहती है ? कह क्यों नहीं देती ? हगे बेरही तो खाये हैं, और क्या किया है।" सब लोग हँस पड़े।

पाठको आपने देखा कि चोर का दिल कितना कमज़ोर होता है। यदि किसी ने कुछ पाप किया है तो हर बात से वह उसी का अर्थ निकालता है।

१६८—मैं ने तीन दफे गुड़ खाया है।

एक जीभ का चटोरा अपने मित्र किसी बनिये के पास मिलने के लिए गया। बनिये के यहाँ गुड़ का चालान आया था। गुड़ को देख कर चटोरे के मुँह में पानी भर आया। कुछ इधर उधर की बातें कर के उसने अपने मित्र से कहा—"मैंने अपनी उमर भर में सिर्फ तीन बार गुड़ खाया है।" बनिए ने कहा—"कब कब ?" चटोरे ने कहा—"एक तो जब मैं पैदा हुआ था तब मेरी माँ ने घुट्टी में घोल कर पिलाया था। दूसरी बार जब मेरा कान छेदा जा रहा था तब मुझे इसलिए खाने को दिया गया था कि

मैं रोऊँ नः और तीसरी बार यह नया गुड़ जो आपके यहाँ अभी खाऊंगा।" बनिये ने कहा—"यदि मैं तुमको अपना गुड़ खाने के लिए न दूँ तो ?" चटोरे ने जवाब दिया—"अच्छा तो दो ही दफ़े सही।

स्वार्थी मनुष्य पहिले ही से अपने स्वार्थ साधन के लिए टिप्पस जमाता है॥

—*—

१९९-हिसाब समझो।

दो मित्र मिलकर सैर करने चले। जब वे गंगा के किनारे पहुँचे तो एक ने दूसरे से कहा—"भाई तुम यहाँ खड़े रहो तो मैं जल्दी से एक गोता लगा लूँ।" इतना कह बीस रुपये उसे सौंप, कपड़े किनारे पर रख ज्यों ही वह पानी में पैठा, त्यों ही चालाकी से दूसरे ने सब रुपया किसी के हाथ अपने घर भेज दिया। जब वह पानी से निकल कर अपना रुपया माँगने लगा तो दूसरे मित्र ने कहा—"अब रुपया कहाँ, अपना हिसाब सुन लो।" उसने कहा—"अभी देते देर न हुई, हिसाब कैसा?" अब दोनों में तकरार होने लगी और सौ पचास आदमी घिर आये। उनमें से एक ने रुपये वाले से कहा—"मियाँ, क्यों झगड़ते हो, हिसाब किस लिए नहीं सुन लेते।" हार मान कर उसने कहा—"अच्छा भाई, सुना हिसाब!" वह बोला—"जिस समय आपने गोता (डुबकी) लगाया, मैंने जाना कि डूब गये। पाँच रुपये खर्च करके तुम्हारे घर तार भेज दिया, और पाँच रुपया तुम्हारी औरत

को यहाँ आने का खर्चा भेज दिया, और जब तुम जीते निकल आये तो पाँच रुपया खुशी में दान दे दिया। अब रहे पाँच सो मैंने अपने घर भेज दिये। उसका यदि कुछ अन्देशा हो तो हमसे तमस्सुक लिखवा लो।" यह धाधल पने की बात सुनकर उसने कहा—"अच्छा भाई, अब हम भर पाये।"

रुपया हड़प करने वाले इसी प्रकार बहाने बनाकर हिसाब पूरा करके बता देते हैं।

२००-चोर की दाढ़ी में तिनका।

किसी गाँव में चोरी हो गई। गांव वालों ने हाकिम के पास फरयाद की। हाकिम ने बहुत कुछ प्रयत्न किया परन्तु चोर का पता न चला। अन्त में हाकिम ने सब गाँव वालों को इकट्ठा करके कहा—"वह देखो, चोर की दाढ़ी में तिनका लटक रहा है!" सब तो वैसे के वैसे ही खड़े रह गये परन्तु जो चोर था उसने सोचा कि ऐसा न हो मेरी ही दाढ़ी में तिनका लटक रहा हो तो सब मुझे पहिचान जायें। ऐसा बिचार कर उसने अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरा। हाकिम ने चोर को पहचान लिया और उस को सज़ा मिली।

जब किसी मनुष्य में कोई अवगुण होता है और कोई अपरिचित मनुष्य भी उसके सामने उस अवगुण की समालोचना करता है तो वह अपने ही ऊपर समझ कर उससे लड़ने लगता है॥

२०१-जगजीता मोरी कानी।

वर ठाढ़ होय तब जानी॥

एक अमीर ने अपनी कानी लड़की का विवाह किसी अच्छे लड़के से करा देने से एक पंडित को कुछ देने की प्रतिज्ञा की। नाई और पंडित दोनों ने मिलकर एक सुन्दर लड़के के साथ विवाह सम्बन्ध ठीक किया, परन्तु लड़की के कानी होने का वृत्तान्त किसी से भी न बताया। जब विवाह को दो चार दिन बाकी रह गये तो वर पक्ष वालों को ज्ञात हो गया कि लड़की कानी है अतएव उन दुष्टों को फल चखाने के लिये वर पक्ष वाले एक लंगड़े आदमी को दूल्हा बनाकर ब्याहने गये। कन्या पक्ष के लोग प्रसन्न थे कि लड़का अच्छा मिल गया अतएव उन्हों ने कहा—"जग जीता मोरी कानी" तब तो वर पक्ष वालों से न रहा गया—"वर ठाढ़ होय तब जानी।" जैसे को तैसा मिल गया।

—*—

२०२-भरमा भूत शंका डाइन।

एक बनिये के एक लड़की थी। दीवाली के एक दिन पहिले लड़की एक लोटे में गेरू घोल कर बिना किसी को कुछ

कहे पिता की खटिया के पास इस विचार से रख कर सोने चली गई कि कल सबेरे दीवाल में दिवाली काढूँगी। सन्ध्या के समय उस वैश्य की खटिया के पास उसकी स्त्री सदैव एक लोटा पानी भरकर रख दिया करती थी। उस दिन सिरहाने लोटा रक्खा हुआ देखकर उसने समझा कि लड़की ने पानी रख दिया होगा और वह भी सोने चली गई। प्रातःकाल होते ही वह वैश्य उस लोटे को उठाकर जङ्गल को ले गया। आबदस्त ले चुकने के पश्चात् क्या देखता है कि रुधिर बह रहा है। उस पर उसने जाना कि यह रुधिर दस्त में आया है, मालूम होता है कि किसी ने जादू किया है अथवा मुझे कोई कठिन रोग हो गया है। यह सोच कर वह अत्यन्त घबरा उठा और उसकी सभी सुधि बुद्धि जाती रही। बड़ी कठिनता से घर पर पहुँचा और खाट पर पड़ रहा। स्वामी की ऐसी दशा देखकर स्त्री पूछती है परन्तु वह कुछ उत्तर नहीं देता। बार २ स्त्री के पूछने पर उसने झुंझला कर कहा—"शोक! घड़ी दो घड़ी में मेरा प्राणान्त हो जायेगा, क्योंकि मेरे सवा सेर लहू गया है।" यह सुन कर स्त्री भी आपे में न रही और वैद्य हकीम बुलाने की कोशिश करने लगी। इतने में उसकी लड़की भी जग उठी और अपना लोटा ढूँढने लगी। लोटा न मिलने पर लड़की ने रोना आरम्भ किया। जब उसकी माँ ने रोने का कारण पूछा तो लड़की ने जवाब दिया—"कल मैंने एक लोटे में गेरू घोल कर यहाँ रख दिया था, वह न जाने क्या हो गया।" वैश्य को जब यह ज्ञात हुआ कि वह

लहू न था बल्कि गेरू था तब उसका सारा दुख जाता रहा और वह आपे में आ गया। केवल भ्रम में ही पड़ कर उसको इस प्रकार की बेचैनी हो गई थी, और अपने को थोड़ी देर बाद यमराज का मेहमान मान बैठा था।

भूत और डाइन संसार में कुछ [illegible] भ्रम मात्र है।

॥ पुरौनी ॥

❁ अथवा ❁

प्रासंगिक-पद्यावली

संस्कृत ।

वरमपि धारा तरुतल वासः, वरमपि भिक्षा वरमुपवासः ।
वरमपि घोरे नरके पतनम्, नच धनगर्वित बान्धव शरणम् ॥१॥

अर्थ सरल है ।

अव्य वस्थित चित्तानां, प्रसादोपि भयंकरः ।
क्षणे रुष्टाक्षणे तुष्टा, रुष्टा तुष्टा क्षणे क्षणे ॥ २ ॥

भावार्थ-जिसका चित्त स्थिर नहीं, उसकी कृपा भी अच्छी नहीं, क्योंकि न उसको क्रोधित होते देर लगती है न प्रसन्न होते ।

निर्वाणदीपे किं तैल दानम्, चौरं गते वा किं सावधानम् ।
वयोगते किं वनिता विलासः, पयो गतो किं खलुसेतुबन्धः ॥३॥

भावार्थ स्पष्ट है ।

पति हीनस्तु या नारी पत्नि हीनस्तु या पुमान् ।
उभाभ्यां रंडषंडाभ्यां न दोषोमनुरब्रवीत ॥ ४ ॥

भावार्थ—तुम्हरे भतार न हमरे जोय, अस कछु करो कि लरिका होय।

नृपस्य चित्तं कृपिणस्य वित्तं, मनोरथं दुर्जन मानवानाम्।
त्रियां चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं, दैवो न जानाति कुतो मनुष्यः॥५॥

भावार्थ—राजा का चित्त, कञ्जूस का धन, खलजनों का मनोर्थ, दुष्टा स्त्रियों के चरित्र, पुरुष का भाग्य दैव भी नहीं जानता तो मनुष्य क्या जान सकता है॥

पुस्तकस्था तु या विद्या परहस्ते गते धनम्।
कार्य काले समुत्पन्ने न सा विद्या न तद्धनम्॥ ६॥

भावार्थ—पोथी में लिखी हुई विद्या (जो कण्ठ न हो), दूसरे के हाथ में गया हुआ धन, मौके पर काम में नहीं आते।

क्षुधातुराणां न वलं न बुद्धिः, तृष्णातुराणां न च पात्र शुद्धिः।
कामातुराणां न भयं न लज्जा, निद्रातुराणां न च भूमिशय्या॥७॥

भावार्थ—भूखे को वल और बुद्धि कहाँ, प्यासे को बर्तन की सफाई क्या, कामातुरों को भय और लज्जा क्या और सोने वाले को जमीन की सेज क्या? अर्थात् इन लोगों को इनकी परवाह नहीं होती।

परोक्षे कार्य हन्तारं प्रत्यक्षे प्रिय वादिनाम्।
वर्जयेत तादृशं मित्रं विष कुम्भं पयो मुखम्॥ ८॥

भावार्थ—सामने मीठी २ बातें करने वाले, और पीछे कार्य को विगाड़ देने वाले मित्र ऐसे हैं जैसे विष पूरित सोने के घड़े के मुँह पर दूध हो, उनसे सदा बचना चाहिये।

न शास्त्र मध्ये न च दृष्ट पूर्वा न श्रूयते हेममयी कुरंगी।
तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य विनाश काले विपरीत बुद्धिः॥९॥

भावार्थ–सोने का मृग न तो शास्त्र में वर्णित है और न पहिले किसी ने देखा सुना था फिर भी रामचन्द्र जी लालच में आकर उसके पीछे दौड़े। ठीक है कि "विनाश काले विपरीत बुद्धिः।"

भ्रमरा मधुमिच्छन्ति व्रणमिच्छन्ति मक्षिका।
सज्जना गुणमिच्छन्ति दोष मिच्छन्ति पामरा॥ १०॥

भावार्थ–मधुमक्षिका मधु चाहती है, मक्खियाँ फोड़ा चाहती हैं, सज्जन लोग गुण की इच्छा करते हैं परन्तु दुर्जन अवगुण ही खोजा करता है।

वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खो शतैरपि।
एकश्च चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारा गणैरपि॥ ११॥

भावार्थ–सैकड़ों मूर्ख पुत्रों से एक गुणी पुत्र अच्छा है। एक चन्द्रमा अन्धकार को दूर कर सकता है न कि तारों का समूह।

यस्यास्ति वित्तं सनरः कुलीनः स पंडितः सश्रुतवान् गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति॥१२॥

भावार्थ–जिस के पास धन है वही मनुष्य कुलीन है, वही पंडित है, वही श्रुतवान और वही गुणज्ञ है, वही वक्ता और वही दर्शनीय है। क्योंकि सोने में ही सब गुण बसते हैं॥

हस्ति हस्ते सहसेषु, शत हस्तेन वाजिनां।
भृंगीणां दश हस्तेषु स्थान त्यागेन दुर्जनात॥ १३॥

अर्थात्–हाथी से हजार हाथ, घोड़े से सौ हाथ, सींग वाले पशुओं से दश हाथ दूर रहना चाहिये परन्तु जहाँ दुर्जन हों वह स्थान ही त्याग देना चाहिये॥

वृक्षं क्षीण फलं त्यजन्ति विहंगा शुष्कं सरा सारसा
पुष्पं पर्यु षितं त्यजन्ति मधुपा दग्धं बनान्तकं मृगा।
निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजन्ति गणिका भ्रष्टं श्रियं मंत्रिणः
सर्वे कार्य वशाज्जनोभिरमते कस्यास्ति को बल्लभा ॥ १४ ॥

भावार्थ-फल हीन वृक्ष को पक्षी, सूखे तालाब को सारस, रसहीन पुष्प को भ्रमर, जले हुये बन को मृग, निर्धन को वेश्या और भ्रष्टश्री राजा को मंत्री छोड़ देते हैं। सब लोग अपने स्वार्थसे ही साथ रहते हैं कोई किसी को प्यारा नहीं है॥

श्वसुर कुल निवासः स्वर्गतुल्यो नराणाम्।
यदि भवति विवेकी पञ्च वा षट दिनानि।
दधि मधु घृत लोभात मासमेकं च तिष्ठेत्।
स भवति खर तुल्यो मानवो मानहीनः ॥ १५ ॥

भावार्थ-ससुर के घर में रहना मनुष्यों के लिये स्वर्ग तुल्य है। यदि मनुष्य होशियार है तो केवल पांच या छः दिन के लिये और यदि घी दही के लोभ से ससुराल में एक महीना ठहरे तो वह मनुष्य गधे की तरह मान हीन होता है (ससुरार सुख की सार, जो रहै दिना दुइ चार। जो रहै पाख पखवारा, तो हाथ में खुरपी बगल में खारा)

असारे खलु संसारे सारं श्वसुर मन्दिरम्।
हरो हिमालयो सेते विष्णु सेते महोदधे ॥ १६ ॥

भावार्थ-इस असार संसार में एक ससुराल ही सार है (तभी तो) शिव जी हिमालय पर और विष्णु जी समुद्र पर रहते हैं।

समा याति यदा लक्ष्मी नारिकेल फलाम्बुवत्।
विनिर्याति यदा लक्ष्मी गज भुक्त कपित्थवत् ॥ १७ ॥

भावार्थ-जब लक्ष्मी आती हैं तो नारियल के फल के पानी की तरह और जब जाती हैं तो हाथी के खाये हुये कैथे की तरह।

अर्थागमो नित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च
वश्यश्च पुत्रोऽर्थ करी चविद्या, षट् जीवलोकस्य सुखानि राजन् ॥१८॥

भा०-हे राजन्, संसार में केवल छः ही सुख हैं (१) धन प्राप्ति (२) आरोग्य, (३) प्रियाभार्या (४) मधुर बोलने वाली स्त्री (५) वश्य पुत्र (६) धन कमानेवाली विद्या॥

आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मोहि तेषामधिको विशेषोधर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥ १६॥

भावार्थ—भोजन, नींद, डरना और मैथुन ये चारों बातें मनुष्य और पशु में एक सी हैं मनुष्य में केवल धर्म ही अधिक है अतएव धर्म हीन मनुष्य पशु के समान है।

मंत्रे तीर्थे द्विजे देवे दैवज्ञे भेषजे गुरौ।
यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी॥ २०॥

भा०—मंत्र, तीर्थ, ब्राह्मण, देवता, ज्योतिषी, औषधि और गुरु इन में जैसी जिसकी भावना होती है वैसे ही सिद्धि भी होती है।

बुभुक्षितः किं न करोति पापं क्षीणा जना निष्करुणा भवन्ति।
आख्याहि भद्रे प्रिय दर्शनस्य न गंगदत्तः पुनरेति कूपम् ॥२१॥

भावार्थ-भूखा मनुष्य क्या पाप नहीं करसकता, क्षीण मनुष्य करुणा हीन हो जाते हैं। हे भद्रे! प्रियदर्शन से कहना कि गंगदत्त फिर कूप में नहीं आवेगा॥

उद्योगिनं सततमत्रसमेति लक्ष्मी दैवं हि दैव मिति का पुरुषा वदन्ति।
दैवंनिहत्यकुरुपौरुषमात्म शक्त्यायत्नेकृतेयदिनसिद्धयति कोऽत्रदोषः
भावार्थ—उद्योगी पुरुष को निरन्तर लक्ष्मी मिलती है। प्रारब्ध देता है यह कायर कहते हैं (दैव दैव आलसी पुकारा) दैव को त्याग कर आत्मशक्तिसे पुरुषार्थ तथा यत्न करने पर भी यदि सिद्ध न हो तो किस का दोष है?

माता यस्य गृहे नास्ति आर्या च प्रिय वादिनी।
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम् ॥ २३ ॥

भा०—जिसके घर में न तो माता ही है न प्रियवादिनी स्त्री ही है उनको बन ही जाना अच्छा है क्योंकि वह घर घर नहीं है किन्तु बन है॥

वरं वनं व्याघ्रगजादि सेवितं जनेन हीनं बहुकण्टकावृतम्।
तृणानि शैया परिधानवल्कलं न बन्धु मध्ये धन हीन जीवितम् २४

भा०—सिंह तथा हाथियों से सेवित, मनुष्यों से हीन, बहुत काँटों से युक्त बन अच्छा है, तृण की शैया और वल्कल वस्त्र उत्तम हैं परन्तु भाइयों के बीच में धन हीन होकर जीना अच्छा नहीं॥

शूरः सुरूपः सुभगश्च वाग्मी शास्त्राणि शास्त्राणि विदांकरोति।
अर्थं विना नैव यशश्च मानं प्राप्नोति मर्त्योऽत्र मनुष्य लोके॥ २५॥

भावार्थ—शूर, स्वरूपवान, सुन्दर, वाचाल, शस्त्र तथा शास्त्र विद्या का जानने वाला मनुष्य बिना धन के इस लोक में यश और मान नहीं पाता है।

—※—

चौपाई ।

१-भले भवन अब बायन दीन्हा ❋ पावहुगे आपन फल कीन्हा ॥
२-अतिशै रगड़ करै जो कोई ❋ अनल प्रगट चन्दन ते होई ॥
३ अनुज वधू भगिनी सुतनारी ❋ सुनु शठ ये कन्या समचारी ॥
४-जापर हरिकिहु कतहुँ रिसाहीं ❋ ताहि निरापदथलकहुँ नाहीं ॥
५-बुधिबलतासुसकल विधिघाटै ❋ ऊँट चढ़े पर कूकर काटै ॥
६-धीरज धर्म मित्र अरु नारी ❋ आपद काल परिखिये चारी ॥
७-कोउ नृप होय हमैं का हानी ❋ चेरि छाँड़ि अब होबकिरानी ॥
८-चिन्ता सांपिन काहु न खाया ❋ जगको जाहि न व्यापी माया ॥
९-क्षुद्र नदी अस चलि उतराई ❋ जिमि थोरे धन खल बौराई ॥
१० नहिंअसकोउजनम्योजगमाहीं ❋ प्रभुता पाय काहि मद नाहीं ॥
११-जाको प्रभु दारुणदुख देहीं ❋ ताकी मति पहिले हरि लेहीं ॥
१२ मन मलीन तन सुन्दर कैसे ❋ विष रस भरा कनक घट जैसे ॥
१३-वृथामरहु जनि गाल बजाई ❋ मन मोदकन कि भूख बुझाई ॥
१४-यद्यपिदुखदारुणजगनाना ❋ सब ते कठिन जाति अपमाना ॥
१५-दुइ न होय इकसंग भुवालू ❋ हँसब ठठाय फुलाउब गालू ॥
१६-सहसा करि पाछे पछिताहीं ❋ कहहिं वेद बुध ते बुध नाहीं ॥
१७-सुनहुपवनसुतरहनिहमारी ❋ जिमि दशननमहँज़ीभ विचारी ॥
१८-वायसपालियअतिअनुरागा ❋ होहिंनिरामिषकबहुँ कि कागा ॥
१९ होइहैं सोइ जोरामरचि राखा ❋ को करि तर्क बढ़ावै शाखा ॥
२०-मनकपटीतनसज्जनचीन्हा ❋ आप सरिस सबहीं चह कीना ॥
२१ नौकवतुकिअन्हआलसनाहीं ❋ वर कन्या अनेक जग माहीं ॥
२२-सीमकिचांपि सकैकोइतासू ❋ बड़ रखवार रमा पति जासू ॥

२३-परम स्वतंत्र न शिरपर कोई ❀ भावै मनहि करहु तुम सोई ॥
२४-मतिअतिनीचऊँचरुचिआछी ❀ चहिय अमियजगजुरैनछांछी॥
२५-जेहि कर जापर सत्य सनेहू ❀ सो तेहि मिलत न कछु सन्देहू ॥
२६-टेढ़ जानि शंका सब काहू ❀ वक्र चन्द्रमा ग्रसै न राहू ॥
२७-ऊँच निवास नीच करतूती ❀ देखि न सकहिं पराय विभूती ॥
२८-हमहूँ कहबअबठकुरसोहाती ❀ नाहीं तो मौन रहब दिनराती ॥
२९-रहे प्रथम दिन ते अब बीते ❀ समय पाय रिपु होहिं पिरीते ॥
३०-का पूछहुतुम अबहु न जाना❀ निज हितअनहितपशुपहिचाना॥
३१-को न कुसंगति पाय नशाई ❀ रहै न नीच मते चतुराई ॥
३२-कहइ कारहु किन कोटिउपाया ❀ इहाँ न लागै राउर माया ॥
३३-तजउ प्राण रघुनाथ निहोरे ❀ दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे ॥
३४-सुनिशुहककहइनीककहबूढ़ा ❀ सहसा करि पछितायँ विमूढ़ा ॥
३५-लखब सनेह सुभाय सुभाये ❀ बैर प्रीति नहिं दुरइ दुराये ॥
३६-शिरभलजाहु उचित अस मोरा ❀ सबसे सेवक धर्म कठोरा ॥
३७-माँगहुभीखत्यागि निजधरमू ❀ आरत काह न करहिं कुकरमू॥
३८ मुनिह सोचपाहुनबड़ न्योता ❀ तस पूजा चाहिय जस देवता ॥
३९ कर्म प्रधान विश्व करि राखा ❀ जो जसकरैसो तसफलचाखा ॥
४०-सकुचहु तात कहत यक बाता ❀ अर्द्ध तजहि बुध सर्वस जाता ॥
४१-संग.ते यती कुमंत्र ते राजा ❀ मानते ज्ञान पान ते लाजा ॥
प्रीति प्रणय बिनु मदते गुनी ❀ नाशहि बेगि नीति अससुनी ॥
४२-सुरनरमुनि सबकी यह रीती ❀ स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ॥
४३ वरुभल वास नरककर ताता ❀ दुष्ट संग जनि देइ विधाता ॥
४४-कादर मन कर एक अधारा ❀ दैव दैव आलसी पुकारा ॥

४५-ढोल गँवार शूद्र पशु नारी * सकल ताड़ना के अधिकारी ॥
४६-पर उपदेश कुशल बहुतेरे * जे आचरहिं ते नर न घनेरे ॥

—*—

दोहे ।

सहज मिलै तो दूध सम, माँगा मिलै सो पानि ।
कह कबीर वह रक्त सम, जामे ऐंचा तानि ॥ १ ॥
माटी कहै कुम्हार सों, क्या रौंदै तू मोहिं ।
यक दिन ऐसा होयगा, मैं रौंदूँगी तोहिं ॥ २ ॥
ज्यों तिरिया पीहर बसै, सुरति रहै पिय माहिं ।
ऐसे जन जग में रहैं, हरि को भूलैं नाहिं ॥ ३ ॥
साईं इतना दीजिए, जामें कुटुँब समाय ।
मैं भी भूखा न रहूँ, साधु न भूखा जाय ॥ ४ ॥
सो०—'रहिमन' मोहिं न सुहाय, अमिय पियावत मान बिन ।
बरु विष देय बुलाय, प्रेम सहित मरिबो भलो ॥ ५ ॥
दो०—अब 'रहीम' मुशकिल परी, गाढ़े दोऊ काम ।
साँचे सेतो जग नहीं, झूठे मिलै न राम ॥ ६ ॥
काहू सों हँसिये नहीं, हँसी कलह की मूल ।
हाँसी ही ते है भयो, कुल पाण्डव निरमूल ॥ ७ ॥
अन्तर अँगुरी चार का, झूठ साँच में होय ।
सब माने देखी भई, सुनी न मानै कोय ॥ ८ ॥
अति अनीति लहिये न धन, जो प्यारो अति होय ।
पाये सोने की छुरी, पेट न मारत कोय ॥ ९ ॥

काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि ।
तिय विशेष पुनि चेरि कहि, भरत मातु मुसकानि ॥१०॥
और करइ अपराध कोउ, और पाव फल भोग ।
अति विचित्र भगवन्त गति, को जग जानै योग ॥ ११ ॥
मुखिया मुख सो चाहिये, खान पान को एक ।
पालइ पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित विवेक ॥ १२ ॥
नैना देत बताय सब, हिय को हेत अहेत ।
जैसे निर्मल आरसी, भली बुरी कहि देत ॥ १३ ॥
पर नारी पैनी छुरी, मत कोउ लाओ अँग ।
रावण के दश शिर गये, पर नारी के संग ॥ १४ ॥
फूले फूले फिरत हैं, आज हमारो व्याव (व्याह)
तुलसी गाय बजाय कै, देत काठ में पाँव ॥ १५ ॥
महादेव अवगुण भवन, विष्णु सकल गुण धाम ।
जेहिं कर मन रम जाहि मन, ताहि ताहि सन काम ॥१६॥
माया मरे न मन मरे, मर मर जात शरीर ।
आशा तृष्णा न मरे, कहिगे दास कबीर ॥ १७ ॥
मैना जो 'मैं ना' कहै, दूध भात नित खाय ।
बकरी जो मैं मैं करै, उलटी खाल खिंचाय ॥ १८ ॥
तुलसी या संसार में, सबसों मिलिए धाय ।
ना जाने किस भेष में, नारायण मिल जाय ॥ १९ ॥
दाता थे सो मर गये, रह गये मक्खीचूस ।
लेना देना कुछ नहीं, लड़ने को मजबूत ॥ २० ॥
दिया जगत में सार है, दिया करो सब कोय ।
घर का धरा न पाइये, जो कर दिया न होय ॥ २१ ॥

दुख सुख निशि दिन संग हैं, मेट सके ना कोय।
जैसे छाया देह की, न्यारी नेक न होय ॥ २२ ॥
करम कमण्डल कर गहे, तुलसी जहँ लगि जाय।
सागर सरिता कूप जल, बूँद न अधिक समाय ॥ २३ ॥
करि फूलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि।
रे गन्धी मति मन्द तू, अतर दिखावत काहि ॥ २४ ॥
अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम।
दास मलूका यों कहै, सब का दाता राम ॥ २५ ॥
कुल कुपुत्र किहिं काम कौ, तिहि शुभ शोभा नाहिं।
ज्यों बकरी के कण्ठ थन, दूध न जल तिहिं माहिं ॥२६॥
अति अगाध अति औथरो, नहीं कूप सर बाय।
सो ताको सागर जहाँ, जाकी प्यास बुझाय ॥ २७ ॥
अति का भला न बरसना, अति की भली न धूप।
अति का भला न बोलना, अति की भली न चूप ॥२८॥
अपनी अपनी गरज सब, बोलत करत निहोर।
बिन गरजै बोलै नहीं, गिरवरहू को मोर ॥ २९ ॥
उतरा कबीर सराय में, गठ कतरे के पास।
जस करसी तस पावसी, तू क्यों भयो उदास ॥ ३० ॥
उतसे अन्धा आय है, इतसे अन्धा जाय।
अन्धे से अन्धा मिलै, कौन बतावे राय ॥ ३१ ॥
यदपि सहोदर होय तउ, प्रकृति और की और।
विष मारै ज्यावै सुधा, उपजै एकहि ठौर ॥ ३२ ॥
उसी रूख पर है चढ़ा, उसी की जड़ कटवाय।
वह मूरख तौ एक दिन, गिर दब कर मरजाय ॥ ३३ ॥

करी न जिहिं हरि भक्ति-नहिं, लियो विषय के स्वाद।
सो नहिं जिमि आकाश को, भयो ऊँट को पाद ॥ ३४ ॥
ग्रह ग्रहीत पुनि बात वश, तापर बीछी मार।
ताहि पियाई वारुनी, कहहु कवन उपचार ॥ ३५ ॥
दोऊ चाहे मिलन को, तौ मिलाप निरधार।
जैसे कबहुँ न बाजिहै, एक हाथ तें तार ॥ ३६ ॥
दाँत गिरे औ खुर घिसे, पीठ बोझ ना लेय।
ऐसे बूढ़े बैल को, कौन बाँधि भुस देय ॥ ३७ ॥
कबिरा जो दिन आज है, सो दिन नाहीं काल।
चेत सकै तो चेतियो, मीच परी है ख्याल ॥ ३८ ॥
तुलसी विलंब न कीजिए, भजि लीजै रघुवीर।
तन तरकस ते जात है, स्वाँस सार सो तीर ॥ ३९ ॥
करम हीन जब होत है, सभी होत हैं वाम।
छाँह जानि जहँ बैठिये, वहीं होत है घाम ॥ ४० ॥
करम हीन सागर गये, जहाँ रतन का ढ़ेर।
कर छूवत घोंघा भये, यही करम का फेर ॥ ४१ ॥
करै बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोय।
रोपै बिरवा आक को, आम कहाँ ते होय ॥ ४२ ॥
कलियुग में द्वै भक्त हैं, वैरागी अरु ऊँट।
वे तुलसी बन काटहीं, इन किए पीपर ठूंट ॥ ४३ ॥
कहीं कहीं गोपाल की, गई चौकड़ी भूल।
काबुल में मेवा कियो, ब्रज में कियो बबूल ॥ ४४ ॥
काँटा बुरा करील का, औ बदरी की घाम।
सौत बुरी है चून की, औ साझे का काम ॥ ४५ ॥

का भाषा का संस्कृत, प्रेम चाहिये साँच।
काम जो आवै कामरी, का लै करे किमाँच ॥ ४६ ॥
दीबो अवसर को भलो, जासों सुधरै काम।
खेती सूखे बरसिबो, घन को कौने काम ॥ ४७ ॥
को कहि सकै बड़ेन सो, होत बड़े ई भूल।
दीने दई गुलाब की, इन डारन वे फूल ॥ ४८ ॥
खैर, खून, खाँसी, खसी, बैर, प्रीति, मधु पान।
रहिमन दाबे ना दबै, जानै सकल जहान ॥ ४६ ॥
गंगा जी को पैरिबो, विप्रन को व्यवहार।
डूब गये तो पार है, पार गये तो पार ॥ ५० ॥
गुरु वैद अरु जोतिषी, देव मन्त्रि अरु राज।
इन्हैं भेंट बिनु जो मिलै, होय न पूरन काज ॥ ५१ ॥
चन्दन परो चमार घर, नित उठि कूटै चाम।
रो रो चन्दन शिर धुनै, पड़ा नीच सों काम ॥ ५२ ॥
कैसे छोटे नरनते, सरत बड़न के काम।
मढ्यो दमामा जात क्यों, लै चूहे को चाम ॥ ५३ ॥
जग में साँचे दो जने, एक राम अरु दाम।
इक दाता हैं मोच्छ के, एक सुधारै काम ॥ ५४ ॥
जब तुम जनमे जगत में, जगत हँसा तुम रोय।
ऐसी करनी कर चलो, (कि) तुम हँस मुख जग रोय ॥५५॥
जहाँ न जाको गुन लहै, तहाँ न ताको ठाँव।
धोबी बसकर क्या करे, दिगम्बरों के गाँव ॥ ५६ ॥
जाको जहँ स्वारथ सधै, सोई ताहि सुहात।
चोर न प्यारी चाँदनी, जैसे कारी रात ॥ ५७ ॥

जाना है रहना नहीं, मोहि अँदेशा और।
जगह बनाई है नहीं, बैठोगे किस ठौर ॥ ५८ ॥
जासों निबहै जीविका, करिये सो अभ्यास।
वेश्या पाल शील तौ, कैसे पूरै आस ॥ ५६ ॥
श्रवन सुन्यौ नयननि लख्यौ, यामें संशय नाहिं।
कूप जो खोद आनहीं, परै आपु तिहि माहिं ॥ ६० ॥
तब के नरपति वे रहे, रीझैं तो कुछ देंय।
अब के नरपति वे भये, रीझैं औ लिख लेंय ॥ ६१ ॥
तुलसी इक दिन वे हुते, माँगे मिलै न चून।
कृपा भई रघुनाथ की, लुचुई दोनौं जून ॥ ६२ ॥
तुलसी कहत पुकारके, सुनो सकल दे कान।
हेमदान गजदान ते, बड़ो मान सन्मान ॥ ६३ ॥
तुलसी बिरवा बाग में, सींचत हूँ कुम्हिलाय।
राम भरोसे बैठ के, पर्वत पर हरियाय ॥ ६४ ॥
तुलसी मूर्ख न मानहीं, जब लौं ख़ता न खाय।
जैसे विधवा इसतिरी, गर्भ रहे पछिताय ॥ ६५ ॥
तुलसी या संसार में, पाँच रतन हैं सार।
साधु मिलन अरु हरि भजन, दया धर्म उपकार ॥ ६६ ॥
तुलसी असमय के सखा, साहस धरम विचार।
सुकृत, सुशील, सुभाव, ऋतु, रामचरन आधार ॥ ६७ ॥
इक बाहर इक भीतरैं, इक मृदु दुहूँ दिशि पूर।
सोहत नर जग त्रिविध ज्यों, बेर, बदाम, अँगूर ॥ ६८ ॥
आवत ही हरखे नहीं, नैनन नहीं सनेह।
तुलसी तहाँ न जाइये, कंचन बरसै मेंह ॥ ६६ ॥

इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू को नाहिं।
घर की नारी को कहै, कर की नारी जाहिं ॥ ७० ॥

—*—

कुंडलिया।

साईं बेटा बाप के बिगरे भयो अकाज।
हरना कस्यप कंस को, गयो दुहुन को राज ॥
गयो दुहुन को राज बाप बेटा में बिगरी।
दुसमन दावागीर हँसै महि मंडल नगरी ॥
कह गिरिधर कविराय युगन याही चलि आई।
पिता पुत्र के बैर नफ़ा कहु कौने पाई ॥ १ ॥
बेटा बिगरे बाप से करि तिरियन सों नेहु।
लटा पटी होने लगी मोहिं जुदा करि देहु।
मोहिं जुदा करि देहु घरी मा माया मेरी।
लेहौं घर अरु द्वार, करौं मैं फजिहत तेरी।
कह गिरिधर कविराय सुनो गदहा के लेटा।
समय पर्‌यो है आय बाप सो झगरत बेटा ॥ २ ॥
साईं ऐसे पुत्र से, बाँझ रहैं बरु नारि।
बिगरी बेटे बाप से, जाय रहे ससुरारि ॥
जाय रहे ससुरारि नारि के नाम बिकाने।
कुल के धरम नशाय और परिवार नसाने।
कह गिरिधर कविराय मातु झंखै वहि ठाईं ॥
अस पुत्रन नहिं होय, बाँझ रहतेउं बरु साईं ॥ ३ ॥

साईं सब संसार में मतलब का व्यवहार।
जब लगि पैसा गाँठ में तब लग ताको यार।
तब लग ताको यार यार संगही संग डोलैं।
पैसा रहा न पास यार मुख से नहिं बोलैं।
कह गिरिधर कविराय जगत लेखा यहि भाई।
करत बे गरजी प्रीति यार बिरला कोई साईं॥ ४॥

पानी बाढ्यो नाव में, घर में बाढयो दाम।
दोऊ हाथ उलिचिबो, यही सयानो काम।
यही सयानो काम राम को सुमिरन कीजै।
परस्वारथ के काज शीश आगे धरि दीजै॥
कह गिरिधर कविराय बड़ेन की याँही बानीं
चलिये चाल सुचाल राखिये अपनो पानी।

साईं अवसर के पड़े, को न सहै दुख द्वंद।
जाय बिकाने डोम घर, वे राजा हरिचन्द।
वे राजा हरिचन्द करैं मरघट रखवारी।
धरे तपस्वी रूप फिरे अर्जुन बलधारी।
कह गिरिधर कविराय तपै वह भीम रसोईं।
को न करै घटि काम परे अवसर के साईं॥ ६॥

साईं बैर न कीजिये, गुरु, पंडित, कवि, यार।
बेटा, बनिता, पौरिया, यज्ञ करावनहार।
यज्ञ करावनहार, राज मंत्री जो होई।
विप्र, परोसी, वैद्य, आप को तपै रसोई।
कह गिरिधर कविराय, युगन ते यह चलि आई।
इन तेरह सों तरह दिये बनि आवै साईं॥ ७॥

कवित्त-सवैया ।

(१)

नख शिख कटा देखे, सीस भारी जटा देखे, जोगी कन फटा देखे छार लाये तन में । मौनी अनबोल देखे, सेवरा सर छोल देखे, करत कलोल देखे, बनखंडी बन में । गुड़ी देखे, गूढ़ देखे, वीर देखे, सूर देखे, माया भरपूर देखे, भूल रहे धन में । आदि अन्त सुखी देखे, जन्म ही के दुखी देखे, पै वे न देखे जिनके लोभ नाहीं तन में ।

(२)

आज के ज़माने सबही में मिल जानो आप, आन ते बिरानो तव पाव काके गहिये । दोष नाहिं दोषत को दोष कर्म आपने को, मन अपने की विथा काहू सों न कहिये । जब लग दीनानाथ कृपाहू न करैं नेक, तब लग ऊँच नीच सब ही की सहिये । हारिये न हिम्मत बिसारिये न हरि नाम, जाही विधि राखै राम ताही विधि रहिये ॥

(३)

चाहे सुमेर को छार करै अरु छार को चाहे सुमेर बनावै ।
चाहे तो रंक को राउ करै अरु राउको द्वारहि द्वार फिरावै ॥
रीति यही करुणानिधि की, कवि देव कहै विनती मोहि भावै ।
चींटी के पाँव में बाँधि गयन्दहि चाहे समुद्र के पार लगावै ॥

(४)

पंडित पंडित सो गुन मंडित, शायर शायर सों मन मानै ।
सन्तहि सन्त भनन्त भलो, गुनवन्तनि को गुनवन्त बखानै ।

जा सह जाकर हेत नहीं कहिये सो कहा तिहि की गति जानै।
सूरको सूर, सती को सती, अरु 'दास' जती को जती पहिचानै ॥

(५)

होतहिं प्रात जु घात करै नित पारै परोसिन सों कल गाढ़ी।
हाथ नचावत मुण्ड खुजावत पौरि खड़ी रिस कोटिक बाढ़ी ॥
ऐसी बनी नख ते शिख लौं ब्रज चन्द्र ज्यों क्रोध समुद्र से काढ़ी।
ईंटा लिये बतराति भतार सों भूत सी भामिन भौन में ठाढ़ी ॥

(६)

जानत हौं ज्योतिष पुरान और वैद्यक को, जोरि २ अच्छर कवित्तन को उच्चरौं। बैठि जानौं सभा माँझ राजा को रिझाय जानौं, अस्त्र-शस्त्र खेत माहिं शत्रुन सो हौं लरौं। राग धरि, गाऊँ औ कुदाऊँ घोड़े बाग धरि, कूपताल बखरी न वारन में हौं तरौं। दीनबन्धु दीना नाथ ऐते गुण लये फिरौं, करम न यारी देत ताको हौं कहा करौं ॥

(७)

रूठै क्यों न राजा जासों कछू नाहिं काजा, एक तोसे महाराजा और कौन को सराहिये। रूठै क्यों न भाई, जासों कछू न बसाई, एक तूही है सहाई, और कौन पास जाइये। रूठै क्यों न शत्रु औ कलत्र मित्र रूठै क्यों न, रावरे चरन केरे नेह को निवाहिये। सब जग रूठा, एक तूही है अनूठा, सब चूमेंगे अँगूठा एक तू न रूठा चाहिये ॥

(८)

हेरत ही हाथिन के हलका हेराइ जैहैं, गोरे सम घोरे रथ वहल बिलायेंगी। मोहरें रुपैया पर मोहरें रहैंगी करी, परी सी

नितम्बिनी ते परी रहि जायेंगी। पालकी में हाल की खबर न रहेगी जब, काल की कलेवर की फौजें उठ धायेंगी। 'सम्भुजू' सिपाही माही चलत मरातिबे ते, नौबत बजाइबे की नौबत न आयेगी॥

(९)

मान विहीन के पाय प लोटे अकेले ह्वै जाय घने बन रोयो।
आसी अन्ध के आगे धरी बहिरो को मतो करि उत्तर जोयो।
ऊसर में बरस्यो बहु बारि पषान के ऊपर पंकज बोयो।
'दास' वृथा जिन साहब सूम की सेवनि में अपनो दिन खोयो॥

(१०)

[१] हरष में हरष [२] विषाद में विषाद करी [३] दोषहूँ की झूठिये प्रशंसा बार सौ करी [४] करै सो करन देहु देखतहु छेड़िये न [५] आँखिन के देखत अनेक बार भौ करी। [६] हुकुम के पावत ही " हाँ हजूर हाजिर हौं " [७] आवत ही निकट डराय कै उठो करी। [८] छींकत में चिरञ्जीव [९] चुटकी जम्हाई लेत, " दीन " जो ये नौ [९] करी ताही की साँची नौकरी।"

(११)

शामिल में पीर में शरीर में न भेद राखै, हिम्मत कपट को उघारै तो उघरि जाय। ऐसे ठान ठानै तो विनाहू जन्त्र मन्त्र किये, साँप के जहर को उतरै तो उतरि जाय। 'ठाकुर' कहत कछु कठिन न जानो अब, हिम्मत किये ते कहो कहा न सुधरि जाय। चारि जने चारहूँ दिशा ते चारों कोन गहि, मेरु को हिलाय कै उखारै तो उखरि जाय॥

(१२)

हिलि मिलि जानै तासों मिलि कै जनावै हेत, हित को न जानै ताको हितू न विसाहिये। होय मगरूर तापै दूनी मगरूरी कीजै, लघु ह्वै चलै जो तासों लघुता निबाहिये। 'बोधा' कवि नीति को निबेरो यहि भाँति अहै, आप को सराहै ताहि आप हू सराहिये। दाता कहा सूर कहा, सुन्दर सुजान कहा, आप को न चाहै ताके बाप को न चाहिये॥

(१३)

जिसका जितेक साल भर में खरच तिसे, चाहिये तो दूना, पै सवायो तो कमा रहै। हूर या परी सी नूर नाजनी सहूर वाली हाजिर हमेशा होय तौ दिल थमा रहै। 'ग्वाल कवि' साहब कमाल इल्म सोहबत हो याद में गुसैयां के हमेशा बिरमा रहै। खाने को हमा रहै, न काहू की तमा रहै जो गाँठ में जमा रहै तौ ख़ातिर जमा रहै॥

(१४)

पूत कपूत, कुलच्छनि नारि, लराक परोस, लजाय न सारो।
बन्धु कुबुद्धि, पुरोहित लम्पट, चाकर चोर, अतीथ धुतारो।
साहब सम, अड़ाक तुरंग, किसान कठोर, दिवान नकारो।
'ब्रह्म' भनै सुन साह अकब्बर बारहों बांधि समुद्र में डारो॥

(१५)

वैर प्रीति करबे की मन में न राखु शंक राजा राव देखि कै न छाती धकधाकरी। अपनी उमंग के निबाहिबे की चाह जिन्हें एक सों दिखात तिन्हें बाघ और बाकरी। 'ठाकुर' कहत मैं विचार कै विचार देखो यहै मरदानन की टेक बात आकरी। गही

जौन गही, जौन छोड़ी तौन छोड़ दई, करी तौन करी, बात ना करी सो ना करी ॥

स्फुट ।

(१)

एक गुलाम गाँव को ठाकुर एक मथुरिया वेद पढ़ो ।
एक बाँदरा बीछी काटी, एक करैला नीम चढ़ो ॥

(२)

नीकी नीकी बात कहो, हक नाहक करते दुन्दा ।
कण्ठी बाँधे हरि मिलैं, तो बन्दा बाँधे कुन्दा ॥

(३)

करघा बीच जुलाहा सोहै, हल पर सोहै हाली ।
फ़ौजन बीच सिपाही सोहै, बागन सोहै माली ॥

(४)

कुचकट पनही बतकट जोय, जो पहिलौठी बिटिया होय ।
पातर कृषी बौरहा भाय, घाघ कहैं दुख कहां समाय ॥

(५)

क्या सासु जी अटको मटको, क्या मटकाओ कूला ।
डोली पर से जब उतरूँगी, जुदा करूँगी चूल्हा ।

(६)

जहँ राखन चाहो व्यवहार, अधिक रखहु तहँ न्याय विचार ।
लेहु न भूलि सकुच कर नाम, खरी मजूरी चोखा काम ।

(७)

खर्च बढ़ा औ कम रोजगार, मनई घर के सब सुकुमार।
टटिया घर में लौका बरै वोहि घर कुशल बिधाता करै।

(८)

उधार काढ़ि व्यौहार चलावै, छप्पर डारै तारो।
सारे के सँग बहिन पठावै, तीनों का मुँह कारो॥

(९)

उर बैजन्ती माल, सुमिरनी श्याम की।
भोजन दोनों जून कृपा हो राम की।
साधु सन्त का सँग तीर्थ का डोलना।
इतना दे करतार तो फिर क्या बोलना॥

(१०)

आँता तीता दाँता नोन पेट भरन को तीनहि कोन।
आँखों पानी कानों तेल, कहे घाघ बैदाई गैल॥

(११)

आठ कठौती मट्ठा पीवै, सोलह मकुनी खाय।
उसके मरे न रोइये, घर का दलिद्दर जाय॥

(१२)

मरै कर्कशा नारि, मरै वह पुरुष निखट्टू।
मरै बैल गरियार मरै वह अड़ियल टट्टू।
बाभन सो मरिजाय, हाथ लै मदिरा प्यावै।
पुत्र वही मर जाय, जो कुल में दाग लगावै।
बे नियाव राजा मरै, नींद भर सोइये।
बैताल कहै विक्रम सुनो, इनके मरे न रोइये॥

(१३)

गया गाँव जहाँ ठाकुर हँसा ।
गया रूख जहाँ बगुला बसा ।
गया ताल जहाँ उपजी काई ।
गया कूप जहाँ भई अथाई ।

(१४)

चातुर का काम नहीं पातुर से अटके ।
पातुर का काम यही लिया दिया सटके ॥

(१५)

टका ब्याज बाबाजी खोवैं, शँड़े खोवें हाँसी ।
आलस नींद किसानै खोवैं, चोरै खोवै खाँसी ॥

(१६)

टका करै कुलहूल, टका मिरदंग बजावै ।
टका चढ़ै सुख पाल, टका सिर छत्र धरावै ।
टका माय अरु बाप, टका भाइन को भैया ।
टका सास औ ससुर, टका सिर लाड़ लड़ैया ।
एक टके बिन टुकटुका होत रहत नित रात दिन ।
बैताल कहै विक्रम सुनो, धिक जीवन यक टके बिन ॥

(१७)

ठाकुर पत्थर माला कङ्कड़ गंगा यमुना पानी ।
जबलग मन में साँच न उपजै चारों वेद कहानी ॥

(१८)

तोले भर की चार कचौड़ी, खुरमा माशे ढाई का ।
घर में रोवैं बहिन भानजी, बाहर रोवे नाई का ।

धीरे धीरे जीमो पंचों देखो गज़ब खुदाई का।
लाला जी ने ब्याह रचाया, लँहगा बेच लुगाई का।

(१६)

जहँ देखहु निज अधिक बिगार।
लघु लाभहु कर तजहु विचार।
नहिं यह बुद्धिमान की चाल।
" दमड़ी की बुलबुल टका हलाल "॥

(२०)

नसकट खटिया दुलकन घोर (घोड़ा)
कहैं घाघ यह विपति के ओर।
बाछा बैल पतुरिया जोय।
ना घर रहैं न खेती होय॥

(२१)

जो कछु लखि न परै निज हानि।
तौ समाज की तजहु न कानि।
क्यों बिन स्वारथ सहिये खिल्ली।
" पञ्च कहैं बिल्ली तो बिल्ली "॥

(२२)

पान पुराना, घी नया, औ कुलवन्ती नार।
चौथो पीठ तुरंग की, स्वर्ग निशानी चार॥
बढ़े वाल और मैले कपड़े, और कर्कशा नार।
सोने को धरती मिले, यह नरक निशानी चार॥

(२३)

बनिया के सखरच, ठकुरक हीन ।
बैद के पूत व्याधि नहिं चीन्ह ।
भाँट के चुप चुप, वेश्या मइल ।
घाघ कहै चारों घर गइल ॥

(२४)

शशि कलंक रावण विराध, हनुमत सो बनचर ।
कामधेनु सो पशू, जाय चिन्तामणि पत्थर ।
अति रूपा तिय बाँझ गुनी को निर्धन कहिये ।
अति समुद्र सो खार, कमल बिच कराटक लहिये ।
जै जु ब्यास खेवट्टनी दुर्वाशा आसन डिग्यो ।
कवि गीध कहै सुन रे गुनी, कोउ न कृष्ण निर्मल रच्यो ॥

(२५)

बे माघे घी खिचड़ी खाय ।
बे मेहरी ससुरारी जाय ॥
बे भादों पेन्हाई पव्वा ।
कहैं घाघ ये तीनों कव्वा ।

(२६)

मर्द सीस पर नवै, मर्द बोली पहिचानै ।
मर्द खिलावै खाय, मर्द चिन्ता नहिं माने ।
मर्द लेइ अरु देइ मर्द को मर्द बचावै ।
गाढ़े सकरे काम मर्द के मर्दहि आवै ॥
पुनि मर्द उन्हीं को जानिये, साथी सुख दुख दर्द के ।
बैताल कहै विक्रम सुनो, ये लच्छन हैं मर्द के ॥

(२७)

मुये चाम सो चाम कटावै भुइं सकरी होइ सोवै ।
घाघ कहै यह तिनिउ भकुआ उढ़रि जाय अरु रोवै ॥

(२८)

सावन साग न भादों दही ।
क्वार करैला कातिक मही ।
अगहन जीरा पूसे धना ।
माघे मिसरी फाल्गुन चना ॥
चैते गुड़ वैसाखे तेल ।
जेठे राई अषाढ़े बेल ॥
इन बारह से बचे जो भाई ।
ताके घर में वैद न जाई ॥

(२९)

जिहि मुच्छन धरि हाथ कछु जग सुजश न लीनो ।
जिहि मुच्छन धरि हाथ कछू पर काज न कीनो ।
जिहि मुच्छन धरि हाथ कछू पर पीर न जानी ।
जिहि मुच्छन धरि हाथ दीन लखि दया न आनी ।
मुच्छ नाहिं वे पुच्छ सम कबि भरमी उर आनिये ।
नहिं बचन लाज नहिं दान गति तोह मुख मुच्छ न जानिये ।

(३०)

भुइयाँ खेड़े हर हों चार, घर हो गिहिथिन गऊ दुधार ।
अरहर की दाल जड़हन का भात गागल निबुआ औ घिउ तात।

सह रस खंड दही जो होय बाँके नैन परोसे जोय ।
कहै घाघ तब सबही झूठा· उहाँ छाँड़ि इहवें बैकुण्ठा ॥

(३१)

बहु, बजार, बनिहार, बनि, बारी, बेटा, बैल ।
ब्योहार, बढ़ई, बन, बबुर, बात सुनो यह छैल ।
जो बकार बारह बसैं सो पूरन गिरहस्त ।
औरन को सुख दै सदा आप रहै अलमस्त ॥

(३२)

ज्ञानवान हठ करै, निधन परिवार बढ़ावै ।
बँधुवा करै गुमान, धनी सेवक ह्वै धावै ।
पंडित किरया हीन, राँड़ दुर बुद्धि प्रमानै ।
धनी न समझै धर्म, नारि मरजाद न जानै ।
कुलवन्त पुरुष कुलविधि तजै, बन्धु न मानै बन्धुहित ।
संन्यास धारि धन संग्रहै ये जग में मूरख विदित ॥

———※———

॥ उर्दू ॥

(१)

बे परदा नज़र आईं जो कल चन्द बीबियाँ ।
"अकबर" जमीं में ग़ैरते क़ौमी[1] से गड़ गया ।
पूछा जब उनसे, आप का परदा कहाँ गया ।
कहने लगीं कि अक़्ल पे मर्दों के पड़ गया ॥

१. जातीय लज्जा,

(२)

कोठे पै रहने वाली ज़ीने पै आ गई।
रफ़ते रफ़ते अपने क़रीने पै आ गई।

(३)

इब्तिदाये इश्क[1] है रोता है क्या।
आगे आगे देखिये होता है क्या॥

(४)

क्या तवंगर, क्या ग़नी[2], क्या पीर, औ क्या बालका।
सब के दिल में फ़िक्र है दिन रात आटे दाल का॥

(५)

खूँ के दरिया बह गये, आलम तहो बाला हुये[3]?
ऐ सिकन्दर किस लिए? दो गज़ ज़मीं के वास्ते।

(६)

जो सती सत पर चढ़े तो पान खाना रस्म है।
आबरू जग में रहे तो जान जाना पश्म है।

(७)

बुराई है आज बोलने में, न बोलने में भी है बुराई।
खड़ा हूँ ऐसा विकट जगह पर इधर कुआँ है उधर है खाई॥

(८)

कीड़ा ज़रा सा और वह पत्थर में घर करे।
इन्सान क्या न जो दिले दिलबर[4] में घर करे।

१. प्रेम का आरम्भ, २. मालदार ३. दुनिया उलट गई ४. प्रणयी।

(९)

तनदुरुस्ती को निपट फ़ज़्ले इलाही[1] बूझिये।
आबरू जग में रहे तो बादशाही बूझिये।

(१०)

जितने सखुन[2] हैं सब में यही है सखुन दुरुस्त।
अल्लाह आबरू से रक्खे और तनदुरुस्त।

(११)

दुनिया में अपना जी कोई बहला के मर गया।
दिल तङ्गियों से औ कोई उकता के मर गया।
आक़िल था वह तो आप को समझा के मर गया।
बे अक़्ल छाती पीट के घबरा के मर गया।
दुख पाके मर गया कोई सुख पाके मर गया।
जीता रहा न कोई हर एक आके मर गया।

(१२)

ऐब यह है कि करो ऐब, हुनर दिखलाओ।
वर्ना यां ऐब तो सब फ़र्दे बशर[3] करते हैं।

(१३)

गुज़र की जब न हो सूरत, गुज़र जाना ही बेहतर है।
हुई जब ज़िन्दगी दुश्वार मर जाना ही बेहतर है।

(१४)

तक़लील[4] गिज़ा में हो पिपरमेन्ट यही है।
कर जब्त हविस[5] सैल्फ़ गवर्नमेन्ट[6] यही है।

१. ईश्वरीय दया २. बात ३. प्राणीमात्र ४. कमी ५. लालच ६ Self-Government

(१५)

कौड़ी के सब जहान में नक्शो नगीन हैं।
कौड़ी न हो तो कौड़ी के फ़िर तीन तीन हैं ॥

(१६)

बजा[1] कहे जिसे आलम उसे बजा समझो।
ज़बान ख़ल्क़ को नक्कारए ख़ुदा समझो।

(१७)

पड़े भटकते हैं लाखों पंडित, हज़ारों मुल्ला करोड़ों स्याने।
जो ख़ूब देखा तो यार आख़िर, ख़ुदा की बातें ख़ुदा ही जाने।

(१८)

चार दिन जिसको खुशामद से किया झुक के सलाम।
वह भी खुश हो गया, अपना भी हुआ काम में काम।
बड़े आक़िल बड़े दाना[2] से निकाला है यह दाम।
ख़ूब देखा तो ख़ुशामद ही की आमद है तमाम।
जो ख़ुशामद करे ख़ल्क़[3] उससे सदा राज़ी है।
सच तो यह है कि ख़ुशामद से ख़ुदा राज़ी है ॥

(१९)

बद न बोले ज़ेर-गर्दूं[4] गर कोई मेरी सुने।
है यह गुम्बद की सदा[5] जैसी कहे वैसी सुने।

(२०)

मिज़ाज क्या है कि यक बताशा।
घड़ी में तोला घड़ी में माशा।

---

१. उचित । २. बुद्धिमान । ३. दुनिया । ४. आसमान के नीचे [संसारमें] ।
५. शब्द, आवाज़ ।

(२१)

कितने मुफलिस हो गये कितने तवंगर हो गये।
ख़ाक में जब मिल गये दोनों बराबर हो गये॥

(२२)

जब आये थे रोते हुये आप आये थे।
जब जायेंगे औरों को रुला जायेंगे॥

(२३)

ज़र के दिये से पीर औ उस्ताद नर्म हो।
ज़र के सबब से दुश्मने नाशाद नर्म हो।
जो शख़्स संगदिल[1] है, परीज़ाद[2] नर्म हो।
ज़र वह है जिसको देख के फ़ौलाद नर्म हो।
सब से ज़ियादा हुस्न[3] के उल्फ़त[4] का दाम है।
ज़र वह है जिसका हुस्न भी अदना गुलाम है।

(२४)

गर उसने उढ़ाया तो लिया ओढ़ दुशाला।
कम्बल जो दिया तो वही कन्धे पै है आला।
चादर जो उढ़ाई तो वही हो गई बाला।
बँधवाई लँगोटी तो वही हँस के सँभाला।
पोशाक में दस्तार में रूमाल में खुश हैं।
पूरे हैं वही मर्द जो हर हाल में खुश हैं॥

(२५)

झिड़की तो यक मुद्दत से मसावात हो गई।
गाली कभी न दी थी सो यक बात हो गई।

१. पाषाण-हृदय २. तात्पर्य प्रणयी से है १. सुन्दरता २. प्रेम।

बाकी है मार खाना सो आजकल के बीच ।
सुन लोगे उसे तुम भी कि औक़ात हो गई ॥

(२६)

हम शीशं[1] दिखाते हैं कि इसलाम को देखो ।
मिसं[2] जुल्फ़[3] दिखाती हैं कि इसलाम को देखो ॥

(२७)

तन सूखा कुबड़ी पीठ हुई, घोड़े पर ज़ीन धरो बाबा ।
अब मौत नक़ारा बज चुका, चलने की फ़िक्र करो बाबा ।

(२८)

यह दर्दे सर ऐसा है कि सर जाय तो जाये ।
उल्फ़त का नशा जब कोई मर जाय तो जाये ॥
तुम्हें ग़ैरों से कब फ़ुर्सत हम अपने ग़म से कब ख़ाली ।
चलो बस हो चुकी उल्फ़त न तुम ख़ाली न हम ख़ाली ।

(२६)

मयख़ाने[4] बीच जाके शीशे तमाम तोड़े ।
ज़ाहिद[5] ने आज अपने दिल के फफ़ोले फोड़े ॥

(३०)

बेहतर तो यही है कि न दुनिया से दिल लगे ।
पर क्या करे जो काम न बे दिल्लगी चले ॥

(३१)

मज़ा भी आता है दुनिया से दिल लगाने में ॥
मज़ा भी मिलती है दुनिया से दिल लगाने की ॥

१. दाढ़ी । २. [illegible] स्त्री, पाँगी, ३. लट ४. शराब ख़ाना ५. धार्मिक पुरुष ।

(३२)

न रीझें भूल कर भी आप बाहर की सफ़ाई पर।
वरक़ सोने का चिपकाया है गोबर की मिठाई पर॥

(३३)

गुल शोर बबूला आग हवा और कीचड़ पानी मट्टी है।
हम देख चुके इस दुनिया को सब धोके की सी टट्टी है।

(३४)

चश्म[1] ने की मुद्दतों गर्दिश[2], तो पाया एक तिल।
रिज़्क[3] इन्साँ के मुक़द्दर[4] के सिवा मिलता नहीं॥

(३५)

लीडरों[5] की धूम है और फ़ालोवर[6] कोई नहीं।
सब तो जनरल[7] है यहाँ आखिर सिपाही कौन है॥

(३६)

पैसा ही बस बनाता है इंसा की बात को।
पैसा ही ज़ेब देता है ब्याहो बरात को।
भाई सगा भी आनकर पूछे न बात को।
बिन पैसे यारो दूल्ह बने आधी रातको।
पैसा ही रंग रूप है पैसा ही माल है।
पैसा नहीं तो आदमी चर्खे की माल है।
पैसा न हो तो बाग़ कुआँ फिर कहां से हों।
खाने को पूरी और पुए फिर कहाँ से हों।

---

१. आँख। २ घूमना। ३ भोजन (तात्पर्य धन से)। ४. भाग्य। ५. Leader अगुआ। ६. Follower अनुकरण कर्ता। ७. General सरदार। ८. सुन्दरता।

ऐशो तरब[1] के नक्के हुये फिर कहाँ से हों।
हलुआ कचौड़ी मालपुए फिर कहाँ से हों।
पैसा ही रंग रूप है पैसा ही माल है।
पैसा नहीं तो आदमी चर्खे की माल है॥

(३७)

हँसली गले में नौशा[2] के हर्गिज़ न जान तू।
यह लानती[3] का तौक़[4] है, जोरू गले पड़ी॥

(३८)

काम से काम अपने उनको, गो हो आलम नुक्ताचीं[5]।
रहते हैं बत्तीस दाँतों में ज़ुबानों की तरह॥

(३९)

हो चुकी नमाज़ मुसल्ला बढ़ाइये।
बँट चुके बताशे अब घर को जाइये॥

(४०)

आदत जो पड़ी हो हमेशा से वह दूर भला कब होती है।
रक्खी है चुनौटी पाकिट में पतलून के नीचे धोती है॥

(४१)

बात इन्सां जब तलक करता नहीं।
नेकोबद उसका कभी खुलता नहीं॥

(४२)

भागती फिरती थी दुनिया, जब तलब करते थे हम।
अब जो नफ़रत हमने की, तो बेक़रार आने को है॥

१. भोग-विलास। २. दूल्हा। ३. दुर्भाग्य। ४. जंजीर। ५. बुराई करने वाला।

(४३)

जुबाँ खोलेंगे मुझ पर बद सखुन क्या बदशिआरी[1] से।
कि मैंने ख़ाक भर दी उनके मुँह में ख़ाकसारी[2] से॥

(४४)

होता नहीं है कोई बुरे वक़्त में शरीक।
पत्ते भी भागते हैं खिज़ाँ[3] में शजर[4] से दूर॥

(४५)

पुतलियाँ तक भी तो फिर जाती हैं देखो दम निज़अ[5]।
वक़्त पड़ता है तो सब आँख चुरा जाते हैं॥

(४६)

जिन्दगी को ज़रूर है यक शग्ल,[6] खैर बिलफेल लीडरी ही सही।
अबतो 'अकबर' बसा है गंगा तीर, न हो स्नान दिल्लगी ही सही॥

(४७)

अतिब्बा[7] को तो अपनी फ़ीस लेना और दवा देना।
खुदा का काम है लुत्फो करम[8] करना शफ़ा[9] देना।

(४८)

मैं यह नहीं कहता कि दवा कुछ नहीं करती।
कहता हूँ कि बे हुक्म खुदा कुछ नहीं करती॥

(४९)

भूखे गरीब दिल की खुदा से लगन न हो।

१. दुष्टाचरण। २. नम्रता। ३. पतझड़। ४ पेड़। ५. जुदाई (तात्पर्य मृत्यु)
६. काम। ७. वैद्य, डाक्टर, हकीम। ८ दया। ९. आरोग्य करना।

सच है कहा किसी ने कि भूखे भजन न हो ॥

(५०)

ताऊन की बदौलत उनका भी इस्तफ़ा¹ है ।
जो मारते थे मक्खी अब मारते हैं चूहे ॥

(५१)

पुलिस ने और बदकारों को शह दी ।
मरज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की ॥

(५२)

बेगानगी नहीं है बस इतनी दोस्ती है ।
मैं उनको जानता हूँ वे मुझको जानते हैं ।

(५३)

साहब सलामत अब भी मेरी शेख जी से है ।
लेकिन छटे छमाहे वही राह हाट में ॥

(५४)

शौक़ पैदा कर दिया बँगले का और पतलून का ।
वह मसल है मुफ़लिसी में आटा गीला कर दिया ॥

(५५)

जब ग़म हुआ चढ़ा ली दो बोतलें इकट्ठी ।
मुल्ला की दौड़ मसजिद, 'अकबर' की दौड़ भट्ठी ॥

(५६)

हम तालिबे शोहरत² हैं हमें इल्म से क्या काम ।
बदनाम अगर होंगे तो क्या नाम न होगा ॥

१. त्यपाग । २. प्रसिद्धता का इच्छुक ।

(५७)

मैं बताऊँ आपको, अच्छों की क्या पहचान है।
जो हैं खुद अच्छे वह औरों को नहीं कहते बुरा ॥

(५८)

तवायफ़[1] के बिछौने पर, बना है काम सोने का।
न ठहरेगा मुलम्मा है, अबस[2] है ज़र के खोने का ॥

(५९)

पूछा कि "शग्ल[3] क्या है?" कहने लगे गुरुजी।
बस राम राम जपना चेलों का माल अपना ॥

(६०)

थे केक[4] के फ़िक्र में सो रोटी भी गई।
चाही थी बड़ी सो छोटी भी गई ॥
वाइज़[5] की नसीहत न क्यों मानें आख़िर।
पतलून की ताक में लंगोटी भी गई ॥

(६१)

उसे तो आप समझें या कहीं शायद खुदा समझे।
न लाला जी न पंडित जी न कोई तीसरा समझे ॥

(६२)

सेठ जी को फ़िक्र थी यक यक के दस दस कीजिए।
मौत आ पहुँची कि हज़रत जान वापिस कीजिए ॥

१. वेश्या। २. व्यर्थ। ३. काम। ४. Cake अंग्रेजी रोटी। ५. उपदेशक।

(६३)

काम इन्सान का इन्सान से पड़ता है ज़रूर ।
बात रह जाती है और वक्त गुज़र जाता है ॥

(६४)

जो जिसके मुनासिब था गर्दू[1] ने किया पैदा ।
यारों के लिए ओहदे चिड़ियों के लिए फन्दा ॥

(६५)

चैन से जुगनू चमक ले यह बने की बात है ।
मूढ़ क्यों कि सर्वदा रहती नहीं बरसात है ॥

(६६)

रहती है कब बहारे जवानी तमाम उम्र ।
मानिन्द बूये गुल[2] इधर आई उधर गई ॥

(६७)

बाकी है दिल में शेख के हसरत[3] गुनाह की ।
काला करेगा मुँह भी जो दाढ़ी सियाह की ॥

(६८)

किसी का कब कोई रोजे सियः[4] में साथ देता है ।
कि तारीकी[5] में साया भी जुदा रहता है इन्सां से ॥

(६९)

न इतना हलवा बन कि चट कर जाँय भूके ।
न इतना कड़वा बन कि जो चक्खे सो थूके ॥

१. आसमान । २. पुष्प की सुगन्धि की नाईं । ३. इच्छा । ४. दुर्दिन । ५. अँधेरा ।

(७०)

सीरत[1] के हम गुलाम हैं सूरत हुई तो क्या।
सुर्खो सफेद मिट्टी की मूरत हुई तो क्या॥

(७१)

लाई हयात[2] आये कज़ा[3] ले चली चले।
अपनी खुशी न आये न अपनी खुशी चले॥

(७२)

सुर्ख़ रू होता है इन्सां ठोकरें खाने के बाद।
रंग लाती है हिना[4] पत्थर पै घिस जाने के बाद।

(७३)

मौलवी साहब न छोड़ेंगे खुदा गर बख्श दे।
घेर ही लेंगे पुलिस वाले सजा हो या न हो॥

(७४)

बुढ़ापा नाम है जिसका वह है अफ़सुर्दगी[5] दिल की।
जवानी कहते हैं जिसको तबीयत की जवानी है॥

(७५)

न दौलत याद आती है न ग़म होता है सरवत[6] का।
जिसे रोती है दुनिया, वह है जौहर आदमीयत[7] का।

(७६)

योग कहते हैं किसे शाने इबादत[8] क्या है।
ख़िदमते कौम नहीं है तो रियाज़त[9] क्या है॥

१. स्वभाव। २. जिन्दगी। ३. मृत्यु। ४. मेंहदी। ५. सुस्ती। ६. ऐश्वर्य। ७. मनुष्यता ८. भजन। ९. ईश्वराराधन।

(७७)

ज़िन्दगी यों तो फ़क़त बाज़िए तिफ़लाना[1] है।
मर्द है जो कि किसी रंग में दीवाना है।

(७८)

धर्म पर जो न फ़िदा[2] हो वह जवानी क्या है?
दूध की धार है तलवार का पानी क्या है?

(७६)

ले उड़े दिलको तबीयत की रवानी वह है।
बे पिये नशा रहे जिसमें जवानी वह है॥

(८०)

मिटा जो नाम तो दौलत की जुस्तजू[3] क्या है।
निसार[4] हो न वतन[5] पर तो आबरू क्या है।
लगादे आग न दिल में तो आरज़ू क्या है।
न जोश खाये जो ग़ैरत[6] से वह लहू क्या है॥
फ़िदा वतन पै हो जो आदमी दिलेर है वह।
जो यह नहीं तो फ़क़त हड्डियों का ढेर है वह।

[८१]

वतन से दूर हैं हम पर निगाह कर लेना।
इधर भी आग लगी है ज़रा ख़बर लेना॥

[८२]

तलब[7] फ़ज़ूल है काँटे की फूल के बदले।
बहिश्त[8] भी न लें हम होमरूल के बदले॥

१. लड़कों का खेल। २. निछावर। ३. खोज। ४. निछावर। ५. देश। ६. लज्जा। ७ माँग। ८. बैकुण्ठ।

[८३]

यह चमन योंही रहेगा और हजारों ज़ानवर ।
अपनी अपनी बोलियाँ सब बोलकर उड़ जायेंगे ।

[८४]

दुनिया के जो मज़े हैं हर्गिज़ वह कम न होंगे ।
चर्चे यही रहेंगे अफ़सोस हम न होंगे ॥

[८५]

खूब की सैर-चमन, फूल चुने, शाद रहे ।
बागवाँ जाते हैं गुलशन तेरा आबाद रहे ॥

[८६]

कहे एक जब सुन ले इन्सान दो ।
कि हक़[1] ने ज़ुबाँ एक दी कान दो ॥

[८७]

छोड़ लिटरेचर[2] को अपनी हिस्टरी[3] को भूल जा ।
शेखों मसजिद से तअल्लुक तर्क कर स्कूल जा ।
चार दिन की जिन्दगी है कोफ्त[4] से क्या फायदा ।
खा डबल रोटी किलरकी कर खुशी से फूल जा ॥

[८८]

नई तहज़ीब[5] में दिक्कत जियादा तो नहीं होती ।
मज़ाहब[6] रहते हैं क़ायम फ़क़त ईमान जाता है ।
थियेटर रात को और दिन को यह यारों की इस्पीचें[7] ।
दुहाई लाट साहब की मेरा ईमान जाता है ।

१. ईश्वर । २. Literature साहित्य । ३. History इतिहास । ४. उधेड़ बुन
५. सभ्यता । ६. मत । ७. Speech व्याख्यान ।

[८९]

हम क्या कहें अहबाब[1] क्या कारे नुमायाँ[2] कर गये।
बी. ए. हुये, नौकर हुये, पेंशन मिली और मर गये।

[९०]

शेख़ जी घर से न निकले और मुझ से कह दिया।
आप. बी. ए. पास हैं और बन्दा बी.बी पास है।

[९१]

शाप[3] में सब जमा हैं मुझ से न पीपी कीजिए।
आप इस बोतल को मेरे घर पै वी. पी कीजिए।

[९२]

ख्वाह साहब को तुम सलाम करो।
ख्वाह मन्दिर में राम राम करो।
भाई जी का फ़कत यह मतलब है।
जिसमें रुपया मिले वह काम करो।

[९३]

हैं अमल[4] अच्छे मगर दरवाजए जन्नत[5] है बन्द।
कर चुके हैं पास लेकिन नौकरी मिलती नहीं।

[९४]

सर्विस[6] में मैं दाखिल नहीं, हूँ कौम का खादिम।
चन्दों की फ़क़त आस है तनख्वाह कहाँ है॥

---

१. मित्र। २. बड़े काम। ३. Shop दूकान। ४. काम। ५. बैकुण्ठ का द्वार।
६. Service नौकरी।

[६५]

हर्ज क्या रुपया जो काग़ज़ का चला।
ग़म न खा रोटी तो गेहूँ की रही।

[६६]

गरीब खाने में लिल्लाह[1] दो घड़ी बैठो।
बहुत दिनों में तुम आये हो इस गली की तरफ़।
ज़रा सी देर ही हो जायगी तो क्या होगा।
घड़ी घड़ी न उठाओ नज़र घड़ी की तरफ़॥
जो घर में पूछे कोई खौफ़ क्या है कह देना।
चले गये थे टहलते हुये किसी की तरफ़॥

[६७]

तिफ्ल[2] में बू आये क्या माँ बाप के अतवार[3] की।
दूध तो डब्बे का है तालीम[4] है सरकार की॥

[६८]

तुम बीबियों को मेम बनाते हो आजकल।
क्या ग़म जो हमने मेमको बीबी बना लिया।

[६९]

तरक्की की नई राहें जो जेरे-आस्माँ[5] निकलीं।
मियाँ मसजिद से निकले और हरम[6] से बीबियाँ निकलीं।
मुसीबत में भी अब यादे खुदा आती नहीं उनको।
दुआ मुँह से न निकली पाकिटों से अर्जियाँ निकलीं।

---

१. ईश्वर के लिये। २. लड़का। ३. आचरण। ४. शिक्षा। ५. आसमान के नीचे।
६. महल।

[१००]

जिन्दगी क्या है ? अनासिर[1] में जुहरे तरतीब[2]
मौत क्या है ? इन्हीं अजज़ा का परेशा[3] होना ॥

[१०१]

गुल को पामाल न कर लाल व गुहर[4] के मालिक ।
है इसे तुर्रये-दुस्तार-ग़रीबाँ[5] होना ।

[१०२]

शायद खज़ाँ से फ़स्ल अयाँ[6] हो बहार की ।
कुछ मस्लहत इसी में हो परवर्दिगार की ।

---

१. तत्त्व । २. सुव्यवस्था । ३ टुकड़ों का अलग होना ४. हीरा । ५. गरीब की पगड़ी की कलँगी । ६ जाहिर ।
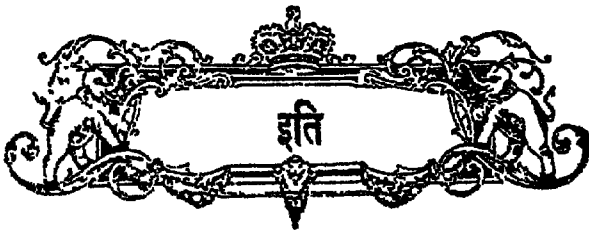
पुस्तक मिलने का पता—
मैनेजर-भार्गव पुस्तकालय,
गायघाट, बनारस सिटी ।

मुद्रक—[illegible] दास गुप्त द्वारा,
[illegible] प्रिंटिंग वर्क्स, [illegible], काशी में मुद्रित ।